ब्रज-साहित्य-माला सं० २

सूर–निर्णय

सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की
निर्णयात्मक समीक्षा

★

द्वारिकादास परीख
प्रभुदयाल मीतल

अग्रवाल प्रेस, मथुरा.

प्रथम संस्करण

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी सं० २००६ वि०

मूल्य ५)

मुद्रक, प्रकाशक :

प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा

ब्रजसाहित्य माला

संपादक :

प्रभुदयाल मीतल

ब्रजभाषा-काव्य के प्रेमियों
तथा
उच्च हिंदी कक्षाओं के विद्यार्थियों
के लाभार्थ—

ब्रज-साहित्य-माला की पुस्तकें

[लेखक—प्रभुदयाल मीतल]

★

1. अष्टछाप-परिचय ... ... ४)
2. ब्रजभाषा साहित्य का... ... नायिकाभेद ... ६)
3. सूर-निर्णय ... ... ५)
4. ब्रजभाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य ... ३)

प्राप्य स्थान :
अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

परिचय

हिंदी प्रेमी पाठकों को सुयोग्य लेखक द्वय का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। ब्रजभाषा साहित्य से संबंध रखने वाले आप लोगों के अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जो आप लोगों की विद्वत्ता के परिचायक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में लेखकों ने महाकवि सूरदास से संबंध रखने वाली समस्त प्रमुख समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पाँच परिच्छेदों में क्रम से सामग्री, चरित्र, ग्रंथ, सिद्धांत तथा काव्य का विवेचन दिया गया है। ग्रंथ में अनेक स्थलों पर कुछ नवीन सामग्री का उल्लेख किया गया है। इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा इसकी पूर्ण परीक्षा होनी चाहिए। स्वतंत्रता पूर्वक उद्धरण देने से पुस्तक विशेष रोचक और उपयोगी हो गयी है; यद्यपि साथ ही आलोचनात्मक अंश में कमी करनी पड़ी है।

सूरदास तथा वल्लभ संप्रदाय का अध्ययन हिंदी विद्वानों के द्वारा देर में प्रारंभ हुआ, किंतु यह हर्ष का विषय है कि इस कमी की पूर्ति अब शीघ्रता से हो रही है। इस आलोचनात्मक अध्ययन की माला में सूर-निर्णय इस समय अंतिम कड़ी है। आशा है कि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ सूर के अध्ययन को अग्रसर करने में सहायक होगा।

धीरेन्द्र वर्मा

१४ अगस्त १९४९

(डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट्०)
अध्यक्ष—हिंदी विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्राक्कथन

हिंदी साहित्यिक समालोचना के आरंभिक काल से अब तक हिंदी कवियों में सूरदास का सर्वोपरि महत्व माना गया है, किंतु उनके काव्य का वास्तविक अध्ययन अब से कुछ समय पूर्व ही आरंभ हुआ है। किसी कवि के अध्ययन के लिए उसकी कृतियों के सुसंपादित संस्करण की सबसे पहले आवश्यकता होती है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि सूरदास के जीवन-काल में ही उनकी रचनाओं के हस्त लिखित संग्रह होने लगे थे, जो लिपि-प्रतिलिपि के क्रम से बाद में भी बराबर होते रहे। इस समय जो संग्रह उपलब्ध हैं, वे सूरदास के कुछ समय बाद से लेकर अब तक के भिन्न-भिन्न संवतों में लिपिबद्ध किये गये हैं। वे लिपिकर्ताओं की रुचि और उनके ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं; किंतु उनमें कोई संग्रह ऐसा नहीं है, जिसे सूरदास की समस्त रचनाओं का सर्वांगपूर्ण संकलन कहा जा सके!

यह तो हुई हस्त लिखित प्रतियों की बात; अब सूरदास की मुद्रित रचनाओं पर विचार कीजिए। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्रजी की बहुमुखी प्रवृत्तियों में सूरदास की रचनाओं को भी स्थान मिला था, किंतु उनके असामयिक निधन के कारण इनके संबंध में कोई विशेष कार्य नहीं हो सका। भारतेन्दुजी के कार्य को उनके आत्मीय श्री राधाकृष्ण दास ने आगे बढ़ाया। उन्होंने सूरसागर का संपादन किया और इसके आरंभ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी व्यापक प्रकाश डाला। सूरसागर का यह संस्करण बंबई से प्रकाशित हुआ है। उस समय की उपलब्ध सामग्री को देखते हुए राधाकृष्ण दास जी का कार्य निस्संदेह बड़ा महत्वपूर्ण था, किंतु आजकल के अनुसंधान प्रिय पाठकों को इससे संतोष नहीं होता है। फिर भी सूरसागर के अन्य मुद्रित संस्करण के अभाव में इसी का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि सूरसागर का सुसंपादित अन्य संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और बंबई वाला उक्त संस्करण भी आजकल दुष्प्राप्य हो रहा है!

ब्रजभाषा साहित्य के धुरंधर विद्वान श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी सूरसागर के एक सर्वांगपूर्ण संस्करण का संपादन-कार्य आरंभ किया था, जो उनके आकस्मिक देहावसान के कारण पूर्ण न हो सका। काशी की

नागरी प्रचारिणी सभा ने रत्नाकर जी के संपादित ग्रंथ का कुछ भाग प्रकाशित किया है। यद्यपि रत्नाकर जी की संपादन-शैली से कुछ लोगों को पूर्णतया संतोष नहीं है, तथापि सभा द्वारा यदि यह ग्रंथ भी पूरा प्रकाशित कर दिया जाता, तो एक बहुत बड़ा कार्य हो जाता और उससे सूरदास के पाठकों का भी भारी उपकार होता। सूरसागर के अभाव में सूरसागरोक्त पदों के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं; किंतु जब तक सूरसागर और सूरदास की अन्य रचनाओं के प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नहीं होते, तब तक यह कार्य अधूरा ही रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हुआ कि हस्त लिखित अथवा मुद्रित रूप में सूरदास की समस्त रचनाओं का कोई सर्वांगपूर्ण संकलन इस समय उपलब्ध नहीं है। इस अभाव के कारण सूर संबंधी अध्ययन के कार्य में सदैव बाधा रही है, और जब तक इस की पूर्ति नहीं होती, तब तक आगे भी रहेगी ही। किंतु सूरदास का जितना साहित्य अब तक प्रकाश में आया है, उससे ही उनके काव्योत्कर्ष के मूल्यांकन करने में कोई बाधा नहीं आयी है। यही कारण है कि सूर-काव्य की आलोचना संबंधी साहित्य की हमारे यहाँ कमी नहीं है।

सूर-काव्य के रसिकों और हिंदी की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों में सूर-काव्यालोचना की सदैव माँग रही है, जिसके कारण हिंदी के सर्वोच्च श्रेणी के विद्वान साहित्यकार भी सूरदास की ओर आकर्षित हुए हैं। आदरणीय मिश्रबंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ला० भगवानदीन, डा० जनार्दन मिश्र, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रो० मुंशीराम शर्मा, तथा दूसरे धुरंधर लेखकों ने सूरदास के काव्य की समालोचना की है, जिसके कारण इस प्रकार का साहित्य हमारे यहाँ प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हो गया है।

जैसे-जैसे सूरदास के काव्य की आलोचना होती जाती है, वैसे-वैसे ही उनका महत्व बढ़ता जाता है। सूर-काव्य के विविध पहलुओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने से हमारे विद्वान आलोचकों को ज्ञात हुआ कि कवि के रूप में सूरदास निस्संदेह महान् हैं। वे हिंदी ही नहीं, वरन् संसार की समस्त भाषाओं के सर्वोत्तम कवियों में भी आदरपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। किंतु सूरदास केवल कवि ही तो नहीं हैं। वे परम भक्त, सुप्रसिद्ध गायक, धुरंधर सांप्रदायिक विद्वान और नाना प्रकार की विद्याओं एवं कलाओं के अपूर्व ज्ञाता भी हैं। उनके विविध रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन किये बिना उनकी वास्तविक समालोचना नहीं की जा सकती।

जब से विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और छात्रों का ध्यान सूरदास की ओर गया है, तब से उनके वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता का और भी अधिक अनुभव होने लगा है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष विद्वद्वर डा० धीरेन्द्र वर्मा का प्रयत्न सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के कार्य में सब से अधिक प्रशंसनीय है। उन्होंने इस ओर स्वयं प्रवृत्त होकर और अपने छात्रों को प्रेरित कर सूर के वैज्ञानिक अध्ययन को बहुत-कुछ आगे बढ़ाया है। उनके प्रयत्न से आज विश्वविद्यालय के क्षेत्र में विविध दृष्टि-विंदुओं से सूरदास का व्यापक अध्ययन हो रहा है। इस प्रयत्न का शुभ परिणाम डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों के रूप में हम लोगों के सन्मुख आ भी चुका है। विश्वविद्यालय के क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वालों को उपयुक्त वातावरण, संचित सामग्री और उच्च श्रेणी के विद्वानों के सामूहिक सहयोग के रूप में जो सहज सुविधाएँ प्राप्त हैं, उनके कारण इस प्रकार का बहुमूल्य कार्य होना स्वाभाविक है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य की शोध के लिए विश्वविद्यालय का क्षेत्र ही एक मात्र स्थान है और वहाँ पर किया हुआ कार्य ही सदैव निभ्रांत, त्रुटिरहित एवं अपरिवर्तनीय होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक ही स्रोत से उद्भूत डा० दीनदयाल गुप्त और डा० ब्रजेश्वर वर्मा की थीसिसों की विचार-धाराएँ विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती हुई दिखलायी दे रही हैं!

विश्वविद्यालयों से बाहर के क्षेत्र में भी अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है और वे अब भी कर रहे हैं। इस क्षेत्र में साहित्यिक शोध का कार्य करने वाले व्यक्तियों में हमारा भी एक छोटा सा स्थान है। सूर संबंधी प्रकाशित साहित्य के अनुशीलन और अप्रकाशित विशाल साहित्य के शोधपूर्ण अध्ययन के उपरांत हमारा विनम्र मत है कि अब तक का कार्य निश्चित रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी सर्वांगपूर्ण और त्रुटिरहित नहीं है। जहाँ तक सूरदास के काव्य की आलोचना का संबंध है, वहाँ तक यह कार्य बहुत-कुछ पूर्ण है और इसमें परिवर्तन की बहुत कम गुंजायश है; किंतु सूरदास के जीवन-वृत्तांत, उनकी प्रामाणिक रचनाएँ और उनके सांप्रदायिक सिद्धांत संबंधी अब तक का कार्य अपूर्ण एवं कुछ अंशों में त्रुटिपूर्ण भी है, अतः इसमें परिवर्द्धन एवं परिवर्तन की शीघ्र आवश्यकता है। यह अपूर्णता एवं त्रुटि उन ग्रंथों में अधिक है, जिनमें सूर काव्य की साहित्यिक समालोचना करते हुए सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी विचार किया गया है। सूरदास का विस्तृत अध्ययन उपस्थित करने वाले शोधपूर्ण ग्रंथों में भी

निर्णयात्मक समालोचना का अभाव है†, और उनमें जो निर्णय किये भी गये हैं, वे कहीं-कहीं पर त्रुटिपूर्ण हैं। हमने प्रस्तुत पुस्तक में उक्त निर्णयों की अपूर्णता एवं त्रुटि के संबंध में स्थान-स्थान पर अपना मत उपस्थित किया है। इस प्रकार का मत प्रकट करने से उन आदरणीय विद्वानों की अवज्ञा अथवा उनके महत्व को कम करने का हमारा अभिप्राय कदापि नहीं है, बल्कि सत्य-शोधक के आवश्यक कर्त्तव्य वश हमको ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। इसके लिए हम उन आदरणीय विद्वानों से विनम्रता पूर्वक क्षमा-याचना करते हैं।

हमारे मतानुसार सूरदास संबंधी शोध में अपूर्णता और त्रुटि रह जाने का प्रधान कारण यह है कि यह शोध उपयुक्त स्थानों में संचित उपयुक्त सामग्री की नहीं की गयी। यदि किसी शोधक ने उक्त सामग्री के कुछ भाग की कभी शोध भी की, तो उनका मत उसके प्रति सद्भावना का नहीं रहा, बल्कि पहले से बनी हुई भ्रांत धारणा के कारण उदासीन, और कभी-कभी विरोधपूर्ण भी रहा। निम्न लिखित पंक्तियों में हम अपना अभिप्राय और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करेंगे।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि पुष्टि संप्रदाय के कवि होने के कारण सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री उक्त संप्रदाय के वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य में सुरक्षित है। इस सामग्री का केवल अल्प भाग ही अभी तक प्रकाश में आ सका है, अतः हिंदी साहित्य के अनेक गणयमान्य विद्वानों को भी इसका यथेष्ट परिचय नहीं है। जिस सामग्री से वे परिचित हैं, उसका भी उन्होंने गंभीरता पूर्वक अध्ययन नहीं किया है और पूर्व धारणा के कारण उन्होंने उसके विरुद्ध मत प्रकट किया है। दुर्भाग्य से हिंदी साहित्य के कतिपय विद्वानों की कुछ समय से यह धारणा बन गयी है कि पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय है, अतः वे प्रमाण रूप में इसे स्वीकार नहीं करते हैं, जिसके कारण पुष्टि संप्रदायी कवियों के संबंध में उनके निर्णय अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण रह जाते हैं। हिंदी साहित्य के शोधकों में डा० दीनदयालु गुप्त ने उक्त साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक अध्ययन किया है और उनका दृष्टिकोण भी सद्भावनापूर्ण है, अतः वे अन्य विद्वानों की अपेक्षा पुष्टि संप्रदायी कवियों का विस्तृत एवं विश्वसनीय विवरण उपस्थित कर सके हैं।

---

† देखिए डा० ब्रजेश्वर वर्मा कृत "सूरदास" की प्रस्तावना पृष्ठ ३

हम पिछले कई वर्षों से पुष्टि संप्रदाय के अप्रकाशित वार्ता साहित्य एवं सांप्रदायिक साहित्य की शोध कर रहे हैं। हमने पुष्टि सम्प्रदायी पुस्कालयों एवं प्राचीन "हवेलियों" में संगृहीत प्रचुर सामग्री का विस्तृत अध्ययन किया है। हमने पुष्टि संप्रदायी मंदिरों की सेवा-विधि और कीर्तन-प्रणाली का व्यक्तिगत रूप से अनुभव और मनन किया है तथा पुष्टि संप्रदायी विद्वानों के सत्संग का लाभ उठाया है। इस प्रकार अपनी शोध के फल स्वरूप समय-समय पर हमने जो सूचनाएँ, निबंध एवं ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, उनका हिंदी के गण्यमान्य विद्वानों ने भी सन्मान किया है। कई वर्षों के परिश्रम के उपरांत अब हमारी शोध इस स्थिति पर पहुँच गयी है कि हम निर्णयात्मक रूप से कुछ कह सकें। हम अनुभव करते हैं कि हमारी पूर्व कृतियाँ भी सर्वथा त्रुटि रहित नहीं हैं, क्यों कि प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं-कहीं पर स्वयं हमने अपने पूर्व मत के विरुद्ध भी कथन किया है। अपनी पूर्व कृतियों के नवीन संस्करणों में हम उनका परिष्कार कर रहे हैं।

अपने शोध कार्य में हमने सूरदास संबंधी सामग्री का विशेष रूप से अवलोकन किया है। इस सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से अनुशीलन एवं परीक्षण करने के उपरांत हमने सूरदास के जीवन, ग्रंथ और सिद्धांतों पर नवीन पद्धति से निर्णयात्मक रूप में कुछ कहने का साहस किया है। हमारे निर्णय विश्वसनीय अंतःसाक्ष्य एवं माननीय बहिःसाक्ष्य पर आधारित हैं, अतः वे ठोस और प्रामाणिक कहे जा सकते हैं। संभव है अन्य विश्वस्त नवीन सामग्री के प्राप्त होने पर हमको इनमें भी कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता ज्ञात हो, किंतु अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम नम्रतापूर्वक कह सकते हैं कि हमारे निर्णय अपरिवर्तनीय हैं। ये निर्णय पाँच वर्गों में विभाजित हैं, जिनको हमने प्रस्तुत पुस्तक के १. सामग्री-निर्णय, २ चरित्र-निर्णय, ३. ग्रंथ-निर्णय, ४. सिद्धांत-निर्णय, ५. काव्य-निर्णय नामक पाँच परिच्छेदों में समाविष्ट किया है।

प्रथम परिच्छेद सामग्री-निर्णय में हमने प्रकाशित एवं अप्रकाशित उस सामग्री की समीक्षा की है, जिस पर हमारा सूरदास विषयक निर्णय आधारित है। यह सामग्री अंतःसाक्ष्य, बहिःसाक्ष्य और आधुनिक सामग्री के रूप में तीन श्रेणियों में विभाजित की गयी है। अंतःसाक्ष्य में सूरदास के आत्म विषयक कथनों पर विचार किया गया है। यद्यपि इस प्रकार के कथनों की संख्या अधिक नहीं है; तथापि विशाल-काय सूर-काव्य में खोजने पर ऐसे कतिपय कथन मिल जाते हैं, जिनसे सूरदास के जीवन-वृत्तांत के निर्णय करने में

महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। हमने ये आत्म कथन सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर से संगृहीत किये हैं। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान सूर-सारावली और साहित्य-लहरी को सूरदास की रचनाएँ मानने में संदेह करते हैं। इन दोनों ग्रंथों के गंभीर अध्ययन के अनंतर हमारा मत है कि सूर-सारावली और साहित्य-लहरी (वंश-परिचय वाले ११८ वें पद के अतिरिक्त) सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ हैं। यद्यपि इन दोनों ग्रंथों में से भी हमने कुछ आत्म कथनों का संकलन किया है, फिर भी अंतःसाक्ष्य के संबंध में हमारा मुख्य आधार सूरसागर है, जिसके सूरदास कृत होने में किसी को भी संदेह नहीं है। वहिःसाक्ष्य में पुष्टि संप्रदाय का वार्ता साहित्य मुख्य है। हिंदी साहित्य के कुछ विद्वान इस साहित्य को अप्रामाणिक मानते हैं, अतः हमने श्रावण शु० ७ शुक्रवार सं० १७४६ के प्राचीन उद्धरण से वार्ता साहित्य के प्रारंभ और विकास का इतिहास बतलाया है। यह एक नवीन खोज है, जिससे वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता पर निर्णयात्मक रूप से प्रकाश पड़ता है। पुष्टि संप्रदाय के वार्ता साहित्य में चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता एवं भावप्रकाश तथा सांप्रदायिक साहित्य में वल्लभदिग्विजय, वार्तामणिमाला, अष्टसखामृत, संप्रदायकल्पद्रुम, भावसंग्रह आदि प्राचीन ग्रंथों के सूरदास संबंधी उल्लेख वहिःसाक्ष्य के रूप में लिये गये हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्राचीन एवं विश्वस्त वहिःसाक्ष्य है। यह ग्रंथ अप्रकाशित होने के कारण दुष्प्राप्य था। अग्रवाल प्रेस, मथुरा ने इसे प्रथम बार अभी प्रकाशित किया है। इसकी भूमिका से इसकी प्रामाणिकता सिद्ध है। अन्य प्राचीन वहिःसाक्ष्यों में भक्तमाल और इसकी टीकाओं के उल्लेखों पर विचार किया गया है। वहिःसाक्ष्य में हमने वही उल्लेख स्वीकार किये हैं, जिनकी पुष्टि अंतःसाक्ष्य से भी हो गयी है। सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री तीन श्रेणियों में इस प्रकार विभाजित की गयी है—१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री, २. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री, ३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री। आधुनिक सामग्री में सूर-काव्य की आलोचना महत्वपूर्ण है, किंतु सूरदास का जीवन-वृतांत विषयक विवरण अपर्याप्त एवं त्रुटिपूर्ण है। केवल 'अष्टसखामृत' के अतिरिक्त इस परिच्छेद में वर्णित समस्त सामग्री का हमने भली भाँति अध्ययन एवं परीक्षण किया है। इसके उपरांत हमने यह निर्णय किया है कि सूरदास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कौन सी सामग्री उपयोगी है और कौन सी अनुपयोगी। हमने अपने निर्णय की पुष्टि में युक्तियुक्त कारण एवं प्रमाण भी देने की चेष्टा की है।

द्वितीय परिच्छेद चरित्र-निर्णय में अपनी शोध के आधार पर हमने सूरदास का प्रामाणिक जीवन-वृतांत उपस्थित किया है। हिंदी साहित्य संबंधी ग्रंथों में अब तक सूरदास की जीवन-घटनाओं एवं उनके काल-निर्णय के विषय में बहुत कम लिखा गया है। जो कुछ लिखा भी गया है, वह विवाद-ग्रस्त एवं त्रुटिपूर्ण है। सूरदास जैसे महाकवि के जीवन-वृतांत की अपूर्णता एवं त्रुटि हिंदी साहित्य के गौरव को क्षति पहुँचाने वाली बात है। विभिन्न क्षेत्रों में सूरदास संबंधी वर्षों के अध्ययन एवं अन्वेषण के अनंतर अब वह समय आ गया है कि उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित किया जा सके। हमको हर्ष है कि इस परिच्छेद द्वारा हमने इस दिशा में ठोस कदम बढ़ाने की चेष्टा की है। हमने सूरदास की जन्म-तिथि, जाति, उनके जन्मांधत्व, शरण-काल, उपस्थिति-काल और देहावसान-काल पर प्रामाणिक रूप से विचार किया है और तत्संबंधी अपने निर्णय उपस्थित किये हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि ये सभी विषय अभी तक विवादास्पद थे। जाति, जन्मांधत्व और अंतिम काल के निर्णय हमने अंतःसाक्ष्यों के आधार पर किये हैं, अतः इनमें परिवर्तन हो सकने की संभावना कम है। जन्म-स्थान के संबंध में हमारे पास "अष्टसखामृत" और "भावप्रकाश" के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं है। इस विषय का अंतःसाक्ष्य भी अप्राप्य है। सूरदास के अंधत्व के विषय में हमने विस्तार पूर्वक लिखा है। सूरदास के काव्य की प्रणाली और उनके द्वारा किये गये दृश्य जगत् के यथार्थ वर्णनों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य के प्रायः सभी आधुनिक विद्वान उनकी जन्मांधता में विश्वास नहीं करते हैं, किंतु हमने विश्वस्त अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्यों के आधार पर सूरदास को जन्मांध सिद्ध किया है। इस परिच्छेद में हमने जो कुछ लिखा है, आशा है हिंदी साहित्य के विद्वान इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे। यदि उनको हमारा कथन युक्तियुक्त एवं प्रामाणिक ज्ञात हो, तो वे अपने सूर संबंधी ग्रंथों में आवश्यक परिवर्तन एवं संशोधन करेंगे।

तृतीय परिच्छेद ग्रंथ-निर्णय में सूरदास की रचनाओं के संबंध में निर्णय किया गया है। सूरदास के नाम से प्रसिद्ध २५ ग्रंथों में से हमने उनके ७ ग्रंथ स्वतंत्र एवं प्रामाणिक माने हैं, जिनमें सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर मुख्य हैं। अब तक अधिकांश लेखकों ने सूर-सारावली को सूरसागर का सूचीपत्र बतलाया है। अब कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना मानने में भी संदेह करते हैं, किंतु हमारे मतानुसार यह श्री वल्लभाचार्य जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रची हुई सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक

सैद्धांतिक रचना है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरसागर और सारावली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को अप्रामाणिक बतलाने की चेष्टा की है, किंतु हमने उनके तर्कों पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण" से ही इसे सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध किया है। आजकल 'साहित्य-लहरी' के सूरदास कृत होने में भी संदेह किया जाता है, किंतु हमारे मतानुसार संख्या ११८ के वंश-परिचय वाले पद के अतिरिक्त यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है। हमारे अनुसंधान से ज्ञात होता है कि सूरदास ने इसकी रचना अष्टछाप के अन्य प्रमुख कवि नंददास के लिए सं० १६०७ के लगभग की थी, और इसकी पूर्ति उन्होंने सं० १६१७ में की। इन दोनों ग्रंथों के संबंध में हमारा विवेचन हिंदी साहित्य शोध के क्षेत्र में कुछ नवीनता उत्पन्न करेगा। सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचना है और इसके सूरदास कृत होने में संदेह भी नहीं किया जाता है, किंतु इसके स्वरूप के संबंध में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ है। सूरसागर के सुसंपादित संस्करण का अभाव सभी अनुभव करते हैं, किंतु इसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय किये बिना इसका प्रामाणिक संपादन हो भी किस प्रकार सकता है! हमने इस संबंध में अपना निर्णय और सुझाव देकर सूरसागर के संपादन कार्य की एक रूप-रेखा प्रस्तुत की है। हमारे मतानुसार इसका एक रूप 'कथात्मक' है, जिसकी रचना सूरदास ने वल्लभाचार्य जी के उपदेशानुसार श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी। इसका दूसरा रूप 'लीलात्मक' है, जो दैनिक कीर्तन के रूप में श्रीनाथ जी के सन्मुख गाया गया था। पहले रूप में वर्णनात्मक और दूसरे रूप में सेवात्मक पदों की अधिकता थी। इन दोनों प्रकार से रचे हुए पद इतने अधिक थे कि उन सबका संग्रह करना सब के लिए कठिन था, अतः संग्रहकर्ताओं ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उनका संकलन कर लिया और बाद में लिपिकर्ताओं की रुचि के अनुसार भी उनमें पदों का न्यूनाधिक्य होता रहा। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में क्रम-भेद होने का यही कारण ज्ञात होता है! सूरसागर का संपादन होने के पूर्व उनके अधिक से अधिक पदों का संकलन होना चाहिए। फिर भागवत के क्रमानुसार उनका संपादन होना चाहिए, तब कहीं हम सूरसागर के संपादन करने की स्थिति में होंगे। इस पुस्तक में उद्धृत सूरदास के पदों में से २२५ पूरे पदों की सूची हमने अनुक्रमणिका में देदी है। इस सूची के अतिरिक्त स्थानाभाव से लगभग इतने ही पदों की कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत की गयी हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में लगभग ५०० पदों का उपयोग किया गया है। इन पदों में से बहुत से पद

सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में नहीं मिलेंगे। इनको हमने कीर्तन संग्रहों में से संकलित किया है। सूरदास के अप्रचलित पदों का संग्रह करते समय इनका भी कुछ उपयोग हो सकेगा। सूरसागर का स्वरूप निश्चित कर हमने उन रचनाओं पर भी विचार किया है, जो सूरदास की स्वतंत्र कृतियाँ मानी जाती हैं, किंतु वास्तव में वे सूरसागर के ही अंतर्गत हैं। सूरसागर का संपादन करते समय इन रचनाओं को उसमें यथास्थान सम्मिलित करना चाहिए। सूरदास की प्रमुख ३ रचनाओं के अतिरिक्त उनकी ४ छोटी किंतु स्वतंत्र रचनाओं पर भी संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। सूरदास के पदों में इसी नाम के कुछ अन्य कवियों के पद भी मिल गये हैं, जिनको पृथक् करने की अत्यंत आवश्यकता है। हमने सूरदास के प्रामाणिक पदों की परीक्षा के संबंध में भी कुछ संकेत किया है, जो प्रक्षिप्त पदों के पहचानने में सहायक हो सकता है। इस परिच्छेद के अंत में हमने सूरदास कृत लाख—सवालाख पद-रचना की किंवदंती पर भी विचार किया है। सूरदास के रचना-काल और रचना-क्रम की गणना द्वारा हमने निर्णय किया है कि यह किंवदंती सत्य हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद सिद्धांत-निर्णय में हिंदी पाठकों के लिए कुछ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पुष्टि संप्रदायी कवि होने के कारण सूर-काव्य में वल्लभाचार्य जी के सिद्धांत, उनकी भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली के तत्वों का समावेश होना स्वाभाविक है; किंतु उनका स्पष्ट दिग्दर्शन कराने की अभी तक बहुत कम चेष्टा हुई है। हमने शुद्धाद्वैत सिद्धांत के कतिपय प्रमुख तत्वों का विवेचन करते हुए यह बतलाना है कि इनका सूरदास की रचनाओं में किस प्रकार उल्लेख हुआ है। इसके अनंतर पुष्टिमार्गीय भक्ति और सेवा-विधि का विवेचन किया गया है। वल्लभाचार्य जी की भक्ति-भावना को न समझने के कारण सूरदास की शृंगार-भक्ति पूर्ण रचनाओं पर कभी-कभी अन्य संप्रदायों का प्रभाव बतलाया जाता है, किंतु मूल ग्रंथों के उद्धरणों से हमने सिद्ध किया है कि वल्लभाचार्य जी को माधुर्य भक्ति भी ग्राह्य थी, जिसका प्रभाव सूरदास की शृंगारिक रचनाओं पर पड़ा है। हमने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली पर प्रकाश डाला है और सूरदास के तत्संबंधी प्रचलित पदों के अतिरिक्त बहुत से बहुमूल्य अप्रचलित पदों को भी एकत्रित किया है। इस प्रकार हमारा विश्वास है कि यह परिच्छेद पुष्टि संप्रदाय का ज्ञान प्राप्त करने वाले पाठकों को उपयोगी और रोचक ज्ञात होगा।

पंचम परिच्छेद काव्य-निर्णय में सूरदास के काव्य की आलोचना की गयी है। इस संबंध में अब तक जितना और जैसा लिखा जा चुका है, उससे अधिक और उत्तम लिखने की हममें योग्यता भी नहीं है। हमारा विचार पहले इस परिच्छेद को लिखने का नहीं था, किंतु हमारे कुछ मित्रों का सुझाव था कि विषय की पूर्णता के लिए इस परिच्छेद को लिखना भी आवश्यक है। जब लिखना आरंभ किया, तब इस विषय की सामग्री इतनी बढ़ गयी कि उसका समावेश इस पुस्तक में संभव ज्ञात नहीं हुआ। इसलिए इस परिच्छेद में सूर-काव्य संबंधी कुछ आवश्यक विषयों पर ही विचार किया गया है। संभव है पाठकों को इसमें भी कुछ काम की बातें मिल जावें। सूर-काव्य की विशेषताओं का विवेचन करते हुए हमने गो० तुलसीदास की कुछ रचनाओं पर सूरदास का प्रभाव बतलाया है। इस संबंध में हमने दोनों महाकवियों की रचनाओं के आवश्यक उद्धरण भी दिये हैं। इस परिच्छेद में हम सूर-संगीत पर भी विस्तार पूर्वक लिखना चाहते थे। इसके लिए हमने संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से परामर्श किया और सूरदास के अनेक पदों को राग-रागनियों के अनुसार क्रमबद्ध किया। हमको ज्ञात हुआ कि यह कार्य अत्यंत श्रमसाध्य एवं समयसाध्य है, जिसकी पूर्ति होने तक इस पुस्तक का प्रकाशन रोकना उचित नहीं है। वास्तव में यह एक स्वतंत्र कार्य है, जिसे संगीत शास्त्र का कोई अनुभवी विद्वान ही कर सकता है। हमने इस विषय का संकेत मात्र कर दिया है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी संक्षिप्त रूप से लिख कर हमने यह परिच्छेद समाप्त किया है।

पुस्तक के अंत में तीन अनुक्रमणिकाएँ दी गयी हैं। प्रथम अनुक्रमणिका में इस पुस्तक के पूरे पदों की अकारादि क्रम से सूची है। दूसरी नामानुक्रमणिका और तीसरी ग्रंथानुक्रमणिका में इस पुस्तक में उल्लिखित व्यक्तियों एवं ग्रंथों के नामों की अकारादि क्रम से सूचियाँ हैं। इसके अनंतर कुछ ऐसे पूरे पदों का संकलन है, जिनकी कुछ पंक्तियाँ पुस्तक में प्रसंगानुसार छापी गयी हैं।

अंत में इस पुस्तक की लेखन-कथा और लेखन-शैली के संबंध में भी कुछ कहना आवश्यक है। हम दोनों लेखकों में से एक गुजराती भाषा-भाषी और दूसरे हिंदी भाषा-भाषी हैं। एक का संबंध कांकरोली से और दूसरे का मथुरा से रहा है। हम दोनों ने विगत कई वर्षों से पृथक् क्षेत्रों में अष्टछाप के कवियों का अनुसंधान एवं अध्ययन किया है और तत्संबंधी अपनी रचनाएँ

प्रकाशित की हैं। साक्षात्कार का सुयोग मिलने के पूर्व ही हम उक्त रचनाओं के कारण एक दूसरे से परिचित हो गये और पत्र-व्यवहार द्वारा अपने विचारों का आदान-प्रदान करते रहे। अंत में हमने मथुरा में अपने सूर-संबंधी अध्ययन-कार्य का सामंजस्य कर पारस्परिक सहयोग से यह पुस्तक प्रस्तुत की है। अपनी शोध के निष्कर्षों की तरह हमने इस पुस्तक की लेखन-शैली में भी सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। ऐसा करने पर भी यदि कहीं पर लेखन-शैली की एक-रूपता और भाषा का समान प्रवाह ज्ञात न हो तो इसका कारण दो भिन्न भाषा-भाषी लेखकों की रचना समझ कर पाठक हमको क्षमा कर सकते हैं। यहाँ पर हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस ग्रंथ के निर्णय शुद्ध साहित्यिक शोध के आधार पर किये गये हैं। इनमें सांप्रदायिक आग्रह की गंध भी नहीं है। विद्वान आलोचकों से निवेदन है कि वे इसी दृष्टि से हमारे निर्णयों पर विचार करेंगे। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन और मुद्रण के समय एक लेखक के बार-बार अनुपस्थित और दूसरे के अस्वस्थ हो जाने के कारण इसके प्रकाशन में आशातीत विलंब हो गया है. और इसी कारण इसमें कुछ छापे की भूलें भी रह गयी हैं, जिनको विद्वान पाठक स्वयं सुधारने की कृपा करेंगे।

इस पुस्तक की रचना में जिन प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रंथों से सहायता ली गयी है, उनमें से प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची पुस्तक के आरंभ में दे दी गयी है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ ग्रंथों तथा लेखों का उपयोग किया गया है। हस्त लिखित सामग्री के लिए पुष्टि संप्रदायी प्राचीन पुस्तकालयों एवं मंदिरों से तथा कतिपय अप्रचलित पदों के लिए संप्रदाय के प्रमुख कीर्तनकारों से बहुमूल्य सहायता मिली है। इन सब सज्जनों के हम अत्यंत अनुगृहीत हैं और उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम अपने आदरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा महोदय के भी अत्यंत आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का परिचय लिखने की कृपा की है।

अग्रवाल भवन, मथुरा
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी सं० २००६

द्वारिकादास परीख
प्रभुदयाल मीतल

सूर-काव्य की प्राचीन समालोचना

किधौं सूर को सर लग्यौ, किधौं सूर को पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, तन मन धुनत सरीर॥

—तानसेन

★

सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥

★

तत्व-तत्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची-खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी॥

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निरबाह अर्थ, अदभुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम, करम, गुन, रूप, सबै रसना परकासी॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै।
सूर-कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर-चालन करै॥

—नाभाजी

कविता-करता तीनि हैं, तुलसी केसव सूर।
कविता-खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर॥

★

उत्तम पद कवि गंग के, उपमा कौं बलवीर।
केसव अर्थ-गँभीरता, सूर तीन गुन धीर॥

★

महा मोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियौ;
हरि-जस सुभ फैलाइ, सूर सूर सम तम हर्यौ॥

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

सामग्री-निर्णय

विषय | पृष्ठ संख्या

*

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ—निर्णय

चतुर्थ परिच्छेद
सिद्धांत-निर्णय

पंचम परिच्छेद
काव्य-निर्णय

★

अनुक्रमणिका

———

सहायक ग्रंथों की सूची

★

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
१.	अणु भाष्य (संस्कृत)	... ब्रह्मसूत्र भाष्य ...	वल्लभाचार्य जी
२.	सुबोधिनी (,,)	... भागवत टीका ...	,,
३.	पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम (संस्कृत)	,, ...	,,
४.	तत्वदीप निबंध (संस्कृत)	,, ...	,,
५.	षोड़श ग्रंथ (,,)	(सिद्धांत मुक्तावली, पुष्टि प्रवाह मर्यादा, संन्यास निर्णय, विवेक धैर्याश्रय, सेवाफल, कृष्णाश्रय, अंतःकरणप्रबोध)	,,
६.	विद्वन्मंडन (,,)	... ...	विट्ठलनाथ जी
७.	शृंगाररस मंडन(,,)	... ...	,,
८.	वल्लभ दिग्विजय(,,)	... ...	यदुनाथ जी
९.	शिक्षा पत्र (,,)	... ...	हरिराय जी
१०.	वार्ता मणिमाला(,,)	... ...	श्रीनाथ भट्ट
११.	हस्तलिखित वार्ता पुस्तक	सं० १६९७ में लिपिबद्ध एवं सरस्वती भंडार, कांकरोली में सुरक्षित	
१२.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	हस्त लिखित एवं मुद्रित...	गोकुलनाथ जी
१३.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता (लीला भावना वाली)	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ...	हरिराय जी
१४.	निज वार्ता, घरू वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र	ललूभाई छगनलाल ...	,,
१५.	संप्रदाय कल्पद्रुम	... ...	विट्ठलनाथ जी
१६.	भाव संग्रह	... ...	द्वारिकेश जी
१७.	प्राचीन वार्ता रहस्य(द्वि.भा.)	विद्याविभाग,कांकरोली...	द्वारिकादास परीख
१८.	खट ऋतु वार्ता	चतुर्भुजदास कथित ...	,,
१९.	वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती)	... ...	,,
२०.	श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता	... ...	सं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या
२१.	सूरसागर	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ...	सं० राधाकृष्णदास
२२.	सूरसागर	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	
२३.	सूरसागर	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
२४.	संक्षिप्त सूरसागर	... ...	सं० बेनीप्रसाद

संख्या	ग्रंथ	विवरण	रचयिता
२५.	सूरदास के पद	हस्त लिखित	निजी संग्रह
२६.	कीर्तन संग्रह	प्रकाशित एवं हस्त लिखित .	,,
२७.	साहित्य-लहरी	पुस्तक भंडार, लोहरियासराय	सं० महादेव प्रसाद
२८.	पंचमंजरी	(रसमंजरी, रूपमंजरी) ..	नंददास
२९.	भक्तमाल—भक्ति-रस-बोधिनी	... ...	नाभादास, प्रियादास
३०.	भक्तमाल—भक्तविनोद	... ...	मियाँसिंह
३१.	रामरसिकावली	.. ..	रघुराजसिंह
३२.	भक्तनामावली	... ...	ध्रुवदास
३३.	नागर समुच्चय	.. ..	नागरीदास
३४.	मूल गोसांई चरित्र	. ..	वेणीमाधव दास
३५.	तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड	कवितावली, गीतावली श्री कृष्ण-गीतावली .	रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
३६.	तुलसीदास	... .	माताप्रसाद गुप्त
३७.	भ्रमरगीत-सार	... ...	रामचंद्र शुक्ल
३८.	सूर-पंचरत्न	... ...	भगवानदीन, मोहनवल्लभ पंत
३९.	सूर-समीक्षा	... .	नरोत्तमदास स्वामी
४०.	सूर-मुक्तावली	... ...	हरदयालुसिंह
४१.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ...	रामचंद्र शुक्ल
४२.	हिंदी साहित्य	... ...	श्यामसुंदर दास
४३.	हिंदी साहित्य का इतिहास	... ..	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
४४.	हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास		रामकुमार वर्मा
४५.	हिंदी नवरत्न	...गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ	मिश्रबंधु
४६.	सूरदास (अंग्रेजी)	... ...	जनार्दन मिश्र
४७.	सूर-साहित्य	... ...	हजारीप्रसाद द्विवेदी
४८.	भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास	... .	नलिनीमोहन सान्याल
४९.	सूर-साहित्य की भूमिका	.	रामरतन भटनागर, वाचस्पति त्रिपाठी
५०.	सूरदास: एक अध्ययन	... ...	रामरतन भटनागर
५१.	सूर-सौरभ (भाग १,२)	.. ..	मुंशीराम शर्मा
५२.	सूरदास	... ...	ब्रजेश्वर वर्मा
५३.	अष्टछाप-परिचय	... ...	प्रभुदयाल मीतल
५४.	अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय	. ...	दीनदयाल गुप्त
५५.	सामयिक पत्र	(दिव्यादर्श, ब्रजभारती, सम्मेलन पत्रिका, नवीन भारत आदि)	

र्णय
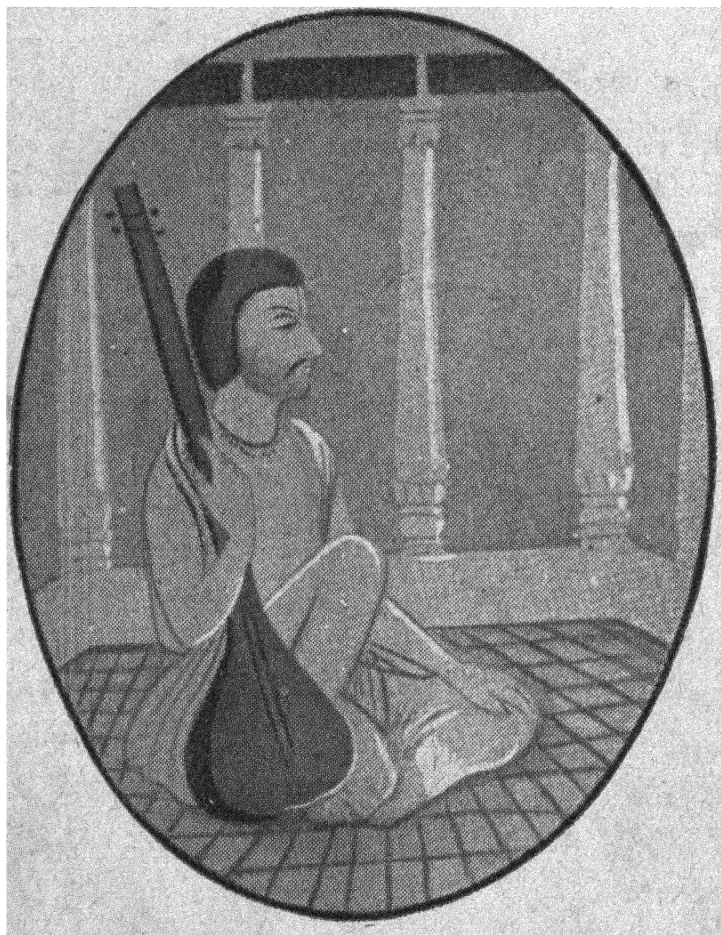
सूरदास

जन्म सं० १५३५ देहावसान सं० १६४०

सूर-निर्णय

★

प्रथम परिच्छेद

सामग्री-निर्णय

★

हिंदी के अमर महाकवि एवं परम भक्त महात्मा सूरदास अपनी काव्य-रचनाओं के कारण जग-विख्यात हैं, किंतु अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह उनका भी क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि सांसारिक बातों के प्रति उदासीन होने के कारण उन प्राचीन भक्त कवियों ने अपने भौतिक जीवन के संबंध में स्पष्ट एवं विस्तृत रूप से कुछ भी नहीं लिखा है।

जब से उन महाकवियों के काव्य का विशेष अध्ययन आरंभ हुआ है, तब से उनके विश्वसनीय और क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत की वैज्ञानिक शोध का आरंभ भी हो गया है। किसी कवि की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य और उसके समकालीन एवं परवर्ती लेखकों की रचनाओं के वहिःसाक्ष्य उसके जीवन-वृत्तांत की शोध के प्रमुख साधन माने जाते हैं। सूरदास की क्रमबद्ध जीवन-घटनाएँ प्रस्तुत करने के लिए भी इन्हीं साधनों का अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है।

सूरदास संबंधी आधार-सामग्री का इस प्रकार विभाग किया जा सकता है—

१. अंतःसाक्ष्य—सूरदास के आत्म-विषयक कथन, जो सारावली, साहित्यलहरी, सूरसागर एवं कवि कृत अन्य स्फुट पदों में उपलब्ध हैं।

२. वाह्यसाक्ष्य—समकालीन एवं परवर्ती प्राचीन लेखकों की रचनाओं—जैसे वार्ता साहित्य, वल्लभ दिग्विजय, संस्कृत वार्त्ता-मणिमाला, भक्तमाल आदि—में सूरदास संबंधी उल्लेख।

३. आधुनिक सामग्री—उपर्युक्त साधनों द्वारा प्राप्त सामग्री की आधुनिक विद्वानों द्वारा आलोचना।

उपर्युक्त सामग्री की सहायता से सूरदास का क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत उपस्थित करने के पूर्व हम इस आधार-सामग्री का विश्लेषण करना चाहते हैं, ताकि यह ज्ञात हो सके कि सूरदास की निर्णयात्मक समीक्षा के लिए यह सामग्री किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

१. अंतःसाक्ष्य

यद्यपि सूरदास ने अपनी विशालकाय रचनाओं में अपने संबंध में व्यवस्थित रूप से कुछ भी नहीं लिखा है, तथापि उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं पर ऐसे कथन अवश्य आ जाते हैं, जिनको हम उनके आत्म-विषयक उल्लेखों के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार के कथनों के लिए सूरदास कृत सारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर एवं अन्य स्फुट पद उल्लेखनीय हैं।

सारावली—यह होली के वृहद् गान के रूप में एक बड़ी रचना है, जो ११०७ छंदों में समाप्त हुई है। इसको प्रायः सूरसागर का सूचीपत्र कहा जाता है, किंतु यह सूरसागर से पृथक् एक स्वतंत्र रचना है। आजकल के कुछ विद्वान इसको सूरदास की कृति नहीं मानते हैं, किंतु हम इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार करते हैं। इस संबंध में हम अपना मत विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथ प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ पर हमको केवल यह बतलाना है कि इससे क्या-क्या अंतःसाक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने के पूर्व सूरदास की मानसिक स्थिति का उल्लेख—

करम योग पुनि ज्ञान उपासन, सबही भ्रम भरमायौ।
श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥

श्रीवल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् ही उन्होंने लीला विषयक पदों का गायन किया था, इसका उल्लेख—

ता दिन तें हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद। ११०३।

उन्होंने जिन लीलाओं का गायन किया था, उन्हीं के सार रूप में सारावली की रचना की थी, इसका उल्लेख—

ताकौ सार सूर सारावलि, गावत अति आनंद॥ ११०३॥
सरस संवतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै। ११०७।

उन्होंने अपनी ६७ वर्ष की आयु में सारावली की रचना की थी, इसका उल्लेख—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरष प्रवीन। ११०२।

साहित्य लहरी—यह दृष्टिकूट पदों का एक अत्यंत जटिल एवं क्लिष्ट काव्य ग्रंथ है। इसके विषय में भी प्रायः ऐसा समझा जाता है कि इसके पद सूरसागर से ही संकलित किये गये हैं, किंतु वास्तव में यह भी एक स्वतंत्र रचना है। इसके विषय में भी कुछ विद्वानों की सम्मति है कि यह सूरदास की कृति नहीं है, किंतु हम इसे भी सूरदास की ही रचना मानते हैं। इस संबंध में अपना विस्तृत कथन हम आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथों का विवरण लिखते हुए उपस्थित करेंगे। यहाँ पर हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि इसके कौन-कौन से कथन हम सूरदास की जीवन घटनाओं के अंतःसाक्ष्य रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

'साहित्य-लहरी' का रचना-काल और उसकी रचना के हेतु का उल्लेख—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद कौ लिखि, सुबल संवत पेख॥
नंदनंदन मास, छै तें हीन त्रितिया, बार—
नंदनंदन जनम तें है बान, सुख-आगार॥
त्रितिय रीछ, सुकर्म जोग, विचारि 'सूर' नवीन।
नंदनंदन दास हित 'साहित्य-लहरी' कीन॥ १०९॥

'साहित्य-लहरी' के ११८ वें पद में सूरदास की वंश-परंपरा का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनके संबंध में इतना इतिवृत्त और कहीं नहीं मिलता है, इसलिए 'साहित्य-लहरी' एवं इसके उक्त पद को प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक मानने वाले प्रायः प्रत्येक लेखक ने इसका उल्लेख किया है। साहित्य-लहरी की समाप्ति इसी पद सं० ११८ पर हुई है, किंतु इससे पूर्व १०९ वें पद में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि एवं उसकी रचना का उद्देश्य बतलाया जा चुका है। पद सं० ११८ के पश्चात् दो उपसंहारों में ४३ पद और दिये गये हैं*। 'साहित्य-लहरी' के ११८ पद सूरसागर में नहीं मिलते हैं, किंतु उपसंहार के ४३ पद सूरसागर से ही संकलित किये गये हैं।

'साहित्य-लहरी' के ११८ वें पद का मुख्यांश इस प्रकार है—

प्रथम ही प्रथ जाग तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखि नाम अनूप॥
× ×
तासु बंस प्रसंस में भौ चंद चारु नवीन॥

* पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा सं० १९९६ में प्रकाशित प्रति।

तासु बंस अनूप भौ हरचंद अति विख्यात ॥
आगरे रहि गोपचल में रह्यौ ता सुत बीर ।
पुत्र जनमे सात वाके महा भट गंभीर ॥

× ×

भयौ सातौ नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥
सो समर करि साहि सों सब गये विधि के लोक ।
रह्यौ सूरजचद दृग तें हीन भरि-भरि सोक ॥

× ×

प्रबल दच्छिन विप्र कुल तें शत्रु ह्वै है नास ।

× ×

माहि मनसा इहै व्रज की बसी सुख चित थाप ।
श्री गुसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ॥
विप्र प्रथ के याग को हौं भाव भूर निकाम ।
'सूर' है नँदनद जू कौ लियौ मोल गुलाम ॥११८॥

इस पद का सारांश इस प्रकार है—

'आरंभ में पृथु के यज्ञ से एक अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ। ब्रह्मा ने विचार कर उसका नाम ब्रह्मराव रखा। उसके प्रशंसनीय वंश में चंद हुआ। उसके वंश में हरचंद विख्यात व्यक्ति हुआ। उसके वीर पुत्र ने आगरे में रह कर गोपाचल में निवास किया। उसके सात महावीर पुत्र हुए। सातवें का नाम सूरजचंद है। उसके छै पुत्र बादशाह से युद्ध करते हुए परलोक वासी हो गये। मैं सातवाँ नेत्रहीन होने के कारण रह गया। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे वरदान दिया कि दक्षिण के प्रबल विप्र कुल से तेरे शत्रुओं का नाश होगा। मेरे मन में ब्रजवास की इच्छा हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप में स्थापना की। मैं पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण हूँ। 'सूर' नंदनंदन जी का मोल लिया गुलाम है।'

यदि यह पद सूरदास रचित है, तो उनके वंश-परिचय आदि के लिए यह निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण है, किंतु इस पद में जहाँ इतिहास विरुद्ध कथन एवं कई शंकाएँ उपलब्ध हैं, वहाँ इसकी पुष्टि अन्य अंतःसाक्ष्यों एवं बहिःसाक्ष्यों से भी नहीं होती है, बल्कि विश्वसनीय बाह्यसाक्ष्य इसके विरुद्ध ही प्राप्त होते हैं। हमारे मतानुसार 'साहित्य-लहरी' सूरदास की रचना होते हुए भी इसका यह पद सूरदास रचित नहीं है। किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की है, अतः यह प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक है। हमारा मत निम्न कारणों पर आधारित है—

(१) सूरदास ने छोटी-बड़ी कई रचनाएँ की हैं, किंतु उन्होंने अपने संबंध में इतना विस्तृत और स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं लिखा है। उन्होंने अपनी वंश-परंपरा और जाति आदि के प्रति उदासीनता ही प्रकट नहीं की है, बल्कि एक पद में उन्होंने भगवद्भक्ति के लिए अपनी जाति को छोड़ देने का भी कथन किया है†। ऐसी दशा में अपने वंश का ऐसा विस्तृत वर्णन कर 'विप्र प्रथ के याग कौ हौं भाव भूर निकाम' द्वारा गर्व पूर्वक अपने को ब्राह्मण कहना सूरदास द्वारा संभव नहीं है।

(२) इस पद में प्रयुक्त 'दक्षिण के प्रबल विप्रकुल' का अभिप्राय निश्चय पूर्वक पेशवाओं है, जो सूरदास से प्रायः दोसौ वर्ष पश्चात् हुए थे। इस कथन के कारण 'मिश्रबंधु' और शुक्लजी आदि हिंदी के प्रायः सभी इतिहास-कारों ने इस पद को प्रक्षिप्त माना है। जो विद्वान 'दक्षिण के विप्रकुल' का अभिप्राय पेशवाओं की अपेक्षा महाप्रभु बल्लभाचार्य से, और 'शत्रुओं' का अभिप्राय मुसलमानों की अपेक्षा भक्ति में बाधा डालने वाले काम-क्रोधादि से बतलाते हैं‡, वे अर्थ की खींचातानी करते हैं। पद के आद्योपांत पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह अर्थ संगत नहीं है। अपने छै भाइयों की मृत्यु के कारण उनके शत्रु मुसलमान थे, जिनके नाश की वे कामना करते थे। यह समस्त पद सूरदास के भौतिक जीवन से संबंध रखता है, अतः इसकी समस्त पंक्तियों का अर्थ भी भौतिक ही करना चाहिए। समस्त पद का भौतिक और केवल एक पंक्ति का आध्यात्मिक अर्थ करना असंगत है।

(३) इस पद में बतलाया गया है कि फिर सूरदास की इच्छा ब्रजवास करने की हुई। वहाँ जाने पर गोसाईं विट्ठलनाथ ने उनकी अष्टछाप में स्थापना की। 'चौरासी वार्ता' से ज्ञात होता है कि ब्रजवास करने के पूर्व उन्होंने अपना निवास स्थान मथुरा—आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान को बनाया था। वहीं पर श्री बल्लभाचार्य जी से उन्होंने दीक्षा ली थी। इस पद में सूरदास के गुरु बल्लभाचार्य जी का उल्लेख न होकर गो० विट्ठलनाथ का उल्लेख होने वह से इसे निश्चित रूप से किसी अन्य व्यक्ति की रचना सिद्ध करता है। सूरदास के शरणागत होने के समय तो गोस्वामी विट्ठलनाथ का जन्म भी नहीं हुआ था। इस घटना के लगभग ३५ वर्ष पश्चात् गो० विट्ठल-नाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी।

---

† मन, बच, क्रम सत भाउ कहत हौं, मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि, तजी जाति अपनी॥
—सूरसागर पद १०७ (वें० प्रे०)

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग पृ० २०

(४) ग्रंथ के अंत में उसके समाप्त होने की तिथि और उसकी रचना का उद्देश्य लिखा जाता है, किंतु 'साहित्य लहरी' के पद सं० १०९ में ग्रंथ-समाप्ति की तिथि और उसकी रचना का हेतु वर्णित होने पर भी उसके बाद के ११८ वें पद में इस प्रकार का कथन संगत ज्ञात नहीं होता।

(५) इस पद को अप्रामाणिक सिद्ध करने का एक और भी कारण है, जिस पर अभी तक किसी भी विद्वान आलोचक का ध्यान नहीं गया है। 'साहित्य लहरी' के पूर्वोक्त १०९ वें पद में इसका रचना-काल बतलाया गया है। इस पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इसका अर्थ शून्य (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते हैं। इस प्रकार 'साहित्य लहरी' का रचना-काल भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतानुसार सं० १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। उपर्युक्त पद में प्रयुक्त 'गोसाईं' शब्द साहित्य-लहरी के रचना-काल के विरुद्ध पड़ता है। बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६३४ के पश्चात् ही विट्ठलनाथजी 'गोसाईं' कहलाने लगे थे, इससे पूर्व वे 'दीक्षित' अथवा 'प्रभुचरण' संज्ञाओं से प्रसिद्ध थे। विट्ठलनाथ जी को 'गोसाईं' उपाधि संभवतः अकबर बादशाह द्वारा प्रदान की गयी थी। ऐसी दशा में अधिक से अधिक सं० १६२७ पर्यंत रची हुई 'साहित्य-लहरी' का गोसाईं शब्द निश्चित रूप से उक्त पद को अप्रामाणिक सिद्ध कर देता है।

(६) इस पद में दी हुई सूरदास की वंशावली और उनकी जीवन घटनाओं का उल्लेख इसी रूप में श्री हरिराय जी कृत भावना युक्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में नहीं है। श्री हरिरायजी की यह भावना सं० १७५२ में लिखित 'अष्टसखान की वार्ता' के नाम से 'प्राचीन वार्ता रहस्य' द्वितीय भाग में काँकरौली विद्या विभाग द्वारा छापी जा चुकी है और अब वह संपूर्ण रूप में तीन जन्म की लीला भावना वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के नाम से प्रथम बार अग्रवाल प्रेस, मथुरा द्वारा प्रकाशित हुई है। यदि इस पद में दी हुई वंशावली प्रामाणिक होती और वह श्री हरिराय जी के पूर्व स्वयं सूरदास द्वारा लिखी जा चुकी थी, तो श्री हरिराय जी को बाद में उसके विरुद्ध कथन करने का कोई कारण नहीं था।

(७) इस पद की अप्रामाणिकता का सबसे मुख्य कारण यह है कि यह पद दृष्टिकूट शैली का नहीं है। 'साहित्य-लहरी' का प्रत्येक पद दृष्टिकूट है, यहाँ तक कि उसका रचना-काल विषयक सं० १०९ का पद भी इसी शैली का है, फिर समस्त ग्रंथ की शैली के विरुद्ध इस पद की अप्रामाणिकता निश्चित है।

उपर्युक्त कारणों से 'साहित्य-लहरी' का यह पद अप्रामाणिक सिद्ध हो जाता है, अतः इसे अंतःसाक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह पद 'साहित्य-लहरी' की प्रति में किस प्रकार सम्मिलित हो गया। इसके उत्तर में हम भी डा० दीनदयाल गुप्त के इस अनुमान का समर्थन करते हैं—

'ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र जी से पहले 'साहित्य-लहरी' के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था *।'

सूरसागर एवं स्फुट पद—सूरदास की सबसे प्रमुख रचना सूरसागर है। सारावली, साहित्य-लहरी तथा कतिपय अन्य छोटी रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास द्वारा रचित समस्त पद साहित्य सूरसागर के अंतर्गत मान लिया जाता है। हम सूरसागर की रचना-प्रणाली और उसके निश्चित स्वरूप के संबंध में आगामी पृष्ठों में सूरदास के ग्रंथ प्रकरण में लिखेंगे। यहाँ पर उसकी मुद्रित प्रतियों के आधार पर हम अंतःसाक्ष्य के उल्लेखों पर विचार करना चाहते हैं। जो पद वर्तमान छपी हुई प्रतियों में प्राप्त नहीं होते, उनको यहाँ पर स्फुट पद मान लिया गया है। इन स्फुट पदों की प्रामाणिकता की परीक्षा भी आगामी पृष्ठों में सूरसागर के साथ की जावेगी।

अंतःसाक्ष्य के रूप में निम्न लिखित पद उल्लेखनीय हैं—

उच्च जातीयता सूचक उल्लेख—

१. मेरे जिय ऐसी आय बनी।
   'सूरदास' भगवंत भजन लगि तजी जाति अपनी॥
२. बिकानी हौं हरि-मुख की मुसकानि।
   गई ज्ञाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहिचानि॥

जन्मांधता सूचक उल्लेख—

१. किन तेरौ गोविंद नाम धर्यौ।
   'सूर' की बिरियाँ निठुर ह्वै बैठे, जन्म अंध कर्यौ॥
२. नाथ मोहि अब की बेर उबारौ।
   करम हीन, जनम कौ अंधौ, मोतें कौन नकारौ॥
३. हरि बिन संकट में को का कौ।
   रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरौ 'सूर' सदा कौ॥

* 'अष्टछाप और बल्लभसंप्रदाय' पृष्ठ ६२

गृह-त्याग का समय निर्देश और आरंभिक जीवन संबंधी उल्लेख—

१. प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा।
आयौ अबेरौ, चलौ सबेरौ, लेकर अपने साजा ॥

२. मन ! तू मूरख क्यों कर रह्यौ।
पहलौ पन खेलन में खोयौ, वृथा जनम गयौ ॥

स्वामित्व सूचक उल्लेख—

१. हौं हरि सब पतितन कौ नायक।
सिमिट जहाँ-तहाँ तें सब कोऊ, आय जुरे इक ठौर ॥

२. प्रभु मैं सब पतितन कौ टीकौ।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में, कहत सबै मोहिं नीकौ ॥

शरण में आने से पूर्व की रचना का आभास—

१. जियरा कौन नींद करि सोयौ।
'सूर' हरी कौ सुमिरन करिलै, मिलिजा जातें (भयौ) बिछोयौ ॥

शरणागति सूचक उल्लेख—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उगारौ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं, बिनु एक सरन तुम्हारौ ॥

२. मन रे ! तू भूल्यौ जनम गँवावै।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै ॥

३. मन रे ! तैं आयुष वृथा गँवाई।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्री बल्लभ सुखदाई।
'सूरदास' सरनागत हरि की, और न कछू उपाई ॥

शरण-काल सूचक उल्लेख—

श्री बल्लभ दीजै मोहि बधाई।
चिरजीवो अक्का जी कौ सुत श्री बिट्ठल सुखदाई।

नाममंत्र-प्राप्ति सूचक उल्लेख—

अजहू सावधान किन होहि।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ।
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु गारुडी सुनायौ ॥

समर्पण सूचक उल्लेख—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों यहै साँचौ मत मेरौ ॥

पुष्टि मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

१. हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
जानत को पुष्टि-पथ मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ ॥
मारग-रीति उदर के काजैं, सीख सकल भरमाऊँ ।
अति आचार चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ ॥
२. नाम-महिमा ऐसी जो जानों ।
मर्यादादिक कहें, लौकिक सुख लहें,
पुष्टि कों पुष्टि-पथ निश्चय जो मानों ॥

मार्ग की उच्चता का उल्लेख—

हौं पतित सिरोमनि सरन परयौ ।
यह ऊँचो संतन कौ मारग, ता मारग में पैंड धरयौ ॥

ब्रज-वास एवं माता-पिता की विमुखता—

ब्रज बसि का के बोल सहों ।
तुम बिन स्याम और नहिं जानों, सकुचति तुमहिं रहों ॥
धृग माता, धृग पिता, विमुख तुव भावै तहाँ बहों ॥

गोकुल, वृंदावन, मथुरा-गमन सूचक उल्लेख—

१. ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी ।
मोहन नारि गोकुल की ठाड़ी बोलत अमृत बानी ॥
२. वृंदावन एक पलक जो रहियै ।
'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी, भाग्य बिना कहाँ तें पइयै ॥

श्रीनाथ जी का इष्ट विषयक उल्लेख—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी ।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा कर मोहि,
सकल अघ हरन हरि, गरुड़गामी ॥
२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगल कारी ।
उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी ॥

श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख—

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ ।
'सूर' कूर आँधरौ, मैं द्वार परयौ गाऊँ ॥

निवास-स्थान और ढाढ़ी विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि गोवरधन तें आयौ ।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी 'सूरदास' मेरौ नाँउ ॥

सभ्यता सूचक उल्लेख—

१. तुम ही मोकों ढीट कियौ ।
प्रभु तुम मेरी सकुचि मिटाई, जोई-जोई माँगत पेलि ।
२. आज हौं एक-एक करि टरि हौं ।
मोहि कहा डरपावत हौ प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौं ॥

प्रकृति सूचक उल्लेख—

(दीनता) १. हरि ! मैं तुम सों कहा दुराऊँ ।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊँ ॥
२. हरि-भक्तन कों गर्व न करनों ।
यह अपराध परम पद हू तें उतर नरक में परनों ।
हौं धनवंत, ये भिक्षुक, यह कबहू चित्त न धरनों ॥
(सत्संग) करहु मन हरि-भक्तन कौ संग ।

गुरु-निष्ठा सूचक उल्लेख—

१. भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ ।
'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥
२. हरि-हरि-हरि-हरि सुमिरन करौ । हरि-चरनारविंद उर धरौ ॥
हरि गुरु एक रूप नृप जान । तामें कछु संदेह न आन ॥
गुरुप्रसन्न हरि प्रसन्न जोई । गुरु के दुखित दुखित हरि होई ॥
३. हरि-हरि-हरि सुमिरन करौ । हरि चरनारविंद उर धरौ ॥
श्रीमद् बल्लभ प्रभु के चरन । तिनकों गहौ सुदृढ़ करि सरन ॥
विट्ठलनाथ कृष्ण सुत जाके । सरन गहे दुख नासहिं ताके ॥

'सूरसागर' का नामोल्लेख—

है प्रभु मोहू तें अति पापी ।
सागर सूर विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी ॥

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

१. बिनती करत मरत हौं लाज ।
तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोऊ न आयौ बाज ॥

२. मोसों बात सकुच तजि कहि हैं ।
तीनौं पन मैं ओर निबाही, इहै स्वांग को काछै ॥

सिद्धांत विषयक उल्लेख—

१. कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावै ।
कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावै ॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही, हरि-लीला जग देखें ।
तौ तिहिं दुख-सुख निकट न आवै, ब्रह्म रूप करि लेखें ॥
हरि हैं तिहूँ लोक के नायक, सकल भली सो करि हैं ।
'सूरदास' यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं ॥

२. राधिका गेह हरि देह बासी, और त्रियन घर तनु प्रकासी ।

३. सुनत सुत मन अति हरषायौ ।
जग प्रपंच हरि रूप लहै जब, दोष भाव मिट जैहैं ॥

४. अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
यह संसार सुआ सेंमर ज्यों सुंदर देखि लुभायौ ।
चाखन लाग्यौ रूई उडि गई, हाथ कछू नहीं आयौ ॥

५. ब्रज ही में बसै आपुनहिं बिसरायौ ।
प्रकृति पुरुष एक करि जानहु, बा तन भेद करायौ ॥
द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ, सुख कारन उपजायौ ॥

राम-कृष्ण की अभेदता सूचक उल्लेख—

जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि, कृपासिंधु कल्यान कंस अरि ।
रामचंद्र राजीवनयन बर, सरन साधु श्रीपति सारंगधर ॥

ज्योतिष ज्ञान विषयक उल्लेख—

नंद जू ! मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा तें आयौ ।
लगन सोधि ज्योतिष कों गिनिकै चाहत तुम्हें सुनायौ ॥

शकुन ज्ञान विषयक उल्लेख—

मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ ।
भद्रा भली भरणी भय हरणी, चलत मेघ अरु छींकौ ॥

भागवत स्वरूप सूचक उल्लेख—

१. निगम कल्पतरु पक्व फल, सुक मुख तें जु दयो।
२. निगम कल्पतरु, सीतल छाया।
द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुण तत्व व्यापै नहिं माया॥

३. श्री भागवत सकल गुन खानि।
सर्ग, विसर्ग, स्थान रु पोषण, उति, मन्वंतर जानि।
ईश, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि ये दस लच्छन होय॥

सुबोधिनी का उल्लेख—

कहा चाकरी अटकी जन की।
करम ज्ञान आसय सब देखे, वहाँ ठौर नहिं पाँव धरन की।
श्री सुकदेव वचन आसय, सुनो सुबोधिनी टीका जिनकी॥

गुरू प्रसाद से भागवत ज्ञान की प्राप्ति—

१. धन्य सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ।
२. गुरु बिनु ऐसी कौन करैं।
भवसागर तें बूड़त राखे दीपक हाथ धरैं॥

खड़ी बोली की रचना-शैली—

१. मैं योगी यस गाया रे बाला।
तेरे सुत के दरसन कारन मैं कासी से धाया रे बाला॥

२. बरजो जसोदा जी कहाना।
ये क्या जानें रस की बतियाँ क्या जानें खेल जहाना॥

३. हे दैया मतवाला योगी द्वारे मेरे आया है।
देखो मैया तेरा बालक जिन मोय चटक लगाया है॥

सूरसागर की मुद्रित एवं अमुद्रित प्रतियों में कुछ ऐसे भी पद प्राप्त होते हैं, जो सूर विषयक इतिहास के परिचायक होते हुए भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं। ऐसे पदों के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के अनुसंधान में भ्रमात्मक मत बनाया जा सकता है, अतः उनके संबंध में विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

निम्न लिखित पद के अंतःसाक्ष्य से सूरदास के जाट जातीय होने की कल्पना की जा सकती है—

हरि जू ! हौं यातें दुख पात्र ।
श्री गिरिधरन चरन रति ना भई, तजि विषया रस मात्र ॥
हुतौ आढ्य तब कियौ असद् व्यय, करी न ब्रज बन-यात्र ॥
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सों, पोष्यौ अपनौ गात्र ।
भवन सँवारि नारि रस लोभ्यौ सुत वाहन जन भ्रात्र ॥
महानुभाव पद निकट न परसे, जान्यौ न कृत विधात्र ।
छल-बल करि जित तित हरि पर धन धायौ सब दिन रात ॥
सुद्धासुद्ध बहु बोझ बहेउ सिर कृपि जो करेउ लै दात्र ।
हृदय कुचील काम भू तृषना जल कलिमल है पात्र ।
ऐसे कुमति जाट सूरज कों, प्रभु बिन कौन उधात्र ॥

यह पद सूरसागर की मुद्रित प्रति में है, किंतु कांकरोली सरस्वती भंडार की हस्त लिखित प्रति में नहीं है। सूरदास के प्रामाणिक पदों के आधार पर जब इस पद की परीक्षा की जाती है, तब निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

(१) सूरदास के किसी भी पद के अंतिम शब्द 'पात्र' 'मात्र' 'भ्रात्र' जैसे कठोर उच्चारण वाले हमारे देखने में नहीं आये ।

(२) सूरदास के किसी भी पद से उनकी धनाढ्यता तथा नारी, पुत्र, भवन, वाहन आदि की विद्यमानता सिद्ध नहीं होती है ।

(३) सूरदास के पदों में खेती का दृष्टांत होते हुए भी स्वयं उनके द्वारा खेती करने की बात ज्ञात नहीं होती है ।

(४) सूरदास की सार्थक शब्द-योजना की शैली को देखते हुए इस पद की आरंभिक टेक के 'हरि' और 'दुख पात्र' शब्द परस्पर विरुद्ध हैं ।

उपर्युक्त कारणों से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यह पद सूरदास रचित नहीं है, अतः प्रक्षिप्त एवं अप्रमाणिक है । सूरदास की छाप के कुछ पद ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त उनके अन्य संप्रदाय के अनुयायी होने की भी कल्पना की जा सकती है । सूरदास की रचना-शैली से उन पदों की तुलना करने पर वे भी प्रक्षिप्त एवं अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं ।

हम इस प्रकार के दो पद देकर यह बतलाना चाहते हैं कि आवश्यक सावधानी बिना अंतःसाक्ष्य द्वारा भी किस प्रकार भ्रमात्मक धारणा की पुष्टि हो सकती है।

निम्न लिखित पद से सूरदास के विट्ठलविपुल के सेवक होने की कल्पना की जा सकती है—

मथुरा दिन-दिन अधिक बिराजै।
तेज प्रताप राय केशौ कौ, तीन लोक में गाजै॥
कोटिक तीरथ जहँ चलि आवै, मधि विश्रांत विराजै।
करि अस्नान प्रात जमुना कौ, जियत मरत भै भाजै॥
श्री विट्ठलविपुल विनोद विहारिन ब्रज कौ बसिबौ छाजै।
'सूरदास' सेवक तिनही के, कहत सुनत गिरिराजै॥

सार्थक शब्द-योजना सूरदास के काव्य का प्रमुख गुण है, अतः उनके प्रामाणिक पदों का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण अर्थ का सूचक है। उनके पदों में निरर्थक अथवा भरती के शब्द ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। उपर्युक्त पद की जाँच जब हम इस दृष्टि से करते हैं, तब निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

(१) इस पद की अंतिम आधी पंक्ति 'कहत सुनत गिरिराजै' निरर्थक शब्द-योजना है, क्यों कि इसका कोई संगत अर्थ नहीं है। इसलिए सूरदास की शैली के विरुद्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है।

(२) इसी प्रकार 'सूरदास सेवक तिनही के' वाली पंक्ति भी सूरदास की रचना-प्रणाली से मेल नहीं खाती है। सूरदास ने अपनी किसी भी रचना में इस प्रकार का स्पष्ट कथन नहीं किया है। स्वयं वल्लभाचार्य जी के लिए भी उन्होंने इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि उनके लिए उन्होंने गुरु सूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

(३) विट्ठलविपुल निंबार्क संप्रदाय की शाखा टट्टी संप्रदाय के प्रवर्त्तक सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री हरिदास जी के शिष्य और उनके उत्तराधिकारी थे। यदि सूरदास को वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पूर्व विट्ठलविपुल का शिष्य माना जाता है, तब यह ऐतिहासिक काल-क्रम और उनके स्वामित्व के बाह्य साक्ष्य के विरुद्ध पड़ता है।

(४) वल्लभ संप्रदाय में आने के पूर्व यदि उनको हरिदासी संप्रदाय का शिष्य माना जाय, तो हमको ऐसा प्रबल कारण ढूँढ़ना होगा, जिससे उनको एक वैष्णव संप्रदाय का त्याग कर दूसरे वैष्णव संप्रदाय में आने को बाध्य होना पड़ा। जहाँ तक हमारा सूर विषयक अध्ययन है, हमको उनके पदों के अंतःसाक्ष्य से ऐसा कोई कारण दिखलायी नहीं देता है।

(५) इस प्रकार संप्रदाय-परिवर्तन से सूरदासों के विचारों की अस्थिरता प्रकट होती है, जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। सूरदास की जीवन-घटनाओं पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वे स्थिर विचार और दृढ़ आग्रह के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य—"मारग रोक परयौ हठ द्वारे पतित-सिरोमनि सूर"—से भी यही सिद्ध होता है।

इसी प्रकार निम्न लिखित पद भी प्रक्षिप्त एवं अप्रमाणिक सिद्ध होता है—

कह्यौ भागवत सुक अनुराग। कैसै समुझै बिनु बड़ भाग।
श्री गुरु सकल कृपा करी॥
"सूर" आस करि बरण्यौ रास। चाहत हौं बृंदावन बास।
श्रीराधावर इतनी कर कृपा॥
निस-दिन स्याम सेउँ मैं तोहिं। इहै कृपा करि दीजै मोहिं।
नव निकुंज सुख पुंज में॥
हरिवंसी हरिदासी जहाँ। हरि करुणा करि राखहु तहाँ।
नित बिहार आभार है॥
कहत सुनत बाढ़त रस रीति। बक्ता स्रोता हरिपद प्रीति।
रास रसिक गुन गाइ हौं †॥

इस पद की अप्रामाणिकता के निम्न लिखित कारण हैं—

(१) सूरदास के किसी भी पद में उनके नाम की छाप आ जाने के पश्चात इतनी पंक्तियाँ लिखी हुई नहीं मिलती हैं।

(२) हरिवंशी और हरिदासी दोनों भिन्न-भिन्न मत हैं और दोनों की लीला भावनाओं में भी अंतर है, अतः दोनों का एकीकरण असंगत है।

(३) सूरदास के पुष्टिमार्ग की रास विषयक भावना उक्त दोनों संप्रदायों से भिन्न है, अतः उनके साथ रहने की अभिलाषा असंगत ज्ञात होती है।

(४) यदि यहाँ भूतल के बृंदावन से तात्पर्य लिया जाय तो पुष्टि-मार्ग की मान्यता के अनुसार चंद्रसरोवर ही सारस्वत कल्प का बृंदावन है, जहाँ उस समय रास हुआ था। सूरदास इसी कारण वहाँ रहते थे, अतः श्वेतवाराह कल्पीय बृंदावन और उसकी लीला से उनको कोई प्रयोजन नहीं था। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से भी अपने परम इष्ट श्रीनाथजी की सेवा छोड़कर सूरदास इस बृंदावन में हरिवंशी और हरिदासी संप्रदाय वालों के साथ में रहने की अभिलाषा किस प्रकार कर सकते थे!

† सूरसागर (वें० प्रे० बंबई) पृ० ३६३

२. बाह्य साक्ष्य

बाह्य साक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी उल्लेखों का सब से अधिक संग्रह वल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य में उपलब्ध होता है। इस साहित्य में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'निज वार्ता' और उन पर श्री हरिराय जी कृत 'भाव प्रकाश' मुख्य रचनाएँ हैं। इनके द्वारा सूरदास के जीवन-वृत्तांत की जितनी सामग्री प्राप्त होती है, उतनी अन्य समस्त साधनों के सम्मिलित कर देने से भी नहीं होती है। इसलिए वार्ता साहित्य के पक्ष एवं विपक्ष में लिखने वाले सभी साहित्यिक विद्वानों ने सूरदास के चारित्रिक अनुसंधान के लिए उक्त सामग्री का अनिवार्य रूप से उपयोग किया है। हमने भी सूरदास के चरित्र-निर्माण के लिए उक्त सामग्री को प्रधान माध्यम के रूप में स्वीकार किया है, अतः उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के संबंध में यहाँ पर कुछ विवेचन करना आवश्यक है।

वास्तविक बात यह है कि हिंदी साहित्य के विद्वानों ने वल्लभ संप्रदाय के वार्ता साहित्य का अभी तक अनुसंधान पूर्वक गंभीर अध्ययन नहीं किया है। यही कारण है कि अपने अपर्याप्त ज्ञान के कारण कुछ विद्वान वार्ता साहित्य को अनुपयोगी एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने लगते हैं। हमने कई वर्षों से इस साहित्य की परिश्रम पूर्वक शोध की है और तत्संबंधी अल्प ज्ञान के आधार पर हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता में संदेह करना व्यर्थ है। इस साहित्य की यथार्थ शोध करने पर ऐसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है, जो प्राचीन हिंदी साहित्य के इतिहास के संशोधन एवं उसके नव निर्माण में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। वार्ता साहित्य संबंधी भ्रम के निराकरण के लिए हम उसके आरंभ का इतिहास बतलाना चाहते हैं।

वार्ता साहित्य का प्रारंभ और विकास

कांकरोली सरस्वती भंडार के हस्त लिखित ग्रंथों में हिंदी बंध संख्या १०१×१ में १२८ प्रसंगों वाली एक वार्ता पुस्तक सुरक्षित है, जिसकी अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—

"सं० १६४६ वर्षे श्रावण सुदी ७ शुकरे पोथी लिखी छे, प्रतो गोविंददास ब्राह्मण नी पोथी थी लख्यूं छे"

इस पुष्पिका से सिद्ध है कि यह वार्ता पुस्तक सं० १७४६ में गोविंददास ब्राह्मण की प्रति से लिपिबद्ध की गयी थी। इस पुस्तक के एक उल्लेख से

यह सिद्ध होता है, कि गोविंददास ब्राह्मण की प्रति श्री गोकुलनाथ जी के समय में लिखी गयी थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री आचार्यजी के सुसरके घर ते श्रीनाथ †जी पधारे। श्रीअक्काजी के साथ पाँव धारे सो प्रथम सेवा श्रीनाथजू की श्रीआचार्यजू करते सो श्रीगुसाईं जी ने करी। सो श्री गोकुलनाथजू माथे सेवा श्रीनाथजू विराजत हैं। बात अनिर्वचनीय है।"

इस उद्धरण की वर्तमान काल की क्रिया 'विराजत है' से ज्ञात होता है कि पुस्तक लिखते समय श्री गोकुलनाथ जी विद्यमान थे। श्री गोकुलनाथ जी का समय सं० १६०८ से १६९७ तक है। इस प्रति के एक प्रसंग से वार्ता साहित्य के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, अतः उसका आवश्यक अंश यहाँ पर दिया जाता है—

"एक समै गोवर्द्धनदास परम भागवतोत्तम उज्जैन में कृष्णभट्ट के घर आए। सो कृष्णभट्ट ने आगो भलो कीनो। भोजन करवायो। भोजन करि बैठे तब भट्ट जी ने कह्यो कछु सुनावो"रात्रि दिवस वैष्णवन की वार्ता करे। सो करत करते तीन दिन तीन रात वितीत भई। चौथे दिवस देह की सुधि भई तब भट्टानी ने उनकों स्नान करवायो महा प्रसाद लिवायो। सो आज्ञा मांगि कें अपने देश कों चले। तब कृष्णभट्ट ने ए वातैं लिखी। सो प्रति दिन इन को पाठ करें। और कोऊ भगवदी वैष्णव आवें तासों कहे। यों करते भट्ट जी को सरीर थक्यो तब गोविंद भट्ट बेटा सों कह्यो बाबा ए पोथी अरु घर की सोंज सब गोकुल पठइओ। तदउपरांत गोविन्द भट्ट श्री गोकुलनाथजू के सेवक·······*

सो ऐसे करत बहुत वर्ष बीते तब नेत्र बल घट्यो। तब विचार कियो····श्री भागवत श्रीसुबोधिनी टीका टिप्पनी सब पोथी अरु भेट वैष्णव जब चले तब उनकों सोंपी; कही श्रीवल्लभ (श्रीगोकुलनाथजी का नाम है) के आगे धरियो। अरु कही बाप की वस्तु बेटा पावे। वे वैष्णव चले सो श्री गोकुल आये श्री गोकुलनाथजु के आगे राखी भेट अरु पोथी। पत्र श्री महाप्रभु (गोकुलनाथ जी) ने बांच्यो। तब हृदो भरि आयो। अरु कही यह निवेदन। इतनी कही तब पोथी श्री

† यहाँ पर श्रीनाथजी से अभिप्राय ठाकुर गोकुलनाथ जी से है।

* इस उद्धरण की पूर्ति के लिये काँकरौली से प्रकाशित 'दिव्यादर्श' मासिक की फाइलें देखनी चाहिए।

हस्त सों खोली। तब बीच छोटी चोपरी निकसी तब बांची। बांचि के आंखि सों लगाई अरु हृदो भरि आयो। सो नित ग्रन्थ पाठ करते। एक वार्ता अरु दोई। बांधि के पेटी में धरिकें तारो मारिकें भोजन को पधारें।

यों करत बहुत बरस बीते। तब नेत्र को प्रकार भयो। तब श्रीरायजू सों कही जो पोथी पेटी में है सो लावो। तब श्री रायजु ने पेटी खोलिकें पोथी हाथ मे दीनी। लेकर नेत्र सों लगाई। फेरि रायजू कों दीनी रायजू ने पेटी में धरी सो नित्य यों करें।

सो एक दिवस रायजू ने देखी सो नीकी लागी तब इनके प्रिय श्रीगोपालजू हते सो बात रायजूने कही हमारे वैष्णवन की बात है। तब गोपालजू ने कही जो देखिए तब इन नांही कही। वह देखी न जाय अन्नाजी बहुत जतन करि राखत हैं। तारे मे है। और मो पास मांगत हैं तब आनि देतहूं। फिरि कहत हैं जो धरी, तब कहूं जो हांजू। तब भोजनकों पांउ धारत हैं। तब फिरि गोपालजू ने कही कि तुम एक बात करो। जब उनकों देत हो तब तुमकों वे फिरि देत हैं तब इतनी करो जो और में धरिकें पेटी को तारा दीजो। अरु वे पूछें तारो दीयो तब कहि जो दीयो। तब कही जो भले। फिरि जब दूसरे दिन श्रीगोकुलनाथजी मांगी तब रायजू ने आय दीनी। तब श्रीजू नेत्र सों लगाय के फेरि दीनी तब रायजू और में धरि भोजन कों पधारे। श्रीजू तो भोजन करिकें पोढ़ें। पाछे रायजू तो गोपालजू के घर पधारे। तब पोथी गोपालजू कों दीनी। तब पोथी बांचि बांचि के गद्‌गद् कंठ भए। पाछे नारायणदास लेखक कों बुलायो। तब पोथी लिखवाई। सो उनने दो प्रति कीनी। एक उसको दीनी दूसरी लेखक पास रही। सो गोपालजू रायजू ने जानी नांही। सनेहीजी के आगे कहें। सो वाके एक और सनेही रहे सो वाने उनकों कही। तब उन कह्यो यह सिखाय देहु। तब उनने लिख दीनीं। एसे पांच सात प्रति भई। तब एक प्रति धनजी भाई चोपरा के तिन देखी। तब श्रीजू के आगे बात करी। तब श्रीजू चोंके खोज कियो। वे सब बुलाए। परस्पर पूछे पाछे जानी जो रायजू को काम है। तब कह्यो गोप्य वस्तु प्रगट भई भगवत इच्छा मानी।"

इस उद्धरण से वार्ता साहित्य का आरंभिक इतिहास ज्ञात होता है और इससे तत्संबंधी कई शंकाओं का समाधान भी हो जाता है। इससे निम्न लिखित महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं—

(१) गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक उज्जैन निवासी परम विद्वान कृष्णभट्ट ने संप्रदाय में उस समय तक प्रचलित वार्ताओं को सर्व प्रथम लेखबद्ध किया था। वे उन वार्ताओं का स्वयं पाठ करते थे और आगत भगवदीय वैष्णवों में उनकी चर्चा करते थे। उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि गोवर्धनदास और कृष्णभट्ट जैसे उद्भट विद्वानों में जिन वार्ताओं की चर्चा निरंतर तीन दिन और तीन रात्रि तक हुई, वे वार्ताएँ यथेष्ट संख्याओं में होनी चाहिएँ और उनका संबंध किन्हीं परमादरणीय व्यक्तियों से होना चाहिए। इससे ज्ञात होता है कि वे वार्ताएँ महाप्रभु बल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी के सेवकों की थीं, जिनका ज्ञान उनको किसी विश्वस्त सूत्र से अथवा स्वयं अपने अनुभव से हुआ होगा। वार्ताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी के अनेक सेवक गो० विट्ठलनाथ जी के समय में भी विद्यमान थे और गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक तो उक्त दोनों भगवदीय वैष्णवों—गोवर्धनदास और कृष्णभट्ट—के समकालीन ही थे।

(२) कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध की गयी वार्ताओं की पोथी उनके अनंतर उनके पुत्र गोविंदभट्ट द्वारा श्री गोकुलनाथ जी को अर्पित की गयी। श्री गोकुलनाथ जी अपने अंतरंग सेवकों में उन वार्ताओं के दो-एक प्रसंगों की चर्चा प्रति दिन किया करते थे। इसके उपरांत वे उस प्रति को बड़ी सावधानी से ताले में बंद कर रख देते थे। उपर्युक्त उल्लेख में वार्ताओं की उस प्रति को 'छोटी चोपरी' लिखा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वह प्रति श्री मद्-भागवत अथवा सुबोधिनी जैसे ग्रंथों की अपेक्षा छोटी थी। उसे १०-२० पन्नों की छोटी पुस्तक नहीं समझनी चाहिए। यदि वह इतनी छोटी होती, तो उसके प्रसंगों की चर्चा अहर्निश तीन दिनों तक निरंतर कैसे होती रहती!

(३) श्री गोकुलनाथ जी के पुत्र श्री विट्ठलेशराय ने अपने पिता से छिपा कर उक्त पोथी की प्रतिलिपि करवायी और उस प्रति के आधार पर फिर अनेक प्रतियाँ तैयार हुईं। इस प्रकार जिन वार्ताओं की चर्चा पहले संप्रदाय के अंतरंग व्यक्तियों तक ही सीमित थी, वह बाद में संप्रदाय के सामान्य भक्तों में भी प्रचलित हुई। नाभा जी कृत भक्तमाल एवं उस समय की अन्य रचनाओं में उक्त वार्ता पुस्तकों का नामोल्लेख न देखकर जो विद्वान उनकी प्राचीनता में संदेह करने लगते हैं, उनको यह ज्ञात होना चाहिए कि तब तक उन वार्ताओं का ज्ञान संप्रदाय के भी कुछ अंतरंग व्यक्तियों को ही था, संप्रदायेतर अन्य व्यक्तियों को उनका ज्ञान न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध वार्ताओं की जिस प्रति का ऊपर उल्लेख हुआ है, उसमें 'चौरासी' अथवा 'दोसौ बावन' का क्रम नहीं था। श्री गोकुलनाथ जी ने उन क्रमरहित वार्ताओं को श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी के सेवकों के अनुसार क्रमबद्ध किया था। वे सुबोधिनी की कथा के अनंतर कृष्णभट्ट की पोथी के आधार पर उक्त वार्ताओं का विस्तार पूर्वक कथन किया करते थे।

श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित एवं 'चौरासी' और 'दोसौ बावन' के रूप में विभाजित वार्ताओं को बाद में श्री हरिराय जी ने संकलित किया। श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का और भी विस्तार किया। गोकुलनाथ जी द्वारा कहे हुए प्रसंगों में जहाँ कुछ न्यूनता अथवा अपूर्णता दिखलाई दी, वहाँ पर श्री हरिराय जी ने अपनी भावना नामक टिप्पणी लिख कर पूर्ति की। इस प्रकार आचार्य जी एवं गोसाईं जी के समय में जो वार्ताएँ प्रचलित थीं, वे कृष्णभट्ट द्वारा लेखबद्ध होकर गोकुल-नाथ जी के समय में प्रसिद्ध हुईं। बाद में श्री हरिराय जी द्वारा विस्तृत होकर उनका लोक में प्रचार हुआ।

यह वार्ता साहित्य के आरंभ और उसके विकास का इतिहास है, जिसे जान लेने पर उसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के संबंध में संदेह नहीं किया जा सकता है। इस वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी बाह्य साक्ष्य के लिए चौरासी वैष्णवन की वार्ता, निज वार्ता और उन पर हरिराय जी कृत भावप्रकाश प्रमुख हैं। अब क्रमशः उक्त रचनाओं पर विचार किया जाता है—

चौरासी वैष्णवन की वार्ता—वार्ता साहित्य में सूरदास संबंधी उल्लेखों के लिए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' प्रमुख है, जो आचार्य जी के सेवकों का आदर्श उपस्थित करने के लिए श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कथित हुई है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि श्री गोकुलनाथ जी रचित चौरासी वैष्णवों की संस्कृत नामावली, श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ दिग्विजय' (सं० १६५८ में रचित) और श्री गोसाईं जी के सेवक अलीखान पठान कृत ८४ वैष्णवों के नामों वाले पद आदि अनेक प्रमाणों से होती है।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं अन्य मूल वार्ताओं में भक्तों के प्रासंगिक चरित्रों का कथन किया गया है, जिनका विशदीकरण और जिनकी पूर्ति श्री हरिरायजी ने अपने भावप्रकाश द्वारा की है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

निवास स्थान का उल्लेख—

'सो गऊघाट आगरे और मथुरा के बीचों बीच है। सो गऊघाट ऊपर सूरदास जी कौ स्थल हुतौ।'

स्वामी होने का उल्लेख—

'सो सूरदास जी स्वामी आप सेवक करते। सूरदासजी भगवदीय हैं···तातें बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते।'

शरण-काल सूचक उल्लेख—

'सो श्री आचार्य जी महाप्रभु गऊघाट ऊपर उतरे। सो सूरदासजी के सेवक देखि के सूरदास जी सों जाय कही जो आज श्री आचार्यजी महाप्रभु आप पधारे हैं, जिनने दक्षिण में दिग्विजय कीयो है, सब पंडितन को जीते हैं, भक्तिमार्ग स्थापन कीयौ है।'

'पाछे समयानुसार भोग सराय अनोसरि करिकें महाप्रसाद लेकें, श्री आचार्य जी महाप्रभु गादी ऊपर विराजे।'

सम्प्रदाय प्रवेश सूचक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभुजी नें प्रथम सूरदास जी कों नाम सुनायौ, पाछें समर्पण करवायौ और फिर दशम स्कंध की अनुक्रमणिका कही···'

लीला-गायन और भागवत के अनुसार पद-रचना का उल्लेख—

'तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी। ··· पाछे सूरदासजी ने बहुत पद कीये।···पाछें जो पद कीये सो श्री भागवत प्रथम स्कंध ते द्वादश स्कंध तांई कीये।'

अंधत्व का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने अपने श्री मुख सों कह्यो जो सूरदास श्री गोकुल को दर्शन करौ। सो सूरदास जी ने श्री गोकुल कों दंडवत करी।'

'तब सूरदास जी सों कह्यौ, जो सूरदास ऊपर आउ स्नान करिकें श्रीनाथ जी कौ दर्शन करि।'

'देशाधिपति ने पूछौ जो सूरदास जी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाहीं। सो प्यासे कैसें मरत हैं और बिन देखें तुम उपमा को देत हौ, सो तुम कैसें देत हौ।

श्रीनाथजी के कीर्तन का आदेश विषयक उल्लेख—

'तब श्री महाप्रभू जी अपने मन में विचारे जो श्रीनाथजी के यहाँ और तो सब सेवा मंडान भयौ और कीर्तन को मंडान नाही कियौ है ताते सूरदास जी को दीजियै'

सहस्रावधि पद-रचना और सूरसागर का उल्लेख—

'सूरदास जी ने सहस्रावधि पद कीये हैं ताको सागर कहियै सो जगत में प्रसिद्ध भये।'

अकबर भेंट का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के पद देशाधिपति ने सुने सो सुनिकें यह विचारी जो सूरदास जी काहू विधि सो मिले तो भलौ। सो भगवदिच्छा ते सूरदासजी मिले। तब सूरदासजी ने देशाधिपति के आगे कीर्तन गायौ।'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'बहुर सूरदास जी श्रीनाथजीद्वार आयकें बहुत दिन ताईं श्रीनाथ जी की सेवा कीनी। बीच-बीच में श्री गोकुल श्रीनवनीत प्रिया जी के दर्शन कों आवते।'

गुरु और ईश्वर में अभेदता सूचक उल्लेख—

'सूरदास जी बोले जो मैं तो सब श्री आचार्य जी महाप्रभून को ही जस वर्णन कियौ है कछू न्यारौ देखूं तौ न्यारौ करूँ।'

देहावसान काल सूचक उल्लेख—

'सो राजभोग आरती करिकें श्रीगुसाईं जी श्री गिरिराज ते नीचे उतरे सो आप परासोली पधारे। भीतरिया सेवक रामदास जी प्रभृत और कुंभनदास जी और श्री गुसाईं जी के सेवक गोविंदस्वामी चत्रभुजदाज प्रभृत और सब श्री गुसाईं जी के साथ आये।....तब श्री गुसाईं जी ने पूछौ जो सूरदास जी नेत्र की वृति कहाँ है। तब सूरदास जी ने एक पद और कह्यौ। इतनों कहत ही सूरदास जी ने या शरीर को त्याग कीयौ।'

निज वार्ता—यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी कथित है और उस पर श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश भी उपलब्ध है। इसके एक उल्लेख से सूरदास जी की जन्म-तिथि इस प्रकार ज्ञात होती है—

'सो सूरदास जी जब श्रीआचार्य जी महाप्रभु को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है। सो श्रीआचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हुते।'

भावप्रकाश—श्री गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश की रचना द्वारा की है। जिस प्रकार प्रियादास ने अपनी टीका द्वारा नाभाजी कृत भक्तमाल का विस्तार किया है, उसी प्रकार श्री हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी कथित वार्ताओं का विशदीकरण किया है।

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश में उनकी संस्कृत रचना 'शिक्षापत्र' के कई उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इससे जाना जा सकता है कि भावप्रकाश की रचना शिक्षापत्र की रचना के पश्चात् हुई है। शिक्षापत्र के आंतर उल्लेखों से उसकी रचना का समय सं० १७०० से १७२८ तक सिद्ध होता है, अतः भावप्रकाश का समय इसके पश्चात् का हो सकता है। श्री हरिराय जी का समय सं० १६४७ से १७७२ तक है, अतः भावप्रकाश का रचनाकाल सं० १७२८ से १७७२ तक होना चाहिए। सं० १७५२ की लिखी हुई भावप्रकाश की प्रति संप्रदाय में उपलब्ध है। उससे भी उक्त समय की पुष्टि होती है। भावप्रकाश की भाषा शैली और उसके सैद्धांतिक उल्लेखों से उसके रचयिता श्री हरिराय जी सिद्ध होते हैं। इसकी वाह्य पुष्टि हरिराय जी के संबंधी, सेवक और समकालीन काका वल्लभ जी (जन्म सं० १७०३) रचित चौरासी वैष्णवों के लीलात्मक नाम वाले वृहद् गुर्जर धोल से होती है।

मूल चौरासी वार्ता में सूरदास का उल्लेख तब से आरंभ होता है, जब वे गऊघाट पर रहा करते थे। वहाँ पर रहते हुए वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इसके पूर्ववर्ती प्रसङ्गों की शृङ्खला श्रीहरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में मिलायी है। श्री हरिराय जी के कथन से सूरदास संबंधी उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होते हैं--

जन्म स्थान और जाति विषयक उल्लेख--

'सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस ऊरे में एक सीहीं गाम है,…सो ता गाम में एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे।'

जन्मांधता का उल्लेख—

'सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नांही हैं।'

शकुन विषयक उल्लेख—

'सो जो कोई पूछे तिनकों सगुन बतावे, सो होइ।

स्वामी विषयक उल्लेख—

'सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये।

गायन कला के ज्ञान का उल्लेख—

'सो सूरदास विरह के पद सेवकन कों सुनावते। सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो।'

'सूरदास को कंठ बहोत सुंदर हतो। सो गान विद्या में चतुर····।'

ग्राम त्याग और गऊघाट निवास का उल्लेख—

'या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे बरस अठारे के भये। तब सूरदास उहां ते चले···सो यह विचारि के सूरदास मथुरा और आगरे के बीचों बीच गऊ घाट है, तहाँ आयके·· रहे।'

आचार्य जी द्वारा दीक्षा एवं ज्ञान-प्राप्ति का उल्लेख—

'तब श्री आचार्य जी ने कृपा करिकें सूरदास कों नाम सुनायो। ता पाछें समर्पन करवायो। पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये।·· सो सगरी श्री सुबोधिनी जी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो। तब भगवल्लीला जस वर्णन करिवे को सामर्थ्य भयो।····ता पाछे श्री आचार्य जी ने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो।'

भागवत के अनुसार पद-रचना करने का उल्लेख—

'तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये।'

सूरसागर का उल्लेख—

'और सूरदास कों जब श्री आचार्य जी देखते तब कहते जो आवो सूरसागर !···'

उपस्थिति सूचक उल्लेख—

'अब श्री आचार्य जी आप अंतर्ध्यान लीला किये और श्री गुसाईं जी कों करनो है। सो पहले भगवदीयन कूं नित्य लीला में स्थापन करिके आपु पधारेंगे।'

नामों का उल्लेख—

'सो इन सूरदास जी के चारि नाम हैं। श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। ··और श्री गुसांई जी आप 'सूरदास' कहते।···और तीसरो इनको नाम 'सूरजदास' है। श्री गोवर्द्धननाथ जी ने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदास जी कों करि दिये। तामें 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास जी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदास जी के कीर्तन में चारों 'भोग' कहे हैं।'

वल्लभ दिग्विजय—इस ग्रंथ की रचना गो० विट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र श्री यदुनाथ जी ने सं० १६५८ में की थी। यदुनाथ जी का जन्म सं० १६१५† में हुआ था, इसलिए वे सूरदास के देहावसान के समय प्रायः २५ वर्ष के थे। सूरदास के समकालीन होने के कारण उनका उल्लेख विशेष प्रामाणिक है। श्री ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे स्वीकार करते हुए भी किंचित अनिश्चितता इस प्रकार प्रकट की है—

"इस ग्रंथ का रचना-काल देखते हुए इसकी प्रामाणिकता में संदेह का स्थान कम है, यदि वास्तव में यह ग्रंथ इसी संवत् का तथा श्री यदुनाथ का ही रचा हुआ है§।"

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता निश्चित है। इसके रचना-काल का उल्लेख इसकी पुष्पिका* में हुआ है और इसके यदुनाथ जी कृत होने की स्पष्ट सूचना इसके ७१ वर्ष बाद रचे गये 'संप्रदाय कल्पद्रुम'‡ से प्राप्त होती है।

इस ग्रंथ के एक उल्लेख से सूरदास के शरण-काल और उनकी जाति विषयक महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। उसमें कहा गया है कि अड़ैल से ब्रज जाते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने एक सारस्वत ब्राह्मण सूरदास पर कृपा की थी। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"ततोऽलर्कपुरे समागतः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो ब्रज-समागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः‡‡।"

संस्कृत वार्ता मणिमाला—इस ग्रंथ के रचयिता श्रीनाथ भट्ट मठपति तैलंग ब्राह्मण थे। उनके रचे हुए संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथ संप्रदाय में प्राप्त हैं। उनकी ब्रजभाषा की पद रचनाएँ भी अब उपलब्ध हुई हैं।

---

† श्री वल्लभ-वंशवृक्ष

§ सूरदास पृ० ३३

* वसुबाणरसेन्द्वब्दे तपस्य सितके रवौ।
चमत्कारिपूरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत सोमजा तटे॥

‡ श्री वल्लभ दिग्विजय करि, श्री यदुनाथ सुजान।
परंपरा वर्णन जु प्रभु, कीनेहु भूपति मान॥

‡‡ वल्लभ दिग्विजय, पृ० ५०

उनके एक पद के आधार पर वे गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक सिद्ध होते हैं†, अतः वे सूरदास के प्रायः समकालीन होने चाहिए। उनकी रचना में महाप्रभु जी और गुसाईं जी के अतिरिक्त किसी अन्य गोस्वामी बालक का उल्लेख नहीं मिलता है; यहाँ तक कि श्री गोकुलनाथ जी का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। इससे भी उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

इस ग्रंथ में उस समय उपलब्ध वार्ताओं के अनेक प्रसंगों का संस्कृत पद्य में अनुवाद किया गया है। इससे जहाँ वार्ताओं की महत्ता ज्ञात होती है, वहाँ उनकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है। ब्रजभाषा रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद होना उस समय के लिए एक विशेष बात थी। यह ग्रंथ ३७०० श्लोकों में पूर्ण हुआ है और इसमें १२५ वार्ता प्रसंगों का कथन किया गया है। इस ग्रंथ की दो विशाल-काय हस्त प्रतियाँ कांकरोली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में सुरक्षित हैं। इसकी आरंभिक १६ वार्ताएँ 'प्राचीन वार्ता रहस्य' प्रथम एवं तृतीय भाग में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस ग्रंथ की ५८ वीं वार्ता सूरदास से संबंधित है। उस वार्ता के निम्न-लिखित उल्लेख से सूरदास की जन्मांधता और उनके ब्राह्मण होने की सूचना प्राप्त होती है—

"जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः।"

भक्तमाल—इस ग्रंथ की रचना एक रामोपासक भक्त कवि नाभाजी ने की है। उन्होंने अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती अनेक भक्तों का परिचयात्मक वर्णन किया है। गोसाईं विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी के संबंध में लिखते हुए उन्होंने 'श्री गिरिधर भ्राजमान' शब्दों का प्रयोग किया है। इस वर्तमान काल की क्रिया से सिद्ध होता है कि भक्तमाल की रचना गिरिधर जी के आचार्यत्व-काल में हुई थी। श्री गिरिधर जी के आचार्यत्व का समय सं० १६४२ से १६७७ तक है, अतः भक्तमाल की रचना का समय सं० १६६० के लगभग ज्ञात होता है।

---

† प्रगटे श्री विट्ठल व्रज के नाथ।
पंच सब्द धुनि बजत बधाई, निज जन भये सनाथ॥
मंगल कलस लिए ब्रज—भामिनि, गावत गीत सु गाथ।
सकल मनोरथ भये 'नाथ' के, निज पद धरे जु माथ॥

हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने भक्तमाल को प्रामाणिक एवं सांप्रदायिक पक्षपात से रहित माना है। उन्होंने अधिकांश भक्तों का जिस प्रकार कथन किया है, उससे यही धारणा बनायी जा सकती है, किंतु अनुसंधान करने पर उनके कतिपय उल्लेख भ्रमात्मक भी सिद्ध होते हैं। भक्तमाल में राजा आशकरण को रामभक्त कील्हदेव का शिष्य लिखा गया है, किंतु राजा आशकरण रचित पद, उनके सेव्य ठाकुर और उनके भानजे के वंशजों का इतिहास उक्त कथन को भ्रमात्मक सिद्ध करते हैं। राजा आशकरण के राम विषयक कोई पद प्राप्त नहीं हैं और न कील्हदेव के उल्लेख वाले पद ही प्राप्त होते हैं। इसके विरुद्ध वल्लभ संप्रदाय की वात्सल्य भक्ति भावना के उनके अनेक पद प्रसिद्ध हैं, जो संप्रदाय के प्रमुख मंदिरों में सदा से गाये जाते हैं†। एक पद में तो उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को विट्ठलनाथ जी का सेवक लिखा है‡।

इसके अतिरिक्त राजा आशकरण के सेव्य स्वरूप "मोहन नागर", जिनका उल्लेख उनके प्रत्येक पद में प्राप्त होता है, वल्लभ संप्रदायी गोस्वामियों के ठाकुर हैं। उनके 'मोहन' ठाकुर गुजरात के धोलका ग्राम में और उनके 'नागर' ठाकुर बंबई में वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में विराजमान हैं। राजा आशकरण के भानजे के वंश में आज तक जितने राजा कृष्णगढ़ की गद्दी पर हुए हैं, वे सब के सब वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी होते रहे हैं। इन सब कारणों से नाभा जी का आशकरण संबंधी कथन भ्रमात्मक सिद्ध होता है।

भक्तमाल में इसी प्रकार के और भी कतिपय कथन हैं, जो अनुसंधान करने पर भ्रमात्मक सिद्ध होते हैं, किंतु अप्रासंगिक होने के कारण उनका यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया है।

---

† १. यह नित्य नेम यसोदाजू मेरें निहारें लाल लड़ावन कों।
नित्य उठ पालनें झुलाऊँ, सकट-भंजन जस गावन कों॥

२. या गोकुल के चौहटे रंग राची ग्वाल।
मोहन खेलै फाग, नैन सलोने री रंग राची ग्वाल॥

‡ जै श्री विट्ठलनाथ कृपाल।
कलि के जीव पतित अघ-रासी, अपने करिकें किये निहाल॥
पुरुषोत्तम निज लेकर दीने, ऐसे दाता महा दयाल।
'आसकरन' कों अपनौ कीयौ, पुष्टि प्रेम बचन प्रतिपाल॥

नाभाजी ने सूरदास के संबंध में केवल एक छप्पय लिखा है, जिसमें उनके कवित्व की प्रशंसा की गयी है और जिससे सूरदास की जन्मांधता का भी संकेत मिलता है। वह छप्पय इस प्रकार है—

उक्ति चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्‌भुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन स्रवननि करै।
सूर-कवित सुन कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

भक्तमाल की टीकाएँ एवं अन्य रचनाएँ—नाभाजी के उपरांत अनेक कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करते हुए भक्तमाल के कथनों का विस्तार किया है। इस प्रकार की रचनाओं में प्रियादास की कृति विशेष उल्लेखनीय है, किंतु आश्चर्य की बात है कि उसमें सूरदास पर कुछ नहीं लिखा गया है। महाराज रघुराजसिंह कृत 'राम रसिकावली' और कवि मियाँसिंह कृत 'भक्तविनोद' में सूरदास का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। नाभाजी कृत भक्तमाल में दिए हुए कई सूरदासों की जीवन-घटनाएँ उनके उल्लेखों में मिल जाने के कारण वे अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हो गये हैं, अतः बाह्य साक्ष्य के लिए उनका उपयोग नहीं किया गया है।

ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में भी अनेक भक्तों का संक्षिप्त कथन किया गया है। उसमें सूरदास का भी अत्यंत संक्षिप्त उल्लेख है, जिसमें उनकी भक्ति-भावना की प्रशंसा की गयी है। कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम 'नागरीदास' कृत 'नागर समुच्चय' में भी सूरदास संबंधी उल्लेख प्राप्त होते हैं, किंतु वे अतिरंजित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण अग्राह्य हैं।

आईने अकबरी, मुन्तखिब उल तवारीख, मुंशियात अबुलफज़ल और मूल गोसाईं चरित में भी सूरदास संबंधी उल्लेख मिलते हैं, किंतु वे अप्रामाणिक होने के कारण यहाँ पर बाह्य साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किये गये हैं। आगामी पृष्ठों में यथा स्थान आवश्यकता होने पर उनकी आलोचना की जावेगी।

अष्टसखामृत—यह ग्रंथ वृंदावन निवासी प्राणनाथ कवि का रचा हुआ है। इसकी एक प्रति सं० १७६७ की लिखी हुई बंबई के बड़े मंदिर में है‡। इस ग्रंथ के परिचयात्मक दोहाओं से ज्ञात होता है कि इसका रचयिता वल्लभ संप्रदाय का अनुयायी था और वह गो० विट्ठलनाथ जी, श्री गोकुलनाथ जी तथा अष्टसखाओं का समकालीन था†। इसके रचे हुए गोकुलनाथ जी के माला प्रसंग विषयक कवित्त भी प्राप्त होते हैं।

इस ग्रंथ में सूरदास विषयक उल्लेख इस प्रकार है—

"श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही सर-जलजात।
सारसुती-दुज तरु-सुफल, सूर भगत विख्यात॥
सूर सूर हू तें अधिक, निस दिन करत प्रकास।
जाकी मति हरि-चरन में, ताको देत विलास॥
बाहिर नैन-विहीन सो, भीतर नैन विसाल।
तिन्हें न जग कछु देखिबौ, लखि हरि रूप निहाल॥
बाहिर अंतर सकल तम, करत ताहि छिन दूर।
हरि-पद-मारग लखि परत, यातें साँचे सूर॥
स्याम-सुधा-मधुरस-पगी, रसना सूर सुहाइ।
'प्रान' मनहिं थिर देत करि, हरि-अनुराग बढ़ाइ॥
रूप माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक।
हरि गुन रस-सागर कियौ, हरत सकल जग सोक॥
सारद बैठी कंठ तेहि, निस दिन करै कलोल।
हरि-लीला-रस पद कथत, नित नए सूर अमोल॥

---

‡ नवीन भारत, १६ मई सन् १९४८ में प्रकाशित लेख 'महाकवि सूरदास'

† 'गोकुलेस मथुरेस प्रभु, पद गहि हरन कलेस।
अष्टसखामृत अब रचत, भक्त-दास 'प्रानेस'॥
हरिबल्लभ बल्लभ प्रभू, बिट्ठलेस पद धूरि।
धरों सीस जिनकी कृपा, पाई जीवन मूरि॥
जिनकी कृपा कटाच्छ सूँ, बसि बृंदाबन धाम।
'प्राननाथ' धनि धनि भयौ, सब विधि पूरन काम॥
जनम-जनम ब्रज भू मिलै, जनम-जनम बिट्ठलेस।
जनम-जनम आठौं सखा, गोकुलनाथ ब्रजेस॥

कहा बड़ाई करि सकै, जाकौ प्रगट प्रकास ।
श्री वल्लभ के लाड़िले, कहियत सूरजदास ॥
वर बल्लभ सेयौ नहीं, गायौ गुन नहीं सूर ।
'प्रान' जप्यौ नहीं नाम हरि, ताके मुख में धूर ॥"

इस उल्लेख से सूरदास के जन्म-स्थान सीहीं, उनकी जाति सारस्वत ब्राह्मण और उनके अंधत्व का परिचय प्राप्त होता है ।

संप्रदाय कल्पद्रुम—यह ग्रंथ श्री हरिराय जी के सेवक विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा व्रजभाषा पद्य में लिखा गया है । इस ग्रंथ के रचयिता विट्ठलनाथ भट्ट गो० विट्ठलनाथ की पुत्री यमुना के पुत्र जगन्नाथ पंडितराज के ज्येष्ठ भ्राता गोपीनाथ के पौत्र थे । उन्होंने कृष्णगढ़ के राजा मानसिंह के लिए उक्त ग्रंथ की रचना सं० १७२९ में की थी ।

इस ग्रंथ में श्री आचार्य जी और श्री गोसांई जी की जीवन-घटनाओं का वर्णन किया गया है । प्राचीन ग्रंथों में वर्णित घटनाओं को तिथि-संवत् सहित देने की प्रथा प्रायः नहीं थी, किंतु इस ग्रंथ में वर्णित अनेक प्रसंगों के तिथि-संवत दिये हुए हैं । इस दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है, किंतु इसके कतिपय संवत् विश्वसनीय नहीं हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रंथकार ने अपने समय से पूर्व की घटनाओं के संवत् निर्धारित करने में अधिक सावधानी से काम नहीं लिया है, किंतु उसके समय की घटनाओं के संवत् प्रामाणिक हैं ।

इस ग्रंथ के निम्न लिखित उल्लेख से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपनी तृतीय यात्रा की समाप्ति पर सूरदास को शरण में लिया था—

सूरदास को सरन लै, तीर्थराज प्रभु आय ।
भू प्रदच्छिणा पूर्ण किय, ब्रह्मभोज करवाय* ॥

जमुनादास कृत धौल—श्री हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती भाषा का एक प्राचीन धौल प्राप्त है, जिसमें सूरदास का विस्तृत परिचय दिया गया है । जमुनादास और उसकी रचनाएँ वल्लभ-संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं । उसके रचे हुए सर्वोत्तम आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं । इस धौल की प्रामाणिकता प्राचीन हस्त प्रतियों और उसके व्यापक प्रचार से सिद्ध है । इस धौल की अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने सूरदास विषयक कथन श्री हरिराय जी द्वारा श्रवण करने के उपरांत लिखा है । इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसका कथन हरिराय जी कृत भावप्रकाश के अनुकूल है-

* संप्रदाय कल्पद्रुम, पृ० ४२

श्री सूरदास जी परम भक्त शिरोमणि, आ रहेता ते तो दिल्ही सीही ग्राम जो ।
बालपने थी हरिभक्ति करता सदा, आ त्रण कालना ज्ञाननी राखे हाम जो ॥१॥

प्रगट्याए तो ब्रह्म सारस्वत कुलमां, आ नेत्र विहीणे दरिद्र पिता ना धाम जो ।
कटु वचन सुणी ने घर थी चालिया, ने आवी पहांच्या एक तलावनी ठाम जो॥२

रह्या बार वर्ष लगी त्यां निर्भै थई, पण हरि मिलन नी चिंता मननी मांह्य जो ।
एक दिवसे अति विरह चित्त ने थयो, त्यारे कृपा करीने प्रगट्या श्रीहरि त्यांह्य जो ३

नेत्र दई ने आप्यां दर्शन श्रीनाथ जी, आ वर मांगवाने कह्यु छे तेनी वार जो ।
ए समय नां दर्शन थी मूर्छित थई, आ अंतर्दृष्टि ए हरिलीला ने मांगे जो ॥४॥

त्यारे अति प्रसन्न वदने श्रीनाथजी, आ कहे, सुनो मम बाल सखा प्रवीन जो ।
हवे शीघ्र व्रजमंडल मां जाओ तमे, त्यां था जो श्री वल्लभ ने आधीन जो ॥५॥

ते वारे दर्शन आपीश हुं तने, ने देखाडीश मम लीला ना परकार जो ।
ए समये विनती सूरदासे कीधी, प्रभु ! केम जाणु हुं श्री वल्लभनो आय जो ॥६॥

त्यारे कृपा करीने श्रीनाथ जी, आ कहे छे त्यां श्री वल्लभ केरां रूप जो ।
दक्षिण ब्राह्मण वेष सदा एहनो रहे, आ श्याम वरन ने दिव्य तेज अनूप जो ॥७॥

ए परिक्रमण करीने पृथ्वी पावन करे, आ विहिण पादुका चरन सुवासित जान जो ।
रूप बटुक सदा छे एहुनां, आ तारा थी ए दिवस दस महान ज ॥ ८ ॥

एम कहीने प्रभु त्यारे अंतरध्यान थया, आ त्यारे तेमने प्रगट्यो विरह अपार जो ।
पछी आज्ञा प्रभुनी माथे धरी, आ चाली आव्या मथुरा थई गौघाट जो ॥ ९ ॥

त्यां रहीने कीरतन हरिनां बहु कर्यां, ने ध्यान कर्यां श्री वल्लभजी महाराज जो ।
एम करतां दक्षिण थी प्रभु आवी आने शरणे लीधा छे भक्त शिरोमणि राजजो१०

सहस्र नाम रची हरि लीला भासित करी, आ कीधा मनोरथ पूरण नंदकुमारजो ।
पछी त्यां थी प्रभु श्री गोकुल आवीया, आ संगे लाव्या सूरदास ने ते वारजो ११

अहीं बाल-लीला नां सुख आपी ने, आ लाव्या तेमने श्रीगोवर्धन सुखधाम जो ।
त्यां आत्मनिवेदने सोंप्या छे श्रीनाथ जी, आ आपी सेवा कीर्तननी अष्टयाम जो१२

पछी देखाड्युं रूप श्री गोवर्द्धन क्षेत्र नुं, आ सारस्वत कल्पनुं वृंदावन शुभ नामजो।
त्यारे त्यां रही शरणे पद रचना करी, आ सवालक्ष ते निज जन मन अभिरामजो १३

पछी श्री गुसांईजी ए थाप्या अष्टछापमा, आ अष्टसखा मध्य राज सिरोमनि रूपजो
'जमनादास' अधम ते वर्णन शां करे, आ सुणयुं वदन जो श्रीहरिराय महाभूप जो१४

भाव संग्रह—इसकी रचना श्री द्वारकेश जी भावना वालों ने की है, जिनका समय सं० १७५१ से सं० १८०० के आस-पास है। इसमें सूरदास की जन्म तिथि, जाति और उनके जन्म स्थान का निम्न उल्लेख मिलता है—

"सो सूरदास जी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते। लीला में उनको स्वरूप कृष्ण-सखा, चंपकलता-सखी, श्रीजी के वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण, सींही गाम के वासी।"

वैष्णवाह्निक पद—इसकी रचना गो० श्री गोपिकालंकार जी उपनाम 'भट्ट जी' जतीपुरा निवासी ने की है। उनका जन्म सं० १८७९ में हुआ था। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'रसिकदास' के नाम से की हैं। सूरदास के यशोगान विषयक उनकी कई रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक पद में उन्होंने सूरदास की जन्म तिथि का इस प्रकार उल्लेख किया है—

प्रगटे भक्त-शिरोमनि राय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ अधिक सुखदाय॥
संवत पंद्रहा पेंतीस वर्ष 'कृष्ण' सखा प्रगटाय।
करि हैं लीला फेरि अधिक सुख मन मनोरथ पाय॥
श्री वल्लभ श्री विट्ठल श्री जी रूप एक दरसाय।
'रसिकदास' मन आस पूरन ह्वै सूरदास सुख आय॥

जनश्रुतियाँ—सूरदास के जीवन-वृतांत से ज्ञात होता है कि वे अपने समय में ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके थे। उनके देहावसान के अनंतर उनकी ख्याति और भी बढ़ी। इसके कारण अनेक प्रकार की जन-श्रुतियाँ उनके संबंध में लोक में प्रचलित हो गयीं। इनमें से कई जन-श्रुतियों की पुष्टि बाह्य साक्ष्य से हो जाती है और कई जनश्रुतियाँ अन्य सूरदासों से संबंधित होने के कारण अप्रामाणिक सिद्ध हो गयी हैं। सूरदास पर लिखने वाले कई लेखकों ने सूर संबंधी सामग्री में इन जनश्रुतियों को भी सम्मिलित किया है, किंतु हमने इनको सामग्री के रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रामाणिक जनश्रुतियों का संबंध सूरदास के अंतः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य से है, अतः उनके मूल तत्वों का विवेचन उक्त साक्ष्यों के साथ हो चुका है। अप्रामाणिक एवं निराधार जनश्रुतियों के संबंध में लिखना अनावश्यक समझा गया है।

३. आधुनिक सामग्री

अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के रूप में सूरदास संबंधी जो प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उसका अनुसंधान करने पर आधुनिक विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वही आधुनिक सामग्री के रूप में प्राप्त हैं। यह आवश्यक नहीं है कि ये समस्त निष्कर्ष निर्भ्रांत एवं विश्वसनीय हों, अतः उनके संबंध में मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर भी सूर संबंधी अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए प्रत्येक लेखक को अपने अग्रजों द्वारा प्रस्तुत सामग्री से बहुमूल्य सहायता मिलती रही है। हमने भी इस सामग्री का यथा स्थान उपयोग किया है, और जहाँ हमारा मत उसके अनुकूल नहीं हो सका है, वहाँ हमने उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

सूरदास संबंधी आधुनिक सामग्री का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री
२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर-संबंधी सामग्री
३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

अब हम इस सामग्री का संक्षिप्त परिचय देकर यह देखना चाहते हैं कि सूर संबंधी समीक्षात्मक निर्णय करने में यह किस प्रकार सहायक हो सकती है।

१. सूर-काव्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत सामग्री

सूरसागर—अब तक प्रकाशित सूरसागर के समस्त संस्करणों में वेङ्कटेश्वर प्रेस बंबई का संस्करण सब से बड़ा है। इसका संपादन बा० राधाकृष्णदास ने किया है। उन्होंने इसकी भूमिका में सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत भी लिखा है। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ था, उस समय वह वृत्तांत निःसंदेह महत्वपूर्ण माना जाता था, किंतु अब नवीन अनुसंधानों के कारण उसका महत्व कम हो गया है। रामरसिकावली एवं भक्तविनोद की जिस सामग्री का उन्होंने उपयोग किया है, वह स्वयं इस समय महत्वपूर्ण नहीं रही। सूरसागर का दूसरा महत्वपूर्ण संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ का है, जिसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत की सामग्री उपलब्ध नहीं है, किंतु सूर संबंधी अंतःसाक्ष्य के लिए इसका भी महत्व है। बा० जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा संपादित होकर सूरसागर का एक संस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ था, किंतु रत्नाकर जी के असामयिक निधन के कारण वह

कार्य पूरा न हो सका। यदि रत्नाकर जी इसे पूरा कर लेते, तो इसकी भूमिका स्वरूप उनका लिखा हुआ सूरदास का जीवन-वृत्तांत निःसंदेह बड़ा महत्वपूर्ण होता। सूरसागर के दो संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। एक का संपादन श्री वियोगी हरि ने और दूसरे का डा० बेनीप्रसाद ने किया है। उक्त विद्वान संपादकों ने सूरदास के जीवन-वृत्तांत पर भी प्रकाश डाला है, किंतु उनके कथन से किसी महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन नहीं होता है।

सूर-संकलन—सूरदास के काव्य का परिचय देने के लिए उनकी कविता के कई छोटे-बड़े संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें ला० भगवानदीन कृत 'सूर-पंचरत्न' और 'सूर संग्रह', श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत 'सूर-संदर्भ' और 'सूर-सुषमा', श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'सूर-पदावली', श्री नरोत्तमदास स्वामी कृत 'सूर-साहित्य-सुधा' तथा श्री हरदयालुसिंह कृत 'सूर-मुक्तावली' मुख्य हैं। इन संग्रह ग्रंथों की प्रस्तावना में सूरदास के संबंध में भी लिखा गया है। जहाँ तक सूरदास के जीवन-वृत्तांत का संबंध है, इन संग्रह ग्रंथों से कोई विशेष महत्व की बात ज्ञात नहीं होती है, किंतु उनमें सूरदास के काव्य और उनकी भाषा के संबंध में महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका स्वरूप 'अंतर्दर्शन' में सूरदास के काव्य और उनकी भाषा की विस्तृत आलोचना की गयी है। इसी प्रकार 'सूर मुक्तावली' के 'प्राक्कथन' और उसकी 'भूमिका' में भी विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। सूरदास के भ्रमरगीत विषयक पदों का एक अच्छा संकलन 'भ्रमरगीत-सार' के नाम से श्री रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित और साहित्यसेवा सदन, काशी द्वारा प्रकाशित हुआ है। शुक्ल जी उद्भट समालोचक थे। उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में सूरदास के काव्य की विद्वतापूर्ण एवं सारगर्भित आलोचना की है, जो इस प्रकार की सामग्री में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सूर साहित्य के अनुशीलन के लिए यह समस्त सामग्री महत्वपूर्ण है, जिस पर हम यथा स्थान विचार करेंगे।

साहित्य-लहरी—श्री महादेवप्रसाद कृत टीका सहित सूरदास कृत 'साहित्य-लहरी' का यह संस्करण पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय द्वारा प्रकाशित हुआ है। साहित्य लहरी जैसे क्लिष्ट काव्य की टीका प्रस्तुत करने से श्री महादेव प्रसाद ने महत्वपूर्ण कार्य किया है; किंतु उन्होंने अपने 'वक्तव्य' में सूरदास के संबंध में कुछ भ्रमात्मक बातें लिखी हैं। श्री गोकुलनाथ जी का नाम 'गुसाईं गोकुलदास जी' लिखते हुए उन्होंने बतलाया है कि 'चौरासी वैष्णवन

की वार्ता' में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण और उनको रामदास का पुत्र तथा रुनकता नामक ग्राम में उत्पन्न हुआ लिखा गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को स्वयं नहीं देखा है, अन्यथा वे इस प्रकार का कथन नहीं करते। सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखने वाले श्री गोकुलनाथ जी नहीं, बल्कि श्री हरिराय जी थे, जिन्होंने चौरासी वार्ता पर भावप्रकाश लिखते हुए सूरदास का विस्तृत जीवन-वृत्तांत प्रस्तुत किया है; किंतु उनको रामदास का पुत्र और रुनकता में उनके जन्म लेने की बात न तो श्री गोकुलनाथ जी ने लिखी है और न श्री हरिराय जी ने। इसके साथ ही विल्वमंगल वाली पुरानी कथा को भी इस ग्रंथ के टीकाकार ने सूरदास से संबंधित करने में 'हिचकिचाहट' नहीं की है। इस ग्रंथ के प्रस्तावना लेखक श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने जहाँ साहित्य-लहरी के काव्य पक्ष पर विद्वतापूर्ण विवेचन किया है, वहाँ सूरदास के जन्म, वंश, अंधत्व और निधन संबंधी वही पुराना मत प्रकट किया है, जो नवीन अनुसंधान से भ्रमात्मक सिद्ध हो चुका है। यदि इस ग्रंथ में साहित्य लहरी की टीका के अतिरिक्त 'वक्तव्य' आदि लिखने का कष्ट न किया जाता, तो अच्छा होता।

२. खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी सामग्री

खोज रिपोर्ट और इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी प्रामाणिक सामग्री के प्राप्त होने की आशा की जा सकती है, किंतु ये साधन अभी तक अपूर्ण सिद्ध हुए हैं! खोज संबंधी अधिकांश कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। व्रज साहित्य मंडल द्वारा व्रज में और हिंदी विद्यापीठ द्वारा राजस्थान में भी कुछ खोज का कार्य हुआ है। खोज रिपोर्टों के देखने से ज्ञात होता है कि उनमें सूरदास संबंधी सामग्री का बहुत कम उल्लेख हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में सूरसागर की कई प्रतियों के अतिरिक्त सूरदास की कुछ अन्य रचनाओं का भी विवरण लिखा गया है, किंतु यह सामग्री नितांत अपर्याप्त है। यदि खोज का कार्य व्यवस्थित रूप से बड़े परिमाण में किया जाय, तो सूर संबंधी सामग्री यथेष्ट परिमाण में मिलने की आशा की जा सकती है।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में महाकवि सूरदास का उल्लेख होना अनिवार्य है, अतः उनमें सूर संबंधी सामग्री अवश्य मिलती है, किंतु वह सामग्री जैसी प्रामाणिक होनी चाहिए थी, वैसी नहीं है। इसका कारण यही हो सकता है कि सूर संबंधी अध्ययन अभी अपूर्ण है और तत्संबंधी अनेक

बातें अभी विवादग्रस्त हैं। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में सूर संबंधी आधुनिक सामग्री प्रचुर परिमाण में मिलती है। इस सामग्री का थोड़ा-बहुत विवेचन होना आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के इतिहास की आरंभिक सामग्री फ्रेंच लेखक गार्सँद तासी लिखित 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदूए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रंथ, शिवसिंह सेंगर लिखित 'सरोज' और उसी के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' नामक अंगरेजी ग्रंथ में उपलब्ध है। इन ग्रंथों में प्रमुख हिंदी कवियों का उल्लेख होने से प्रसंगवश सूरदास का भी विवरण दिया गया है, किंतु वह अपर्याप्त एवं अप्रामाणिक है। तासी के उल्लेख का आधार 'आईन-ए-अकबरी' है, जिसका सूरदास संबंधी कथन स्वयं अप्रामाणिक है। 'शिवसिंह सरोज' में भी सूरदास का संक्षिप्त एवं अप्रामाणिक वृतांत दिया हुआ है। इस ग्रंथ का निम्न लिखित उल्लेख महत्वपूर्ण है—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रंथ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हज़ार तक देखे हैं। समग्र ग्रंथ कहीं नहीं देखा।"

सूरदास ने लाख–सवा लाख पदों की रचना की थी, यह जनश्रुति परंपरा से चली आ रही है, किंतु इतना अनुसंधान होने पर भी अब तक ८-१० हज़ार से अधिक पद उपलब्ध नहीं हुए हैं। इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में लिखेंगे।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिश्रबंधु कृत 'मिश्रबंधु विनोद', श्री रामनरेश त्रिपाठी कृत 'हिंदी का संक्षिप्त इतिहास', श्री राचचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० श्यामसुंदर दास कृत 'हिंदी भाषा और साहित्य', पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास', श्री सूर्यकांत शास्त्री कृत 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', श्री ब्रजरत्न दास कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास', डा० रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', मिश्रबंधु कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और श्री गुलाबराय कृत 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रमुख इतिहास ग्रंथों के विषय में आगे लिखा जाता है।

'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (मिश्रबंधु)
हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्रबंधुओं को हिंदी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखने का श्रेय प्राप्त है। प्रथम प्रयास होने के कारण उसमें भ्रम और भूलों का रह जाना सर्वथा स्वाभाविक था, इसलिए उनके सूरदास संबंधी विवरण में भी कई त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं। उनका लिखा हुआ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' 'विनोद' की रचना के प्रायः २६ वर्ष पश्चात् सं० १९९६ में गंगा पुस्तक माला द्वारा प्रकाशित हुआ है, किंतु इसमें भी सूरदास संबंधी विवरण अपरिष्कृत रूप में विनोद जैसा ही दिया गया है। इससे यह समझा जा सकता है कि या तो इसके लेखक अपने पूर्व मत पर दृढ़ हैं, अथवा उनको नवीन अनुसंधानों का पता नहीं है। उन्होंने सूरदास के पिता का नाम रामदास, जन्म संवत् १५४० और निधन संवत् १६२० लिखा है। उन्होंने सूरदास के ग्रंथों में 'नल-दमयंती' का भी नामोल्लेख किया है। उन्होंने ८ वर्ष की अवस्था से सूरदास का मथुरा में निवास करना लिखा है†। ये सब बातें यथेष्ट परिवर्तन और संशोधन की अपेक्षा रखती हैं।

हिंदी साहित्य का इतिहास (पं० रामचंद्र शुक्ल)—हिंदी के समस्त इतिहास ग्रंथों में शुक्ल जी का इतिहास सबसे अधिक प्रसिद्ध और कदाचित सबसे अधिक श्रेष्ठ है। शुक्ल जी ने सूरदास के काव्य और उनकी भक्ति-भावना की बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। यह आलोचना भ्रमरगीत-सार और सूरदास नामक ग्रंथों में छप चुकी है। सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध में शुक्ल जी द्वारा कोई महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता है। उन्होंने इस संबंध मे मिश्रबंधुओं का अनुकरण किया है। उन्होंने भी सूरदास के जन्म एवं निधन काल के संवत् क्रमशः १५४० और १६२० का अनुमान किया है। उन्होंने सूरदास के शरण–काल का संवत् अनुमानतः १५८० लिखा है*। नवीन सामग्री के अनुसंधान से ये सभी संवत् अप्रमाणिक सिद्ध हो गये हैं।

हिंदी भाषा और साहित्य (डा० श्यामसुंदर दास)-हिंदी का यह भी प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है, जिसमें भाषा और साहित्य का काल-क्रमानुसार वर्णन किया गया है। बाद में भाषा और साहित्य के अनुसार इसे दो स्वतंत्र

† 'मिश्रबंधु विनोद' (प्रथम संस्करण सं० १९७०) पृष्ठ २७० और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (प्रथम संस्करण सं० १९९६) पृष्ठ ९७

* 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (संशोधित संस्करण संवत् २००२) पृष्ठ १३८, १३९

ग्रंथों में विभाजित कर दिया गया। 'हिंदी साहित्य' नामक ग्रंथ में विभिन्न-कालीन परिस्थियों का बड़ा गंभीर विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ में सूरदास का विवरण अपेक्षाकृत कम दिया गया है। उन्होंने सूरदास के जन्म काल के संबंध में लिखा है—

"परंपरा के अनुसार इनका जन्म-काल सं० १५२६ माना जाता है‡।"

किंतु उन्होंने इस 'परंपरा' का स्पष्टीकरण नहीं किया है। उन्होंने सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं किया है।

हिंदी साहित्य का इतिहास (डा० रसाल)—यह हिंदी का सबसे विशाल-काय इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' हैं। इसमें लेखक ने हिंदी के इतिहास की विभिन्न प्रवृत्तियों का योग्यता और विस्तार पूर्वक कथन किया है। सूरदास के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"आपकी भी पूर्ण तथा यथार्थ जीवनी हमें प्राप्त नहीं। ८४ वैष्णवों की वार्ता के अनुसार आपका जन्म-स्थान रुनकता (रेणुका क्षेत्र) है, किंतु कोई कोई दिल्ली निकटस्थ सीही ग्राम को भी आपका जन्म-स्थान कहते हैं। वार्ता में इन्हें सारस्वत ब्राह्मण श्री रामदास जी का पुत्र कहा गया है। भक्तमाल में इनका ब्राह्मण होना तथा ८ वर्ष में इनका उपवीत होना लिखा है*।"

उपर्युक्त कथन में पर्याप्त संशोधन की आवश्यकता है, जैसा कि हम आगामी पृष्ठों में सिद्ध करेंगे। अन्य इतिहास ग्रंथों की तरह इसमें भी सूरदास का जन्म-काल संवत् १५४० और निधन-काल संवत् १६२० लिखा गया है।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास(डा. रामकुमार वर्मा) यह हिंदी का सब से नवीन और महत्वपूर्ण इतिहास है, जिसके लेखक डा० रामकुमार वर्मा हैं। यह इतिहास अभी पूर्ण नहीं हुआ है, किंतु भक्ति-काल तक का विवरण होने से इसमें सूरदास का वर्णन आ गया है। अन्य इतिहास ग्रंथों की अपेक्षा इसमें सूरदास संबंधी सामग्री अधिक विस्तार पूर्वक दी गयी है।

---

‡ हिंदी साहित्य (चतुर्थ संस्करण संवत् २००३) पृष्ठ १८५

* हिंदी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १६८८) पृष्ठ २६०

इस सामग्री में सूरदास के जीवन वृत्तांत, उनके ग्रंथ और उनके काव्य-महत्व का विवेचन किया गया है। जीवन वृत्तांत की आलोचना बाह्य साक्ष्य के आधार पर की गयी है। साहित्य लहरी के वंश परिचय वाले पद तथा मुंशी देवीप्रसाद और बा० राधाकृष्णदास के उल्लेखों के कारण इसके लेखक सूरदास को भाट जातीय मान सकते थे, किंतु उक्त पद में 'विप्र' और 'ब्रह्मराव' दोनों विरोधी शब्दों का उल्लेख होने से उनको भी उक्त पद की प्रामाणिकता में संदेह है†। बाह्य साक्ष्य में सबसे अधिक महत्व चौरासी वार्ता को दिया गया है, जिसको उन्होंने प्रामाणिक ग्रंथ माना है‡। बाह्य साक्ष्य की अन्य सामग्री आईन-ए-अकबरी, मुंतखिबउत्तवारीख, मुंशियात अबुलफज़ल और गोसाईं चरित पर इस ग्रंथ में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। उन्होंने सूरदास के नाम अबुलफज़ल के पत्र को प्रामाणिक मानकर "सूरदास की मृत्यु श्रावण संवत् १६४२ के बाद¶" मानी है। नवीन अनुसंधान से सिद्ध हो गया है कि अबुलफज़ल ने जिसे पत्र लिखा था, वह कोई अन्य सूरदास था; अतः सूरदास की मृत्यु सं० १६४० के बाद मानने का कोई कारण नहीं है। उन्होंने महाप्रभु बल्लभाचार्य के निधन संवत् १५८७ के आधार पर लिखा है—

"सूरदास का आविर्भाव काल संवत् १५८५ के बाद ही मानना उचित है†।"

यदि 'आविर्भाव' से लेखक का अभिप्राय सूरदास की प्रसिद्धि से है, तब भी उनका कथन प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, क्यों कि वार्ता के अनुसार महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय में ही सूरदास यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और महाप्रभु जी स्वयं "आओ सूरसागर!" कहकर सूरदास का सन्मान करते थे। सूरसागर के रचना-काल के संबंध में उन्होंने लिखा है—

"सूरसागर का रचना-काल संवत १५८७ के बाद ही होना चाहिए, जिस समय सूरदास श्री बल्लभाचार्य से दीक्षित हुए। दीक्षित होने से पहले वे 'घिघियाते' थे, बाद में भगवद् लीला वर्णन करने में समर्थ हुए। इसी भगवद् लीला वर्णन करने में उन्होंने सूरसागर की रचना की*।"

† हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास (प्रथम संस्करण सं० १९९५) पृ० ६०५
‡ " " " " पृ० ६११
¶ " " " " पृ० ६१६
† " " " " पृ० ६१२
* " " " " पृ० ६२३

लेखक का उक्त मत भ्रमात्मक है। सूरदास सं० १५८७ में बल्लभाचार्य जी से दीक्षित नहीं हुए थे, बल्कि वे इससे प्रायः २० वर्ष पूर्व सं० १५६७ में दीक्षित हो चुके थे। सं० १५८७ बल्लभाचार्य जी का निधन संवत् है, तब तक सूरदास सूरसागर के अधिकांश भाग की रचना कर चुके थे।

सूरदास के ग्रंथों का परिचय देते हुए उन्होंने उनके कुल १६ ग्रंथों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है—

"इस प्रकार कुल मिलाकर सूरदास के नाम से १६ ग्रंथ हैं। इनमें से सूरसागर ही पूर्ण प्रामाणिक है। अन्य ग्रंथ सूरसागर के ही अंश हैं या सूरसागर की कथावस्तु के रूपांतर। कुछ ग्रंथ तो अप्रामाणिक भी होंगे* ।"

सूरदास के ग्रंथों के संबंध में हम आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

३. सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री

भारतेन्दु बा० हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य में सूर संबंधी अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने का आरंभ किया था। उनके पश्चात् बा० राधाकृष्णदास, मुंशी देवीप्रसाद और बा० जगन्नाथदास रत्नाकर ने इस कार्य को और भी आगे बढ़ाया। हिंदी साहित्य के इतिहास की तरह इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भी मिश्रबंधुओं को है। उन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' और 'हिंदी नवरत्न' लिख कर हिंदी कवियों की अध्ययनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्री को प्रथम बार सुंदर रूप में उपस्थित किया। इस विषय के ये सब आरंभिक प्रयत्न थे, अतः उनमें वैज्ञानिक शैली का अभाव दिखलायी देता है। जब उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए इसप्रकार के साहित्य की माँग हुई, तब सूर संबंधी आलोचना और अध्ययन को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने की ओर विद्वानों का ध्यान गया। सुप्रसिद्ध समालोचक श्री रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास और जायसी के अतिरिक्त सूरदास पर भी वैज्ञानिक आलोचना लिखी। सूर संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० धीरेन्द्र वर्मा को है। वर्मा जी ने अपने विद्यार्थियों को इस दिशा में प्रेरित कर सूर संबंधी साहित्य को प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत करा दिया है। उनकी चेष्टा का ही यह परिणाम है कि विश्व विद्यालयों के अध्यापक, शोधक और आलोचक अब सूर साहित्य प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं। इस साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

* हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६२०

हिंदी नवरत्न (श्री मिश्रबंधु)—इस ग्रंथ में हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नौ महाकवियों का परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक विस्तृत विवरण है, जिसमें तुलसीदास के पश्चात् सूरदास को स्थान दिया गया है। यद्यपि 'विनोद' की अपेक्षा इसमें सूरदास का विस्तृत उल्लेख है, तथापि कवि के महत्व को देखते हुए अन्य कवियों की तुलना में सूरदास का अपेक्षाकृत कम वर्णन लिखा गया है। जो कुछ लिखा गया है, वह पुरानी मान्यताओं पर आधारित है, जैसा कि इस पुराने ग्रंथ में होना स्वाभाविक था। अब नवीन शोध के आधार पर इसमें संशोधन होना आवश्यक है।

सूरदास (डा० जनार्दन मिश्र)--इस अंगरेजी ग्रंथ में सूरदास के जीवन ग्रंथ, उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य और उनके धार्मिक सिद्धांतों का आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। यद्यपि विद्वान लेखक ने इसके लिखने में यथेष्ट परिश्रम किया है, तथापि वे कोई महत्त्वपूर्ण नवीन सामग्री उपस्थित नहीं कर सके हैं।

सूर साहित्य (पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी)—इस ग्रंथ के रचयिता हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान और विचारपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने सूर-साहित्य के धार्मिक पक्ष की विद्वतापूर्ण एवं विवेचनात्मक आलोचना की है; किंतु उन्होंने सूर के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रंथों का समीक्षात्मक विवरण नहीं दिया है। उन्होंने सूर-साहित्य के काव्य पक्ष पर भी विशेष प्रकाश नहीं डाला है। द्विवेदी जी जैसे प्रकांड विद्वान इस विषय को विस्तार पूर्वक लिखते तो अच्छा था।

भक्त-शिरोमणि महाकवि सूरदास (श्री नलिनीमोहन सान्याल)—इस ग्रंथ में सूरदास के काव्य की समालोचना की गयी है। सूरदास का जीवन-चरित्र अत्यंत संक्षिप्त रीति से केवल ५ पृष्ठों में लिखा गया है। उसमें लेखक ने प्रायः मिश्र बंधुओं के मत का अनुकरण किया है। सूरदास के ग्रंथों के विषय में इस पुस्तक में कुछ भी नहीं लिखा गया है।

इस पुस्तक में सूरसागर के काव्य-महत्व पर संक्षिप्त एवं सरल रीति से प्रकाश डाला गया है। इसमें वात्सल्य, माखनचोरी, संयोग शृंगार, रासलीला, भ्रमरगीत विषयक सूरदास के काव्य-सौष्ठव का परिचय दिया गया है।

सूर : एक अध्ययन (श्री शिखरचंद जैन)—सूर-साहित्य के विद्यार्थी को साधारण ज्ञान कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है, किंतु इसमें सूर संबंधी आलोचना एवं अध्ययन की कोई महत्त्वपूर्ण सामग्री नहीं

सूर-साहित्य की भूमिका (श्री रामरतन भटनागर और श्री वाचस्पति त्रिपाठी)—दो विद्वान लेखकों ने इस आलोचनात्मक ग्रंथ की रचना की है। सूर संबंधी अन्य पुस्तकों की अपेक्षा इस पुस्तक में महत्वपूर्ण सामग्री अधिक परिमाण में उपलब्ध है। आरंभ में लेखकों ने सूरदास की जीवनी पर प्रकाश डाला है। बाह्य साक्ष्य के रूप में 'साहित्य लहरी' के वंश-परिचय वाले पद और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' पर विचार करते हुए उन्होंने चौरासी वार्ता को प्रामाणिक मान कर साहित्य लहरी के उक्त पद को अविश्वसनीय माना है†। उन्होंने सूरदास को जन्मांध न मान कर वृद्धावस्था में उनके नेत्र विहीन हो जाने का अनुमान किया है। उन्होंने सूरदास का जन्म संवत् १५४० और जन्म स्थान ब्रज प्रदेश लिखा है*, किंतु इसका निश्चित प्रमाण नहीं दिया है। उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण संवत् १५७६ को सूरदास का शरण-काल बतलाया है‡, जो कि अनुसंधान से अप्रामाणिक सिद्ध हो गया है।

सूरदास के ग्रंथों का विवेचन करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है—

"केवल सूरसागर ही प्रामाणिक ग्रंथ है। अन्य ग्रंथ या तो उन्होंने लिखे नहीं ही नहीं, या ये सूरसागर के ही अंग हैं‖।"

उन्होंने डा० धीरेन्द्र वर्मा के लेख के आधार पर भागवत और सूरसागर की विस्तार पूर्वक तुलना करते हुए, सूरसागर के अधिकांश भाग को भागवत के आंशिक अनुवाद के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने लीला-गायन विषयक पदों की अपेक्षा विनय के पदों को सूरदास की मौलिक रचना और सूरसागर का प्रधान भाग माना है। सूरसागर की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—

"अंत में हमें यह कहना है कि सूरसागर के मौलिक और महत्वपूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद हैं, जो विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा संपूर्ण दशम स्कंध पूर्वार्द्ध और अन्य स्कंधों में बिखरे हुए भक्ति, गुरु-महिमा आदि विषयों के पद हैं। वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं, जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति-भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं•।"

---

† सूर-साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण सं० २००२) पृष्ठ ११
* ,, ,, ,, पृष्ठ १८
‡ ,, ,, ,, पृष्ठ १८
‖ ,, ,, ,, पृष्ठ २२
• ,, ,, ,, पृष्ठ ४३

हम लेखक के इस मत से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हम विनय आदि के पदों को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उन्हें सूरदास की और सर्वोत्तम रचना सूरसागर के प्रधान अंग के रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हैं। सूरसागर और भागवत का क्या संबंध है, एवं सूरसागर के प्रधान अंग कौन से पद हैं, इस संबंध में हम अपने विचार आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

इस ग्रंथ में लेखकों ने अनेक विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है, किंतु निर्णयात्मक प्रवृत्ति का सर्वत्र अभाव दिखलायी देता है। उन्होंने अधिकांश विषयों को संदिग्धता के पारावार में डूबते-उतराते हुए छोड़ दिया है।

सूर : जीवनी और ग्रंथ (श्री प्रेमनारायण टंडन)—इस छोटी सी पुस्तिका में सूरदास के जीवन वृत्तांत और उनके ग्रंथों का विवरण दिया गया है। इसमें विद्यार्थियों के उपयोग के लिए सूर संबंधी पुरानी बातें एक स्थान पर संकलित कर दी गयी हैं। इससे सूरदास के संबंध में कोई महत्वपूर्ण बात ज्ञात नहीं होती है।

सूर-सौरभ (श्री मुंशीराम शर्मा)—यह पुस्तक दो भागों में समाप्त हुई है। यह सूरदास के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इसके विद्वान लेखक ने सूर संबंधी अनेक विषयों पर मौलिक एवं क्रांतिकारी विचार प्रकट किये हैं। इस ग्रंथ के लेखक से हम लोगों को जिन बातों पर मतभेद है, उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। उनके मत का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) उन्होंने 'सारावली' और 'साहित्यलहरी' दोनों को सूरदास की रचनाएँ मानी हैं और साहित्यलहरी के वंश-परिचय वाले पद को भी उन्होंने प्रामाणिक माना है। उक्त पद को प्रामाणिक मानते हुए भी वे सूरदास को भाट न मानकर ब्राह्मण मानते हैं ‡।

(२) 'सारावली' के 'सरसठ बरस' वाले कथन के आधार पर वे सूरदास की ६७ वर्ष की आयु में उक्त ग्रंथ की रचना न मान कर उस आयु में बल्लभाचार्य जी द्वारा दीक्षित होने की बात लिखते हैं †।

(३) वे सूरदास के पिता का नाम रामदास और उसके मुसलमान हो जाने की कल्पना करते हैं ||।

---

‡ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० १३, ३२

† ,, ,, पृ० ५, ५३

|| ,, ,, पृ० १६, ६४, द्वितीय भाग पृ० ३४

(४) वे सुबल संवत् के कारण 'साहित्य लहरी' का रचना-काल सं० १६२७ और सरस संवत् के आधार पर सूरदास का जन्म संवत् १५१५ मानते हैं *।

(५) उनका मत है कि बल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास गृहस्थ थे। वे पहले शैव, तत्पश्चात् स्वामी हरिदास के शिष्य हुए थे‡।

(६) वे सं० १६२८ के पश्चात् सूरदास का जीवित रहना स्वीकार नहीं करते हैं❀।

सूरदास (डा० ब्रजेश्वर वर्मा)—यह ग्रंथ सूरदास पर लेखक की 'थीसिस' के रूप में लिखा गया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार यह 'महाकवि सूरदास की जीवनी तथा काव्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है।' यह ग्रंथ है भी बड़ा महत्वपूर्ण, किंतु हम इसकी अनेक बातों से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। वे 'सूरदास की जाति और जन्मभूमि के विषय में श्री हरिराय जी का विवरण निस्संकोच निर्णयात्मक रूप में' नहीं मानते हैं''। सूरदास और बल्लभाचार्य का समवयस्क होना असंभव मान कर उनको सूरदास की जन्म तिथि वैशाख शु० ५ सं० १५३५ संतोषजनक ज्ञात नहीं होती है||. उन्होंने 'सूरसागर' और 'सारावली' की रचना शैली में २७ अंतर स्थापित कर सारावली को सूरदास की रचना स्वीकार नहीं किया है †। वे 'साहित्य लहरी' को भी सूरदास की रचना नहीं मानते हैं※।

सूरदास : एक अध्ययन (श्री रामरतन भटनागर)— 'सूर साहित्य की भूमिका' के पश्चात् भटनागर जी की सूर संबंधी यह दूसरी रचना भी महत्वपूर्ण है। इसे सूरदास का अध्ययन न कह कर 'सूरसागर' का अध्ययन कहना चाहिए,क्यों कि उसी के आधार पर सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन

---

* सूर-सौरभ, प्रथम भाग पृ० ८

‡ ,, ,, पृ० ३८, ३६, ४०, ४१, ४४ द्वितीय भाग, पृ० ४८

❀ ,, ,, पृ० ६०

'' सूरदास, पृ० ३१

|| ,, पृ० ४४

† ,, पृ० ७५, ८३

※ ,, पृ० १६

किया गया है। इसमें सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों की प्रामाणिकता की जाँच नहीं की गयी है। ग्रंथ के अंत में चार पृष्ठों वाले परिशिष्ट में इनकी सूचना मात्र दे दी गयी है। इसमें उन्होंने पुरानी बातों को दुहराते हुए तद्विषयक 'निर्णयात्मक खोज' न कर सकने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है*।

अष्टछाप-परिचय (प्रभुदयाल मीतल)—इस ग्रंथ के सहयोगी लेखक की रचना होने के कारण इस पर कुछ कहने का हमको अधिकार नहीं है। यहाँ पर केवल यह बतलाना है कि उसमें उल्लिखित सूर संबंधी मत इस ग्रंथ के अनुकूल है। यदि उसमें इससे कहीं विरोध मालूम पड़े, तो वह इसके प्रथम संस्करण के संबंध में हो सकता है। इसके परिष्कृत द्वितीय संस्करण में लेखक ने अपने नवीन अनुसंधानों का उपयोग किया है। इस ग्रंथ में अष्टछाप के आठों कवियों का आलोचनात्मक जीवन-वृत्तांत और उनके काव्य का संकलन किया गया है। अष्टछाप के मुकुटमणि होने के कारण इसमें सूरदास पर विशेष रूप से लिखा गया है। सूरदास पर लिखते हुए लेखक ने सूर संबंधी प्रायः समस्त सामग्री का अनुशीलन कर अपना मत निर्धारित किया है।

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (डा० दीनदयालु गुप्त)—यह अपने विषय की महत्वपूर्ण और सब से नवीन प्रकाशित रचना है। इसे डा० गुप्त ने 'थीसिस' के रूप में कई वर्ष पहले लिखा था, किंतु यह पुस्तक के रूप में अभी प्रकाशित हुई है। यह ग्रंथ लेखक के प्रचुर परिश्रम और गंभीर अध्ययन का परिणाम है। वल्लभ संप्रदाय और वार्ता साहित्य की जिन रचनाओं के आधार पर हमने अपने निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें से अधिकांश का उपयोग डा० गुप्त ने भी किया है; फिर भी कई विषयों में हमारा उनसे मतभेद है। हमने आगामी पृष्ठों में यथा स्थान इस मतभेद का उल्लेख किया है। इस विशाल-काय ग्रंथ में सूरदास के जीवन-वृत्तांत और उनके ग्रंथों पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है और 'थीसिस' की निर्दिष्ट सीमाओं के कारण उसमें सूरदास के काव्य पर तो कुछ भी नहीं लिखा गया है। यह सब होने पर भी इसमें सूरदास संबंधी प्रचुर सामग्री का समावेश है।

यहाँ पर कुछ ऐसी बातों पर प्रकाश डाला जाता है, जिनसे हमारा मतभेद है—

* सूरदास : एक अध्ययन, पृ० २४७

(१) उन्होंने वल्लभाचार्य जी की प्रथम यात्रा में विद्यानगर का शास्त्रार्थ और कनकाभिषेक का होना लिखा है†, जब कि ये कार्य उनकी तृतीय यात्रा में हुए थे‡।

(२) उन्होंने वल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी का देहावसान सं० १५६५ में लिख कर उनके जीवन काल में ही उनके एक मात्र पुत्र पुरुषोत्तम जी के देहावसान का उल्लेख किया है§, जब कि गोपीनाथ जी का निधन संवत् १५६६ है और पुरुषोत्तम जी का देहावसान अपने पिता के पश्चात् सं० १६०६ में हुआ था‡।

(३) श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश को प्रामाणिक मान कर भी वे सूरदास को जन्मांध स्वीकार नहीं करते हैं। उनका मत है कि सूरदास के "जन्मांध होने के प्रमाण उनकी रचनाओं में नहीं मिलते*।" सूरदास के काव्य-कौशल के कारण अन्य लेखकों ने उनकी वृद्धावस्था में नेत्र विहीन होने का अनुमान किया है, किंतु इस ग्रंथ में वे उनकी बाल्यावस्था में अंधे होने की कल्पना करते हैं°।

---

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ७०

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० ६

§ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ७५

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृ० २०, २१, २३

* अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ ८२

° " " पृष्ठ २०२

द्वितीय परिच्छेद

चरित्र-निर्णय

नाम—

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में उनके पाँच नाम मिलते हैं— सूर, सूरदास, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं सूरसुजान, सूरसरस, सूरजश्याम और सूरजश्याम सुजान नाम भी मिलते हैं। यहाँ पर यह विचारणीय है कि ये सभी नाम एक ही व्यक्ति के हैं, अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के। डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रंथ 'सूरदास' में सूरज, सूरजदास और सूरश्याम के नाम से मिलने वाले पदों को प्रक्षिप्त बतलाया है। । इसका यह अभिप्राय है ये नाम सूरदास से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के हैं। उन्होंने अपने उक्त मत के समर्थन में कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दिया है*। डा० दीनदयाल गुप्त इस मत के विरुद्ध उपर्युक्त नामों को सूरदास के ही नाम मानते हैं। उनका कथन है कि—

"उक्त छाप के पद बल्लभ-संप्रदायी प्राचीन संग्रहालयों में भी उपलब्ध होते हैं और उन पदों में सूर के सांप्रदायिक विचारों की छाप है‡।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने इन नामों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। उनका मत है कि ये सभी नाम महाकवि सूरदास के ही हैं। उनका मत है—

"पद-रचना में जहाँ जैसा उपयुक्त जान पड़ा और पद के अनुकूल बैठ गया, वहाँ वैसा ही नाम उन्होंने प्रयुक्त कर दिया है। सुजान, सरस आदि शब्द भी भाव भरित उमंग की लपेट में इसी प्रकार प्रयुक्त हो गये हैं। जो लीला ही सरस हो और सुजान श्याम से संबंध रखने वाली हो, उसमें ऐसे शब्दों का आजाना स्वाभाविक है‡‡।"

श्री मुंशीराम शर्मा ने 'सूरसागर' और 'साहित्यलहरी' के ऐसे पदों को उद्धृत किया है, जिनकी टेक एक सी है, किंतु उनमें नाम भिन्न-भिन्न हैं। इससे उन्होंने यह अनुमान किया है—

---

* सूरदास पृष्ठ ७

‡ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ १६६

‡‡ सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०

"सूर के पद विभिन्न गायकों के हाथों में पड़कर अपने मूल रूप से कुछ भिन्न भी हो गये हैं। संभव है इन गायकों ने अपनी रुचि के अनुकूल उनमें सूर के प्रसिद्ध उपनामों में से कहीं सूर, कहीं सूरदास, कहीं सूरश्याम और कहीं सूरसुजान उपनाम रख दिये हों। पद की पंक्ति को थोड़ा इधर उधर कर देने से ये सभी उपनाम उसमें खप जाते हैं।...इसके अतिरिक्त सूरसागर में कई स्थलों पर एक क्रमबद्ध प्रसंग के ही भीतर सूर, सूरज, सूरश्याम आदि उपनाम के पद आते हैं; जैसे दशमस्कंध के पृष्ठ २०६ पर 'यज्ञपत्नी वचन' शीर्षक कथानक में†।"

भाषा और भावों के साम्य के कारण हम भी इन सभी छाप वाले पदों को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि उनका मूल नाम क्या है। साहित्य लहरी के पूर्वोक्त पद से ज्ञात होता है कि उनका मूल नाम सूरजचंद था। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उनका नाम सूरजदास एवं सूर रखा*। साहित्य लहरी के इस पद की अप्रामाणिकता के कारण इसका कथन पूर्णतया माननीय नहीं है, फिर भी इससे सूरदास के इन नामों की एकता तो सिद्ध होती ही है। हमारा अनुमान है कि उनका नाम 'सूरज' था। सूरज का लघु रूप सूर है। फिर वैष्णवता के कारण सूरजदास, सूरदास अथवा सूरश्याम नाम पड़ गये थे। सूरजचंद नाम का कहीं पर भी प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए भी साहित्य लहरी का कथन उचित ज्ञात नहीं होता है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी, गोकुलनाथ जी एवं अष्टसखाओं के समकालीन वृंदावन निवासी प्राणनाथ कवि ने स्वरचित 'अष्टसखामृत' में लिखा है—

श्री वल्लभ प्रभु लाड़िले, सीही सर जल-जात।
सारसुनी द्विज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥
कहा बड़ाई करि सकै, जाको प्रगट प्रकास।
श्री वल्लभ के लाडिले, कहियत सूरजदास॥

---

† सूरसौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५१, ५२

* भयो सातों नाम सूरजचंद मंद निकाम॥

+ + +

नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुस्याम॥

—'साहित्यलहरी' पद सं० ११८

इससे ज्ञात होता है कि उनका नाम सूरजदास था, किंतु लोक में वे सूर के नाम से विख्यात हुए। उनकी रचनाओं में उनके मुख्य नाम ५ मिलते हैं— सूरज, सूरजदास, सूर, सूरदास और सूरश्याम; किंतु लोक में और उनकी कविताओं में सूर अथवा सूरदास नाम ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण हरिराय जी ने अपने भाव प्रकाश में इस प्रकार बतलाया है—

"श्री आचार्य जी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रण में सो पाछो पाँव नाँहि देय, जो सबसों आगे चलै। तैसेई सूरदासजी की भक्ति दिन-दिन चढ़ती दिसा भई। तासों श्री आचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्री गुसाईं जी आप 'सूरदास' कहते। सो दास भाव में कबहू घटै नांही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यों त्यों सूरदास जी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदास जी कों कबहूँ अहंकार मद नाँही भयौ। सो 'सूरदास जी' इनकौ नाम कहे।"

उक्त उद्धरण से ज्ञात होगा कि श्री वल्लभाचार्य जी और गोसाईं विट्ठलनाथ जी द्वारा सूर एवं सूरदास नामों से संबोधन किये जाने से उनके ये दोनों नाम ही लोक में अधिक प्रसिद्ध हो गये। सूरदास ने भी अपनी रचनाओं में इन्हीं दोनों नामों का विशेष प्रयोग किया है।

जन्म भूमि और निवास स्थान—

'साहित्य लहरी' के वंश–परिचय वाले पद में सूरदास के पिता का निवास-स्थान आगरा के निकटवर्ती 'गोपाचल' लिखा गया है†, किंतु इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि सूरदास का जन्म स्थान भी वही था। सूरदास की रचनाओं की भाषा और परंपरागत जन श्रुतियों के आधार पर कुछ विद्वान उनका जन्म स्थान ब्रज प्रदेश में मानते हैं। उनकी मान्यता का आधार मियाँसिंह कृत 'भक्त-विनोद' का निम्न लिखित कथन भी हो सकता है—

"मथुरा प्रांत विप्रवर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि-नेहा॥"

मूल चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पहले सूरदास आगरा-मथुरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते थे। उक्त वार्त्ता में भी गऊघाट को उनका जन्म स्थान नहीं बतलाया

† आगरे रहि गोपचल में रह्यौ ता सुत वीर।

गया है। श्री मुंशीराम शर्मा साहित्य लहरी के 'गोपाचल' को चौरासी वार्ता का 'गऊघाट' मानते हैं¶। उनका कथन अनुमान और नाम-साम्य पर आधारित है। इसके अतिरिक्त साहित्य लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण गोपाचल को महत्व नहीं दिया जा सकता। हिंदी के कुछ माननीय इतिहासकारों ने भ्रम वश रुनकुता को सूरदास का जन्म स्थान लिख दिया था। रुनकुता वार्ता में उल्लिखित गऊघाट के निकट स्थित है, इसीलिए शायद उक्त विद्वानों को भ्रम हो गया था, किंतु उन्होंने अपनी रचनाओं के नवीन संस्करणों में उसे दूर कर दिया है†। हमारे विचार से गोपाचल, रुनकुता और गऊघाट को सूरदास के जन्म स्थान मानने का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं है, मथुरा प्रांत अथवा ब्रजमंडल के किसी स्थान को भी किसी प्रामाणिक सूत्र के अभाव में उनका जन्म स्थान नहीं माना जा सकता।

श्री हरिराय जी ने चौरासी वार्ता के भाव-प्रकाश में सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती 'सीहीं' नामक ग्राम को बतलाया है। बा० राधाकृष्ण दास ने सीहीं को मथुरा प्रांत के अंतर्गत लिखा था, किंतु उनका यह कथन भ्रमात्मक है। हरिराय जी ने सीहीं की स्थिति बतलाते हुए कहा है—

"दिल्ली के पास चार कोस उरे में एक सीहीं ग्राम है, जहाँ परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियौ है‡।"

हरिराय जी के इस कथन की पुष्टि उनके पूर्वज गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि के निम्न लिखित कथन से भी होती है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं सर जल जात।
सारसुती-दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात† ॥

ऐसी दशा में हम सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के निकटवर्ती सीहीं नामक ग्राम को मानने के लिए विवश हैं। हिंदी के माननीय इतिहासकार भी अब इसी मत को प्रामाणिक मानने लगे हैं*।

¶ सूर-सौरभ, प्रथम भाग पृ० १८, १९

† डा० श्यामसुंदरदास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के नवीन संस्करण।

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० २

† अष्टसखामृत

* डा० श्यामसुंदरदास कृत हिंदी साहित्य' (चतुर्थ संस्करण २००३) पृ० १८५

हरिराय जी के कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक सीहीं ग्राम में रहे। इसके उपरांत वे अपने माता-पिता से अलग होकर सीहीं से चार कोस दूर एक स्थान पर तालाब के किनारे रहने लगे। वहाँ पर वे अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। उस समय उनको संसार से वैराग्य हो गया। वे सब कुछ वहीं पर छोड़ कर ब्रज की ओर चल दिये और मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे। बहिःसाक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वे वहाँ पर अपनी इकत्तीस वर्ष की आयु तक रहे। इसके उपरांत श्री वल्लभाचार्य जी के सेवक होकर वे उनके साथ गोवर्धन को चले गये। वहाँ पर वे अपनी अंतिम अवस्था तक रहे। वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि वे कभी-कभी मथुरा और गोकुल में जाते थे; किंतु वे कभी ब्रज के बाहर किसी अन्य स्थान को भी गये थे, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यही अनुमान होता है कि ब्रज में आने के पश्चात् फिर वे जीवन पर्यंत वहीं पर रहे। वार्ता से ज्ञात होता है कि वे एक बार अकबर बादशाह से मिले थे, किंतु यह भेंट भी मथुरा में ही हुई थी।

भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली होने के कारण गोवर्धन के निकटवर्ती परासौली ग्राम से भी उनका प्रेम था और इसी कारण वे वहाँ पर रहते थे। उनका देहावसान भी परासौली में ही हुआ था। इस स्थान पर उनकी कुटी अभी तक बनी हुई है।

जन्म तिथि—

पुष्टि संप्रदाय में परंपरा से यह मान्यता चली आ रही है कि सूरदास श्री वल्लभाचार्य जी से आयु में दस दिन छोटे थे। आचार्य जी का जन्म दिवस सं० १५३५ की वैशाख कृ० १० उपरांत ११ रविवार निश्चित है, अतः सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५* मंगलवार हुई। इस तिथि का उल्लेख अन्य प्रमाणों से भी इस प्रकार प्राप्त होता है—

---

* उस वर्ष वैशाख शु० ३ का क्षय था, इसलिए पंचमी मंगलवार की थी। दस दिन की गणना रविवार और दशमी से करनी चाहिए। जन्म की तिथि धर्मशास्त्र के अनुसार तत्काल व्यापिनी मानी जाती है, किंतु उस दिन उदयात् तिथि दशमी ही थी।

श्री वल्लभाचार्य जी के वंशज श्री गोपिकालंकार 'भट्ट जी महाराज' काव्योपनाम 'रसिकदास' ने सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख निम्न लिखित पद में किया है। भट्ट जी महाराज का जन्म गोवर्धन-जतीपुरा में सं० १८७६ हुआ था। उक्त पद का आरंभिक अंश इस प्रकार है—

प्रगटे भक्त शिरोमणिराय।
माधव शुक्ला पंचमि ऊपर छट्ठ† अधिक सुखदाय॥

उपर्युक्त कथन की पुष्टि भट्ट जी महारज के पूर्ववर्ती श्री द्वारिकेश जी (जन्म सं० १७५१) भावना वालों द्वारा रचित 'भाव संग्रह' के निम्न उद्धरण से इस प्रकार होती है —

"सो सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते।"

उपर्युक्त उद्धरण से भी प्राचीन प्रमाण 'निज वार्ता' का है। इसमें गोसाईं श्री गोकुलनाथ जी (जन्म सं० १६०८) ने सूरदास की जन्म तिथि के विषय में इस प्रकार कथन किया है—

"सो सूरदास जी जब श्री आचार्य जी महाप्रभु कौ प्रगट्य भयो है, तब इनको जन्म भयो है। सो श्री आचार्य जी सों ये दिन दस छोटे हुते।"

ऐसी प्रसिद्धि है कि श्री हरिराय जी ने भी अपने वचनामृतों में सूरदास को आचार्य जी महाप्रभु से दस दिन छोटे होने का उल्लेख किया है। इसकी पुष्टि हरिराय जी के सेवक जमुनादास कृत गुजराती धौल की निम्न पंक्ति से भी होती है—

"आ तारा थी ए दिवस दस महान् जो*।"

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि जब गो० गोकुलनाथ जी कृत 'निज वार्ता' में सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख है, तो उनके द्वारा कथित 'चौरासी वार्ता' में और हरिराय जी कृत चौरासी वार्ता के भावप्रकाश में सूरदास की जन्म तिथि का उल्लेख क्यों नहीं हुआ है? इसके समाधान के

---

† सूरदास के जन्म की निश्चित घड़ी अज्ञात होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उनका जन्म पंचमी में हुआ या पंचमी उपरांत छट्ठ में, अतः उदयात पंचमी मानना ही अधिक समीचीन है।

* यह समस्त धौल वाह्य साक्ष्य पृष्ठ ३१ पर दिया जा चुका है।

लिए उक्त महानुभावों की रचना शैली के अध्ययन की आवश्यकता है। गो० गोकुलनाथ जी और श्री हरिराय जी के ग्रंथों का सुचारु रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे दोनों महानुभाव जिस बात को किसी एक ग्रंथ में कहते थे, उसको यथासाध्य दूसरे में दुहराते नहीं थे। इसके साथ ही तिथि-संवत् आदि पर तो वे बहुत ही कम ध्यान देते थे। उदाहरण के लिए दो-एक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। गो० गोकुलनाथ जी ने 'श्री आचार्य महाप्रभु जी की प्रागटय-वार्ता' में आचार्य जी के प्राकट्य-संवत् का कथन किया है†, किंतु उन्होंने 'निज वार्ता' में महाप्रभु जी के प्राकट्य-वृत्तांत का कथन करते हुए भी उनका प्राकट्य संवत् नहीं बतलाया है। इसके अतिरिक्त महाप्रभु जी की 'निज वार्ता' में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य संवत् का कथन होने से स्वयं गोस्वामी जी की 'निजवार्ता' में उसका उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार श्री हरिराय जी के वचनामृतों में सूरदास के दस दिन छोटे होने का कथन होने से 'चौरासी वार्ता' एवं भावप्रकाश में इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी होगी।

वल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के इतिहास की संगति से 'सूरसारावली' का रचनाकाल सं० १६०२ स्पष्ट होता है। उस समय सूरदास की आयु ६७ वर्ष की थी। १६०२ में से ६७ कम कर देने से १५३५ रहते हैं, अतः अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास का जन्म संवत् १५३५ ही सिद्ध होता है।

डा० दीनदयाल गुप्त ने इस संबंध में खोज करते हुए अपना नाथद्वारे का अनुभव इस प्रकार लिखा है—

"श्रीनाथद्वारे में सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री वल्लभाचार्य जी के जन्म दिन वैसाख बदी ११ के बाद वैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है। सूर के इस जन्म दिवस का मनाने का उत्सव संप्रदाय में नया नहीं है, यह परंपरा बहुत प्राचीन है*।"

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सूरदास की जन्म तिथि सं० १५३५ की वैशाख शु० ५, मंगलवार सिद्ध होती है। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान मिश्र-बंधुओं ने सूरदास का आनुमानिक जन्म संवत् १५४० लिखा था, जिसका अनुकरण हिंदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने किया है। अब इस आनुमानिक मत के संशोधन की आवश्यकता है।

---

† पृष्ठ सं० १७

* अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २१२

वंश–परिचय—

साहित्य लहरी के तथा-कथित वंश परंपरा वाले पद के अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से सूरदास का वंश–परिचय प्राप्त नहीं होता है। सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य और मूल चौरासी वार्ता से भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है। नाभा जी एवं प्रियदास ने क्रमशः 'भक्तमाल' और उसकी टीका में अनेक भक्त कवियों के जीवन–वृत्तांत का कथन किया है, किंतु सूरदास के वंश के संबंधमें वे भी मौन हैं। नाभा जी ने सूरदास के कवित्व और उनकी भक्ति की प्रशंसा की है, किंतु जीवन वृत्तांत पर उन्होंने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। साहित्य लहरी के पद की अप्रामाणिकता के कारण उसमें दिया हुआ वंश-परिचय भी अप्रामाणिक है, अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

ऐसी दशा में सूरदास की वंश-परंपरा जानने का कोई साधन नहीं है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी बाल्यावस्था में ही घर से निकल पड़े थे और फिर जीवन भर विरक्त रहे। वे स्वयं अपने भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थे, अतः इस संबंध में उन्होंने कभी कुछ प्रकट नहीं किया। उनके समकालीन तथा परवर्ती व्यक्तियों को भी इस संबंध में जानने का कोई साधन नहीं रहा, अतः यह विषयक अभी तक अज्ञानाधंकार के आवरण से ढका हुआ है।

श्री हरिराय जी ने वार्ताओं पर भाव प्रकाश कहते हुए अनेक भक्तों के जीवन वृत्तांत प्रकट करने की भी चेष्टा की है; किंतु उन्होंने भी सूरदास का वंश-परिचय विस्तार पूर्वक नहीं कहा है। यदि साहित्य लहरी में स्वयं सूरदास का कथित वंश-परिचय होता, तो हरिराय जी उसका अवश्य उपयोग करते। उक्त पद की अप्रामाणिकता का यह भी एक कारण है, जैसा पहले लिखा जा चुका है।

श्री हरिराय जी के भावप्रकाश से केवल इतना ज्ञात होता है कि सूरदास का पिता एक अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण था। उसके चार पुत्रों में से सबसे छोटे पुत्र सूरदास थे। हरिराय जी ने सूरदास के पिता का नामोल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि साहित्य लहरी के जिस पद में सूरदास के तथा-कथित पूर्वजों के नाम लिखे गये हैं, उसमें भी उनके पिता का नाम नहीं दिया गया है। उक्त पद और उसमें दी हुई वंशावली की प्रामाणिकता में विश्वास करने वाले श्री मुंशीराम जी शर्मा इसका कारण यह बतलाते हैं कि सूरदास का पिता अपने छै महा बलवान पुत्रों को मुसलमानों

की युद्धाग्नि में झोंक कर भी आप मुसलमान हो गया था। संभवतः वह इच्छा से नहीं, बलात् मुसलमान बना लिया गया था। उसका यह कृत्य सूरदास के लिए लज्जाजनक ज्ञात होता था, अतः उन्होंने उसका नाम देना भी उचित नहीं समझा† !)

अकबर के सुप्रसिद्ध दरबारी अबुलफ़ज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' में अकबरी दरबार के संगीतज्ञों के नाम लिखे हैं। उनमें ग्वालियर निवासी बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास का भी नामोल्लेख किया गया है। अलबदाउनी ने 'मुंतख़िब उल-तवारीख़' में लिखा है रामदास सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन के समान ही विख्यात कलाकार था, जो अकबर और ख़ानख़ाना से प्रचुर धन प्राप्त करता था।

अबुलफ़ज़ल और अलबदाउनी के रामदास और उसके पुत्र सूरदास को डा० ग्रियर्सन ने भ्रमवश अष्टछापी सूरदास और उनका पिता समझ लिया था। यही भूल बाद के कई लेखकों ने भी की है। अकबर सं० १६१३ में गद्दी पर बैठा था। आरंभिक १०-१५ वर्ष उसे अपने शासन को सुदृढ़ बनाने में लगे थे। उसके दरबार में कलाकारों का सन्मान इसके बाद ही संभव था। तानसेन भी अकबर के दरबार में सं० १६२१ में आया था। उस समय स्वयं सूरदास की ही आयु प्रायः ६० वर्ष की थी। यदि रामदास को सूरदास का पिता मान लिया जाय तो उसे अवस्था के अति वृद्ध पुरुष का अकबरी दरबार में पहुँचना और तानसेन के समान आदर पाना कैसे संभव हो सकता है ! फिर उस रामदास का पुत्र सूरदास को भी अकबरी दरबार का नियमित गायक बतलाया गया है। हमारे सूरदास की एक बार अकबर से भेंट अवश्य हुई थी, किन्तु उनका अकबरी दरबार से क़तई संबंध नहीं था। अकबर से भेंट होने पर भी उन्होंने उससे पुनः मिलने की अनिच्छा प्रकट की थी। सूरदास जैसे विरक्त और सर्वस्व-त्यागी महानुभाव का अकबरी दरबार से संबंध हो भी कैसे सकता था ! यही कारण है कि सूरदास के पिता को रामदास बतला कर उसे अकबरी दरबार का गायक बतलाना एक दम भ्रमात्मक कथन है।

श्री मुंशीराम शर्मा अकबर के गायक रामदास को अष्टछापी सूरदास का पिता न मानते हुए भी उनके पिता का नाम रामदास ही मानने का आग्रह करते हैं। उन्होंने लिखा है—

---

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ १६

"पं० नानूराम भट्ट से प्राप्त हुई वंशावली के आधार पर महामहोपाध्याय पंडित हरिप्रसाद जी शास्त्री ने सूर के पिता का नाम रामचंद्र लिखा है, जो वैष्णव भक्ति के अनुसार रामदास बन जाता है। ‥ सूर के पिता का नाम भी यही था* ।"

पं० नानूराम भट्ट की वंशावली और महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी शास्त्री का मत भी साहित्य लहरी की वंशावली और डा० ग्रियसन के मत के समान अप्रामाणिक एवं भ्रमात्मक है, अतः उनके कथन को भी प्रमाण कोटि में नहीं लिया जा सकता। ऐसी दशा में सूरदास के पिता का भी नाम निश्चय करने का कोई साधन नहीं है।

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि सूरदास का प्रामाणिक वंश-परिचय प्राप्त नहीं है। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के पुत्र थे तथा उनके तीन भाई और थे, इसके अतिरिक्त कोई बात ज्ञात नहीं है। उनकी वंश-परंपरा, उनके पूर्वजों के नाम, यहाँ तक कि उनके पिता एवं भाइयों के नाम भी अज्ञात हैं।

जाति—

सूरदास की जाति के विषय में कई मत प्राप्त हैं। इन मत-दाताओं में से कतिपय उनको भाट, ढाढ़ी अथवा जाट जैसी निम्न जाति का मानते हैं, और सूरदास के पदों के अंतःसाक्ष्य से ही अपने-अपने मतों की पुष्टि भी करते हैं! यहाँ हम उनके मतों की समीक्षा द्वारा सूरदास की जाति का निर्णय करना चाहते हैं।

सूरदास के भाट जातीय होने की कल्पना साहित्य लहरी के पूर्वोक्त पद के कारण की गयी है। उक्त पद के 'प्रथ-जाग' के पाठांतर 'प्रथ-जगात' अथवा 'प्रथ-जगा तें' इस कल्पना के कारण हैं। जिन विद्वानों ने 'जगात' शब्द स्वीकार किया है, उन्होंने उसका अर्थ 'भाट' किया है, यद्यपि उसका वास्तविक अर्थ घाट का कर उगाहने वाला होता है। कुछ विद्वानों ने 'जगात' शब्द को गोत्र वाची मान कर सूरदास को प्रार्थज गोत्रोत्पन्न लिखा है। 'प्रथ-जगा' लिखने वाले तो स्पष्ट रूप से सूरदास को भाट मानते हैं। जिस पद के उक्त शब्दों के कारण सूरदास को भाट बतलाया जाता है, उसी के अंत में उनको

---

* सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ १५

ब्राह्मण भी लिखा गया है* । डा० रामकुमार वर्मा 'भाट' शब्दार्थ स्वीकार करते हुए भी पद के परस्पर विरुद्ध के कारण उसकी प्रामाणिकता में संदेह करते हैं† । इस संदेह का निवारण श्री मुंशीराम शर्मा ने 'प्रथ जगात' अथवा 'प्रथ जगा तें' के स्थान पर 'प्रथ-जाग' पाठ उपस्थित कर एवं भाट को ब्राह्मण शब्द वाची लिख कर किया है$ । उक्त तर्क मे पद के परस्पर विरुद्ध कथन की शंका तो दूर हो जाती है, किंतु वह समस्त पद फिर भी प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। कुछ भी हो 'पृथ-जाग' के शुद्ध पाठ के कारण अब सूरदास को भाट वंशीय मानने का तो कोई कारण नहीं है ।

साहित्य लहरी के पद को निश्चित आधार न मानते हुए भी डा० व्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के 'भाट' अथवा 'ब्रह्मभट्ट' होने की जनश्रुति भी उपस्थित की है–

"इस मत के पोषक सूरदास के 'ढाढ़ी वाले' पदों को भी अपने 'प्रमाणों' में सम्मिलित कर सकते हैं, यद्यपि अभी तक ऐसा किसी ने किया नहीं है‡ ।"

सूरदास के आत्म निवेदनात्मक पदों में से अंतःसाक्ष्य निकाल कर कुछ विद्वान उन्हें सूरदास के जीवन-वृतांत के आधार रूप में उपस्थित करते हैं। ऐसे ही अंतःसाक्ष्यों से उनको "ढाढ़ी' अथवा 'जाट' जाति का बतलाया जाता है। हमारा निवेदन है कि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों को जीवनचरित्र का आधार मानने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। उनके आत्म निवेदनात्मक पदों का अधिकांश कथन माया-मोह से ग्रसित प्रायः समस्त सांसारिक जीवों के लिए है। उक्त कथनों का संबंध सर्वत्र स्वयं सूरदास से लगाना अत्यंत भ्रमात्मक है ।

सूरदास के ढाढ़ो वाले पदों की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी 'सूरदास' मेरौ नाँऊं ॥
२. हँसि हँसि दौरि मिले अंक भरि हम-तुम एक ही जाति ॥
३. हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी भाव सेन सज पाऊँ ॥

* विप्र प्रथ के जाग को हौं, भाव भूरि निकाम ।
'सूर' है नँदनंद जू कौ, लियौ मोल गुलाम ॥ —साहित्यलहरी

† हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६१२

$ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृ० ६, १३

‡ सूरदास पृ० ४६

यदि पूर्वोक्त उल्लेखों के कारण सूरदास को ढाढ़ी जाति का कहा जा सकता है, तो फिर इस प्रकार के पदों के कारण अष्टछाप के अन्य कवियों को भी ढाढ़ी जाति का कहा जावेगा; यद्यपि उन कवियों की जातियाँ निश्चित हैं। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ देखिए—

१. 'कृष्णदास' बल्लभ कुल कौ ढाढ़ी कीनौं जन्म सनाथ ॥

—कृष्णदास

२. हौं ढाढ़ी कबहूँ न अघाऊँ, यद्यपि नंद दातार ॥

—चतुर्भुजदास

३. 'नंददास' नंदराय कौ ढाढ़ी भयौ अजातिक ढोली ॥

—नंददास

ऐसे और भी कितने ही पद उपलब्ध हैं, जिनसे अन्य जातीय अष्टछापी एवं दूसरे कवियों को ढाढ़ी जाति का कहना होगा। इसके अतिरिक्त इन पदों के कारण महाप्रभु बल्लभाचार्य के शरण में आने के बाद भी सूरदास को गृहस्थ और सपत्नीक भी मानना होगा, जो कि हास्यास्पद है।

निम्न लिखित पद में ढाढ़ी की स्त्री और गृहस्थ जीवन का स्पष्ट उल्लेख है—

नंद जू दुःख गयौ, सुख आयौ, सबन कों दियौ पुत्र-फल मानौं।
तुम्हरौ पुत्र प्रान सबहिन कौ, भवन चतुरदस जानौं ॥
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, भाव सेन सज पाऊँ।
गृह गोवरधन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ ॥
ढाढ़िनि मेरी नाँचै गावै, हौं ही ढाढ़ौ बजावौं।
हमरौ चित्यौ भयौ तुम्हारे, जो माँगों सो पावौं ॥
अब तुम मोकौं करौ अयाची, जो गृह गेह बिसारौं।
द्वारे रहौं, देहु एक मंदिर, स्याम सरूप निहारौं ॥
हँसि ढाढ़नि ढाढ़ी सों बोली, अब तू बरनि बधाई।
ऐसौ दियौ न देहैं 'सूर' कोउ, यशोमति हौं पहराई ॥

उपर्युक्त पद से सिद्ध है कि इसे सूरदास के जीवन कथन की सामग्री रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। बल्लभ संप्रदाय की सेवा प्रणाली के अध्ययन से यह विषय भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। इस संप्रदाय में राधाष्टमी के दिन ढाढ़ी बनने की प्रथा महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के समय से ही चली आती है। उस समय श्रीनाथ जी के कीर्तनियां को ढाढ़ी बन कर

आना पड़ता है। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि श्रीनाथ जी के कीर्तनकार होने के कारण ढाढ़ी बनते थे और तत्संबंधी पदों का गायन करते थे। यह प्रथा अब भी वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में प्रचलित है। इन पदों के आधार पर सूरदास को ढाढ़ी कहना इतिहास की एक बहुत बड़ी भूल कही जायगी। जाट जाति सूचक पद "हरिजू हौं यातें दुख पात्र" की प्रक्षिप्तता पूर्व सिद्ध की जा चुकी है, अतः इस मत को भी हम अप्रमाणिक मानते हैं।

उपर्युक्त अंतःसाक्ष्यों के विरुद्ध ऐसे अंतःसाक्ष्य भी मिलते हैं, जिनसे सूरदास के उच्च जातीय होने की सूचना मिलती है। निम्न लिखित पदों को देखिये—

मेरे जीय सु ऐसी आय बनी।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौ, तौ लाजै जननी॥
कहा काँच कौ संग्रह कीजै, त्याग अमोल मनी।
विष कौ मेरु कहाँ लौं कीजै, अमृत एक कनी॥
मन बच क्रम सत भाउ, कहत हौं मेरे स्याम धनी।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि, तजी जाति अपनी*॥

अथवा—

बिकानी हरि-मुख की मुसिकानि।
पर बस भई फिरत सँग निसि-दिन, सहज परी यह बानि॥
× × ×
गई जाति, अभिमान, मोह, मद, पति, हरिजन पहचानि।
'सूर' सिंधु सरिता मिलि, जैसे मनसा बुंद हिरानि‡॥

उपर्युक्त पदों में से प्रथम पद में सूरदास ने भगवद्भक्ति के लिए और द्वितीय पद में 'हरि-मुख की मुसकानि' पर सर्वस्व अर्पित करते हुए अपनी जाति को भी त्याग देने की बात कही है। उच्च जाति का त्याग ही लोक में कथनीय हो सकता है, अन्यथा निम्न जाति के त्याग का क्या महत्व है। इन अंतः साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वे अवश्य उच्च जाति के थे। उच्च जातियों में भी ब्राह्मण जाति का महत्व माना गया है, क्यों कि वही जाति उन दिनों आचार-विचार में संयम का विशेष रूप से पालन करती थी। इससे समझा

* सूर-सागर (बंबई सं० १९६४) पृष्ठ १७

‡ सूरदास कृत हस्त लिखित पदों के निजी संग्रह से।

जा सकता है कि सूरदास ब्राह्मण ही थे। इस मत की पुष्टि अनेक बाह्य-साक्ष्यों से भी होती है, जिनमें सूरदास को स्पष्ट रूप से सारस्वत ब्राह्मण बतलाया गया है।

गोसाईं विट्ठलनाथ जी छठे पुत्र गो० यदुनाथ जी (सं० १६१५ से १६६०) ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बतलाते हुए लिखा है—

"ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो व्रजसमागमने सारस्वत सूरदासोऽनुगृहीतः† ।"

गोसांई विट्ठलनाथ जी के सेवक श्रीनाथ भट्ट ने सूरदास को प्राच्य ब्राह्मण लिखा है—

" जन्मांधो सूरिदासोऽभूत प्राच्यो ब्राह्मण उन्मदः* । "

प्राच्य ब्राह्मण से श्रीनाथ भट्ट का अभिप्राय सारस्वत ब्राह्मण से है या नहीं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता हैं; किंतु उनके कथन से सूरदास का ब्राह्मण होना सिद्ध है।

गोसांई विट्ठलनाथ जी एवं गो० गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि ने स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

श्री बल्लभ प्रभु लाड़िले, सीहीं-सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात‡ ॥

श्री यदुनाथ जी निश्चय पूर्वक सूरदास के समकालीन थे, श्रीनाथ भट्ट गोसाईं जी के सेवक और प्राणनाथ गोकुलनाथ जी के समकालीन होने के कारण सूरदास के भी प्रायः समकालीन थे, अतः उनके कथन प्रामाणिक हैं।

श्री हरिराय जी ने तो स्पष्ट रूप से सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है—

"अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण''तिनकी वार्ता", "सो सूरदास''एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे§ ।"

---

† बल्लभ दिग्विजय, पृष्ठ ५०

* संस्कृत वार्ता मणिमाला, श्लोक १

‡ अष्टसखामृत

§ चौरासी वैष्णवन की वार्ता में 'अष्ट सखान की वार्ता' पृष्ठ १,२

अब यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि गोकुलनाथ जी कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में सूरदास की जाति का उल्लेख क्यों नहीं है, जब कि उसमें दिये हुए ८२ भक्तों में से कम से कम ७२ भक्तों की जातियों का उल्लेख शीर्षकों में ही किया गया है ? इसका उत्तर यह है कि सूरदास पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही अपनी जाति का त्याग कर चुके थे। वे बाल्यावस्था में घर से निकल आने और अंधे होने के कारण जाति-मर्यादा पालन करने में असमर्थ थे। इसके अनंतर स्वामी होने की अवस्था में वे साधु-संतों में रहा करते थे, जहाँ जाति-पाँति का विचार नहीं होता है। साधु-मंडली के मत "जाति-पाँति बूझै नहीं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।" के अनुसार सूरदास भी जातीय कट्टरता के प्रति उदासीन थे।

पुष्टि मार्ग में भी सर्वोच्च श्रेणी के भक्तों के लिए जातीयता महत्वपूर्ण नहीं है। इस मार्ग में जातीयता तब तक ग्राह्य है, जब तक भक्त लोक धर्म से परे नहीं हो जाते। सूरदास लोक धर्म से परे ही नहीं थे, प्रत्युत् वे 'स्वयं प्रकाश' भी हो गये थे। वार्ताकार सूरदास की इस स्थिति से परिचित थे। संभव है इसी लिए उन्होंने सूरदास की जाति का कथन करना अनावश्यक समझा हो। वैसे निम्न जाति का होना पुष्टि संप्रदाय के भक्तों के लिए कोई आपत्ति-जनक बात नहीं थी, इस लिए वार्ताकार द्वारा सूरदास की निम्न जाति को छिपाने की आवश्यकता भी नहीं थी। पुष्टि संप्रदाय के अनन्य भक्त, श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी और अष्टछाप के कवि कृष्णदास को वार्ता में स्पष्ट रूप से 'शूद्र' लिखा गया है; किंतु इसके कारण उनकी प्रतिष्ठा एवं भक्ति में कोई कमी नहीं समझी गयी।

इस सब कारणों से हम सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं।

अंधत्व—

सूरदास संबंधी समस्त जन-श्रुतियों में उनके अंधत्व की बात सब से अधिक प्रचलित है। परंपरागत मान्यताएँ ही नहीं, प्रत्युत् सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से भी उनका नेत्रविहीन होना सिद्ध है। लोक में भी 'सूर' और अंधत्व समान अर्थ वाची माने जाने के कारण 'सूरदास' शब्द अंधे के लिए रूढ़ सा हो गया है। अब मतभेद केवल इस विषय पर है कि वे जन्मांध थे, अथवा बाद में अंधे हुए थे।

हिंदी साहित्य के विद्वान सूरदास के काव्य की पूर्णता से प्रभावित होकर ही उनकी जन्मांधता में विश्वास नहीं करते हैं, वरना उनके पास जन्मांधता के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत सम सामयिक विद्वानों के वाह्य

साक्ष्य, परंपरागत मान्यता और सूरदास की रचनाओं के कतिपय अंतःसाक्ष्य से भी उनका जन्मांध होना प्रमाणित होता है।

सूरदास के काव्य में दृश्य जगत् के ऐसे यथार्थ वर्णन हैं, उनके द्वारा प्रस्तुत रूपक, उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ इतनी स्वाभाविक हैं, और उनकी कविता में रंगों का ऐसा यथावत् कथन किया गया है, जो आधुनिक विद्वानों के मतानुसार आँखों से देखे बिना केवल सुनी हुई बातों के आधार पर होना असंभव है, इसीलिए वे उनको जन्मांध न मान कर बाद में वृद्धावस्था अथवा किसी अन्य कारण से उनके नेत्र-विहीन हो जाने का अनुमान करते हैं।

इस प्रकार के अनुमान करने में प्रायः सभी आधुनिक विद्वान एक मत हैं, जैसा निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा—

"हमें तो इनके जन्मांध होने पर विश्वास नहीं होता। सूरदास ने अपनी कविता में ज्योति के, रंगों के और अनेकानेक हाव-भावों के ऐसे-ऐसे मनोरम वर्णन किये हैं, तथा उपमाएँ ऐसी चुभती हुई दी हैं, जिनसे यह किसी प्रकार निश्चय नहीं होता कि कोई व्यक्ति बिना आँखों देखे, केवल श्रवण द्वारा प्राप्त ज्ञान से, ऐसा वर्णन कर सकता है❀।"

"सूर वास्तव में जन्मांध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है, वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता†।"

"प्राकृतिक दृश्य का अनुपम चित्र-चित्रण किसी प्रकार यह नहीं मानने देता कि वे जन्म से ही अंधे थे। मिल्टन की तरह अवस्था बढ़ने पर ही वे नेत्र विहीन हो गये थे*।"

"सूरदास ने अपने काव्य में जिस प्रकार से ज्योति का, नाना प्रकार के वर्णों का तथा नाना हाव-भावों का वर्णन किया है और प्रकृति से जिस ढंग से नाना प्रकार की उपमाएँ कथन की हैं, वह चक्षुष्मान व्यक्ति के अतिरिक्त अंध के द्वारा केवल श्रुति की सहायता से संगृहीत नहीं हो सकता।...संभवतः वह जन्मांध नहीं थे और पीछे वह अंधे हो गये थे, ऐसा अनुमान होता है§।"

❀ मिश्रबंधु कृत 'हिंदी नवरत्न' पृष्ठ २३०

† डा० श्यामसुंदरदास कृत 'हिंदी साहित्य' पृष्ठ १८५

* डा० बेनीप्रसाद कृत 'संक्षिप्त सूरसागर' पृष्ठ ६

§ श्री नलिनीमोहन सान्याल कृत 'शिरोमणि सूरदास' पृष्ठ १०

" सूरदास की रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्य के भावों के उतार चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देख कर यह कहने का साहस नहीं होता है कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों के देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है* ।"

" यदि सूरदास जी को जन्मांध माना जाए तो इस विचार और युक्ति के युग में भी हमें चमत्कारों पर विश्वास करना पड़ेगा† ।"

" जहाँ-जहाँ कवि ने नेत्रहीनता का उल्लेख अपने पदों में किया है, वहाँ-वहाँ अपनी वृद्धावस्था का भी उल्लेख किया है। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, परंतु प्रौढ़ावस्था पार करते-करते वे नेत्र विहीन हो गये‡ । "

इस प्रकार उपर्युक्त सभी विद्वानों का अनुमान है कि सूरदास जन्मांध नहीं थे, प्रत्युत् अपनी वृद्धावस्था में नेत्र विहीन हो गए थे। डा० दीनदयाल गुप्त भी सूरदास को जन्मांध नहीं मानते हैं, किंतु वे उनकी वृद्धावस्था में नहीं, बल्कि बाल्यावस्था में अंधे होने का अनुमान करते हैं§ ।

सूरदास के जन्मांध होने के विरुद्ध आधुनिक विद्वानों की युक्तियाँ इतनी तर्क सम्मत हैं, कि उनको स्वीकार करने में हमको भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किंतु हमारे मत से यह तर्क एवं युक्तियाँ सामान्य कवियों के लिए संगत हो सकती हैं। इस संबंध में हम श्री मुंशीराम शर्मा के निम्न मत का समर्थन कर सकते हैं—

" यह तो साधारण मनुष्यों की ही बात हुई। सूर जैसे उच्च कोटि के संत की तो बात ही निराली है। वे भगवद्भक्त थे। अघटित घटना घटा देने वाले प्रभु के सच्चे भक्त के सामने विश्व के निगूढ़ रहस्य भी अनवगत नहीं रहते। साधारण व्यक्ति जिस वस्तु को नेत्र रहते भी नहीं देख सकता, उसे क्रांतिदर्शी व्यक्ति एवं महात्मा अनायास देख लेते हैं¶

* श्री नंददुलारे वाजपेयी कृत "सूर संदर्भ" पृष्ठ ३४

† डाक्टर ब्रजेश्वर वर्मा कृत "सूरदास" पृष्ठ ३१

‡ भटनागर एवं त्रिपाठी कृत 'सूर साहित्य की भूमिका' पृष्ठ १३

§ अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २०२

¶ सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ २४

सूरदास केवल परमोच्च श्रेणी के कवि, गायक और भक्त ही नहीं थे, प्रत्युत् वे ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले ब्रह्मविद् महात्मा थे। आर्य शास्त्रों के मतानुसार जो महानुभाव ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे इन भौतिक चक्षुओं के आश्रित नहीं रहते हैं। परमात्मा की कृपा से उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है और वे 'स्वयं प्रकाश' हो जाते हैं। इस बात के समर्थन में निम्न लिखित श्रुति वाक्य दृष्टव्य हैं—

"अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मापश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वामति सवाएष एवं पश्यन्नेवं। मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः सस्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति*।

(छांदो० उप०)

इसी बात को सूरदास ने इस प्रकार प्रकट किया है—

चरन कमल बंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कों सब कुछ दरसाई॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बारबार बंदौं तिहिं पाई॥

अथवा

हरि जू तुमतें कहा न होई।
रंक सुदामा कियौ इंद्र सम पांडव हित कौरव दल खोई॥
पतित अजामिल दासी कुब्जिा तिनहूँ के कलिमल सब धोई।
बोलै गूँग, पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधा जग जोई॥
बालक मृतक जिवाय दिये द्विज, जो आये दरबारै होई।
'सूरदास' प्रभु इच्छा पूरन श्री गुपाल सुमिरत सब कोई॥

इन उल्लेखों से यह निश्चित होता है कि सिद्ध ज्ञानी भक्त लोग चाहें चक्षु विहीन ही क्यों न हों, उस परात्पर ज्ञान के आश्रय से दृश्य एवं अदृश्य

---

* आत्मा का ही आदेश है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा पीछे है और आत्मा ही दक्षिण ओर है, और आत्मा ही बाम भाग है, आत्मा ही सर्व है। इस प्रकार देखते, मानते और जानते हुए आत्मा के साथ रति करने वाला, क्रीडा करने वाला और विनोद करने वाला आत्मानंद और स्वयंप्रकाश हो * । लोक में वह कामनाएँ पूर्ण करता है।

जगत् के सभी पदार्थों एवं विषयों आदि का यथार्थ रूप से अनुभव करते रहते हैं। आर्य शास्त्रों के इस सिद्धांत के दृष्टांत शुक और संजयादि हैं।

श्री शुकाचार्य ने जन्म से ही गृह त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन किया था, अतः उनको संसार के किसी भी पदार्थ एवं विषयादि का लेश मात्र भी अनुभव नहीं था। तथापि श्री भागवत में उन्होंने व्यास द्वारा सुने हुए रासादि लीला एवं अन्य विषयों का इस प्रकार कथन किया है, जैसा दूसरा सामान्य अनुभवी पुरुष भी वर्णन नहीं कर सकता है, और न कर सका है। इसी प्रकार ईश्वर प्रदत्त दृष्टि के कारण संजय रणक्षेत्र से कोसों दूर रह कर भी वहाँ का समस्त वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। यह आर्य शास्त्रों के आध्यात्मिक विज्ञान का परम उत्कर्ष है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के मतानुसार ब्रह्मज्ञान में निष्ठा हुई तब जानी जा सकती है, जब जीव 'सर्वज्ञ' हो जाय। इसी प्रकार 'पुष्टि-पुष्टि' भक्त भी सर्वज्ञ होते हैं†।

आचार्य जी के कथन का तात्पर्य यह है कि शुद्धाद्वैत ब्रह्मज्ञान निष्ठ जीव और पुष्टि-पुष्टि भक्त दोनों 'सर्वज्ञ' होते हैं। यहाँ 'सर्वज्ञ' का अर्थ केवल भूत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाला ही नहीं है, किंतु 'सर्व' रूप ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है; क्यों कि त्रिकाल ज्ञान तो ज्योतिष आदि एकांगी विद्याओं से भी प्राप्त हो सकता है।

आचार्य जी के मत से 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'पुरुष एवेदं सर्वं' आदि श्रुतियों के आधार पर यह सारा जगत् ब्रह्म रूप है, अतः ब्रह्म का वास्तविक बोध हो जाने पर इस जगत् का भी संपूर्णतः ज्ञान स्वयमेव हो जाता है। फिर उस ब्रह्मज्ञानी के लिए जगत् के किसी भी पदार्थ व विषय के अनुभव में किसी भी बाह्य इंद्रिय विशेष की अपेक्षा नहीं रहती है; क्यों कि वह 'स्वयंप्रकाश' हो जाता है।

सूरदास भी इसी प्रकार के ज्ञानी भक्त थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनको तत्व और दशविध लीला प्रकारों द्वारा परब्रह्म श्री कृष्ण के स्वरूप का ज्ञान करा दिया था और इसी ज्ञान के कारण से सूरदास ईश्वर की कृपा प्राप्त कर उसका साक्षात्कार भी कर सके थे।

---

† "ज्ञान निष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत्" (निबंध)
"पुष्ट्या विमिश्रा सर्वज्ञाः" (पुष्टि प्रवाह मर्यादा)

" श्री बल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ, लीला भेद बतायौ ।
ता दिन तें यह लीला गाई, एक लच्छ पद बंद ॥ "

"सारावली" की इन पंक्तियों से उक्त बात की पुष्टि होती है । इसके समर्थन में सूरदास के " गुरु बिन ऐसी कौन करै " इत्यादि कई पद भी उपलब्ध होते हैं ।

अतः हमें यह मानना होगा कि सूरदास महाप्रभु की कृपा से तत्वज्ञानी और आत्मा (ईश्वर) में रति करने वाले पूर्ण भक्त हो चुके थे । वे 'स्वयंप्रकाश' हो गये थे, अतएव वे बाह्य चक्षुओं के आश्रित नहीं थे । उन्होंने जो कुछ भी वर्णन किया है, वह अपनी आध्यात्मिक ज्ञान शक्ति के आधार पर ही किया है; अन्यथा उनके जैसा अनुभवपूर्ण वर्णन बाह्य चक्षु वाले अभक्त उत्तम कवियों ने आज तक भी नहीं किया है ।

हमारे इस कथन की पुष्टि तब और भी विशेष रूप से होती है, जब हम बल्लभाचार्य जी के शरण आने के पूर्व उनके रचे हुए पदों का अध्ययन करते हैं । शरण आने से पूर्व उनके रचे हुए पदों में कहीं भी सृष्टि-सौंदर्य की उपमा, उत्प्रेक्षा और रंग आदि का वर्णन प्राप्त नहीं होता है । उनमें केवल सुने हुए पुराणादि के दृष्टांतों से ईश्वर का माहात्म्य और जीव की अज्ञानता तथाच अधमता का ही निरूपण विनय के साथ पाया जाता है । सृष्टि सौंदर्य, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का जिसमें समावेश होता है, ऐसी भगवल्लीलाओं का वर्णन तो उन्होंने महाप्रभु से प्राप्त किए हुए ज्ञान—तत्व-दर्शन के अनंतर ही किया है । इस बात की पुष्टि पूर्व उद्धृत " ता दिन तें यह लीला गाई " वाली सारावली की पंक्ति से होती है । अतः यह मानना होगा कि सूरदास के पदों में प्राप्त उक्त रंग, उपमा आदि का स्वाभाविक वर्णन उनके बाह्य चक्षुओं का विषय न होकर उनके आंतर अनुभव का था । इस बात का दृष्टांत सहित समर्थन सूरदास की वार्ता से इस प्रकार होता है—

" सो इनके हृदय में स्वरूपानंद कौ अनुभव है । तासों जैसौ तुम सिंगार करौगे सो तैसौ ही पद सूरदास जी वर्णन करिकें गावेंगे । तासों भगवदीय की परीक्षा नांहीं करनी । "

" सो सूरदास जी जगमोहन में बैठे हते । सो इनके हृदय में अनुभव भयो* । "

* चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) के अंतर्गत ' अष्टसखान की वार्ता ' पृ० १७, १८

वार्ता के इस प्रसंग से सूरदास के हृदय में ब्रह्म-ज्ञान और पुष्टि-भक्ति के आश्रय से ही यथार्थ अनुभव होते रहने का निश्चय होता है। इस सिद्धांत के समर्थन में पूर्वोक्त श्रुति वाक्य दिया जा चुका है। नाभा जी ने भी सूरदास के संबंध में इसी प्रकार का कथन किया है‡।

फिर भी यदि हम पाश्चात्य बुद्धिवाद—जड़वाद की शिक्षा के प्रभाव से आर्य शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञान के उत्कर्ष को स्वीकार न करते हुए अपने पूर्व तर्क पर ही दृढ़ रहना चाहते हैं, तो हमें उस तर्क से उत्पन्न होने वाले इन प्रश्नों का समाधान भी समुचित रूप से करना होगा। तभी उस तर्क के आधार पर हम सूरदास का बाद में नेत्र विहीन होना सिद्ध कर सकते हैं। उक्त तर्क से उत्पन्न होने वाले प्रश्न ये हैं—

(१) सूरदास के पदों में प्राप्त वात्सल्य और शृंगार रसों के स्वाभाविक अनुभवपूर्ण वर्णनों को देखते हुए पूर्व तर्क के आधार पर ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूरदास उच्च राजकुटुंब के पूर्ण गृहस्थी और अनेक उत्तम रमणियों एवं पुत्रादि से भी युक्त थे, क्यों कि ऐसे उत्तम प्रकार के भुक्त भोगी हुए बिना पूर्व तर्क के अनुसार सूरदास के पदों में वात्सल्य और शृंगार की संयोग, विप्रयोग, स्वकीय, परकीय हृदय वेधक भावनाओं का स्वाभाविक वर्णन होना सर्वथा असंभव ही माना जायगा।

(२) सूरदास के पदों में प्राप्त स्त्री हृदय का स्वाभाविक तलस्पर्शी वात्सल्य और वेदनादि तत्वों के वर्णन पूर्व तर्क के अनुसार एक पुरुष हृदय में पढ़ने, सुनने या देखने से नहीं हो सकता है, अतः उनके स्त्री हृदय की संगति भी हमें ढूँढनी होगी।

संभव है कुछ लोग इन प्रश्नों का समाधान बिल्वमंगल के चिंतामणि वेश्या वाले, तथाच नेत्र फोड़ने वाले चरित्रों को इन सूरदास के चरित्रों में जोड़ कर करना चाहें! किंतु उनका यह आधारहीन प्रयास "भक्तमाल" के विरुद्ध होने से भी प्रमाणिक नहीं कहा जायगा; क्यों कि "भक्तमाल" में दोनों सूरदासों का भिन्न-भिन्न वर्णन प्राप्त है।

फिर भी क्षण भर के लिये बिल्वमंगल सूरदास के चरित्रों को इन सूरदास के चरित्रों में जोड कर उन्हें भुक्त भोगी सिद्ध भी किया जाय, तब भी सूरदास

‡ प्रतिबिंबित दिवि-दृष्टि हृदय हरि-लीला भासी।

में प्राप्त स्त्री हृदय की संगति के लिये हमारे पास कोई प्रामाणिक तर्क या आधार प्राप्त नहीं है। अतः सूरदास को पीछे से अंध हुए सिद्ध करने में जो तर्क उठाया गया है, वह सूरदास के विषय में अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण ही कहा जायगा।

पूर्वोक्त दोनों आवश्यक प्रश्नों का समाधान सूरदास को सिद्ध ज्ञानी भक्त मानने से इस प्रकार स्वतः हो जाता है—

श्रुतियों के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप "सर्व रसमय" है†, अतः सिद्ध भक्त को उसके बोध से काव्य शास्त्रोक्त दसों रसों का अनुभव हो जाता है। इस बात की पुष्टि सूरदास के पदों में प्राप्त दशविध रसों के वर्णनों से भी होती है।

अन्य प्रकार से भी, परब्रह्म श्रीकृष्ण में दसों रस विद्यमान थे‡, और वे सूरदास के परम इष्ट थे। अतः उनके साक्षात्कार से श्रीकृष्ण के दशविध रसात्मक स्वरूप का अनुभवपूर्ण ज्ञान उन्हें प्राप्त होना स्वाभाविक है।

श्री कृष्ण के वात्सल्य एवं शृंगार रसात्मक स्वरूपों का अनुभव करने के लिए भक्ति मार्ग में गोपी हृदय की प्राप्ति होना आवश्यक माना गया है। इसीलिए पुष्टिमार्ग में गोपीजनों को गुरु मानते हुए उनके प्रेम भावों की भावनाओं को ही मुख्य साधन रूप माना गया है*। इन्हीं भावों की वात्सल्य प्रेम आदि भावनाएँ सूरदास के पदों में दिखाई देती हैं। निम्न पद देखिए—

द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ।
बिनु देखे कल परत नहीं छिन ऐसे पर कीन्हे यह टेऊ।
बार बार छवि देख्यौ चाहत साथी निमिष मिले हैं येऊ॥
तू तौ ओट करत छिन ही छिन देखत ही भरि आवत बेऊ॥
कैसे मैं उनकों पहिचानों नयन बिना लखियै क्यों भेऊ।
ये तौ निमिप परत भरि आवत निठुर बिधाता दीने जेऊ॥
कहा भयौ जो मिली स्याम कों तू जान्यौ जानत सब केऊ।
'सूरस्याम' कौ नाम स्रवन सुनि, दरसन नीके देत न वेऊ॥

---

† "रसो वै सः"; "सर्व रसः"इत्यादि।
‡ "मल्लानांशनिनृणां नरवरः"—भागवत
* (१)..."गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्"
(२) "भावोभवनयासिद्धः" (संन्यास निर्णय)

उक्त पद में गोपियों के "पलकांतर विरह" की भावना व्यक्त करते हुए सूर ने अपनी नेत्र हीनता को भी सूचित कर दिया है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास को रसात्मक ब्रह्म का बोध होने के साथ गोपी हृदय भी प्राप्त हो चुका था।

गोपी हृदय की भावना की सिद्धि सूर के इन उल्लेखों में भी प्राप्त होती है

(१) "हौं चेरी महारानी तेरी।"
(२) "सूर सखी कैसे मन माने।"

निम्न पद में तो सूर ने दृष्टांत के साथ पुरुष हृदय में भक्ति के उद्रेक से स्त्री भाव की प्राप्ति को स्पष्ट किया है—

भज सखी भाव भाविक देव।
कोटि साधन करौ कोऊ तौऊ न मानें सेव॥
धूमकेतु कुमार मांग्यौ कौन मारग रीत।
पुरुष तें त्रिय भाव उपज्यौ सबै उलटी रीत॥
बसन भूषन पलटि पहरे भाव सों संजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन बरन सूधे होय॥
वेद विधि कौ नेम नहिं जहाँ प्रीति की पहचान।
ब्रजबधू बस किये मोहन "सूर" चतुर सुजान॥

इस पद में महाप्रभु के "भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्य दिष्यते।" वाले सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए सूर ने पद्मपुराणोक्त सोलह हजार ऋषियों के हृदय में रामचंद्र जी के दर्शन कर भक्ति भाव की उद्रेकता के साथ जो स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था, उस कथा का दृष्टांत रूप से वर्णन किया है। इसका सुचारु रूप में वर्णन महाप्रभु ने "चीरहरण" प्रसंग की सुबोधिनी में किया है। अतः भक्तिमार्ग में भावना के उद्रेक से पुरुष को भी स्त्री हृदय प्राप्त हो जाता है, यह बात दृष्टांतों के साथ सिद्ध है। अष्टछाप के परमानंददास भी इस बात का इस प्रकार समर्थन करते हैं—

लगै जो वृंदावन कौ रंग।
स्त्री भाव सहज में उपजै पुरुष भाव होय भंग॥

भक्ति मार्गीय सिद्धांतों के अनुसार जिस प्रकार ज्ञानी भक्तों को ब्रह्म का बोध होने पर समस्त जगत के पदार्थ एवं विषयों का स्वतः ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार गोपियों के से प्रेम भाव से रसात्मक ब्रह्म की उपासना करने वाले

प्रेमी भक्तों के लिए स्त्री-हृदय भी सहज ही में प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सूरदास को नेत्रविहीन और पुरुष होते हुए भी उपर्युक्त दोनों बातें साध्य थीं। अतः भक्तिमार्गीय सिद्धांतों के विवेचन से सूरदास संबंधी दोनों बातों की स्वतः संगति बैठ जाती है।

अब हम सम सामयिक विद्वानों के कथन, बहिःसाक्ष्य एवं सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्यों से उनकी जन्मांधता की जाँच करेंगे।

सूरदास के प्रायः समकालीन श्रीनाथ भट्ट एवं प्राणनाथ कवि के कथन सर्व प्रथम विचारणीय हैं। श्रीनाथ भट्ट ने अपनी 'संस्कृत मणिमाला' में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध लिखा है—

"जन्मांधो सूरदासोऽभूत"

प्राणनाथ कवि कृत 'अष्टसखामृत' में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध नहीं कहा गया है, किंतु उनके कथन से जन्मांधता का ही संकेत मिलता है—

बाहर नैंन विहीन सो, भीतर नैंन बिसाल।
तिन्हैं न जग कछु दखिवौ, लखि हरि रूप निहाल ॥
बाहर-अंतर सकल तम, करत ताहि छन दूर।
हरि-पद-मारग लखि परत, यातें साँचे सूर ॥
रूप माधुरी हरि लखी, देखे नहिं अन लोक।
दृगिगुन रस-सागर पियौ, हरन सकल जग सोक ॥

सूरदास के कुछ समय पश्चात् होने वाले नाभाजी के कथन से भी सूरदास की जन्मांधता का ही बोध होता है—

प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥

इसके बाद प्रायः सभी लेखकों ने उनको जन्मांध ही लिखा है। रघुराजसिंह कृत 'रामरसिकावली' और मियाँसिंह कृत 'भक्तविनोद' में भी उनको जन्मांध ही लिखा गया है—

जन्मति तें हैं नैंन विहीना। दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना ॥
—रामरसिकावली

जनम अंध दृग ज्योति विहीना। जननि जनक कछु हरष न कीना ॥
—भक्तविनोद

श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश युक्त चौरासी वार्ता में सूरदास को स्पष्ट रूप से जन्मांध लिखा गया है, किंतु श्री गोकुलनाथ जी कथित मूल चौरासी वार्ता में इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख न होने के कारण भी बहुत से विद्वानों को सूरदास की जन्मांधता में विश्वास नहीं होता है। मूल चौरासी वार्ता में सूरदास के अंधत्व की स्पष्ट सूचना दो प्रसंगों में मिलती है–प्रथम अकबर से भेंट होने के समय और द्वितीय सूरदास के देहावसान के समय। इन दोनों अवसरों पर सूरदास वृद्ध हो चुके थे, इसीलिए आधुनिक विद्वान वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन होने का अनुमान करते हैं। यदि मूल चौरासी वार्ता को भी ध्यान पूर्वक पढ़ा जाय तो उससे ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शरण में आने के समय भी सूरदास नेत्रविहीन थे। वार्ता में लिखा है—

"तब सूरदास जी अपने स्थल तें आयके श्री आचार्य जी महाप्रभून के दर्शन को आये। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यो जो 'सूर' आवो बैठो। तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून को दर्शन करिके आगे आय बैठे।"

सूरदास के आगमन पर आचार्य जी ने उनको 'सूर' नाम से संबोधन किया है, इसलिए श्री मुंशीराम शर्मा का अनुमान है कि "महाप्रभु से मिलने के पूर्व ही सूरदास अंधे होने के कारण 'सूर' नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे†।" इसके विरुद्ध कुछ विद्वानों का मत है कि वार्ता के उपर्युक्त कथन "तब सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून को दर्शन करिके आगे आय बैठे" से उनका अंधत्व ज्ञात नहीं होता है, क्यों कि अंधा व्यक्ति किस प्रकार दर्शन कर सकता है। उनके समाधान के लिए हम वार्ता में दिए हुए अन्य प्रसंग को उपस्थित करते हैं।

वार्ता में लिखा हुआ है कि सूरदास को शरण में लेने के अनंतर श्री वल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन ठहरे थे। इसके पश्चात् वे सूरदास को लेकर गोकुल की ओर चल दिए। उस समय का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"अब जो श्री आचार्य जी महाप्रभु व्रज को पाँव धारे सो प्रथम श्री गोकुल पधारे। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून के साथ सूरदास जी हू आये। तब श्री महाप्रभु जी अपने श्री मुख सों कह्यौ जो सूरदास जी श्री गोकुल को दर्शन करौ, सो सूरदास ने श्री गोकुल को दंडवत करी।"

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ २२

इस उल्लेख से सूरदास के अंधे होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। एक नेत्रों वाला व्यक्ति जिस प्रकार अंधे से कहता है, उसी प्रकार आचार्य जी ने सूरदास से गोकुल के दर्शन करने को कहा है। यदि सूरदास के नेत्र होते, तो वे आचार्य जी के सूचित करने से पूर्व ही गोकुल के दर्शन कर लेते। आचार्य जी की सूचना के अनुसार नेत्र विहीनता के कारण वे गोकुल के दर्शन तो कर ही नहीं सकते थे, अतः उन्होंने गोकुल को दंडवत् कर अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। वार्ता के इस उल्लेख से उस समय सूरदास का नेत्र विहीन होना सूचित होता है। यदि उस समय वे नेत्र विहीन थे, तो इससे तीन दिन पूर्व श्री वल्लभाचार्य जी के शरण में आने के समय में भी वे नेत्र विहीन होंगे। उस समय सूरदास जी की आयु प्रायः ३१ वर्ष की थी, अतः वे वृद्धावस्था में ही नहीं, वरन् युवावस्था में भी नेत्र विहीन थे, यह इस प्रसंग से सिद्ध होता है।

जो विद्वान चौरासी वार्ता द्वारा उनके जन्मांध होने का स्पष्ट विवरण जानना चाहते हैं, उनको ज्ञात होना चाहिए कि वार्ता का आरंभ इसी प्रसंग को लेकर हुआ है। इससे पूर्व का वृत्तांत अर्थात् सूरदास के जन्म एवं बाल्य काल का वर्णन मूल चौरासी वार्ता में नहीं दिया गया है। ऐसी दशा में प्रसंग न आने के कारण ही उसमें जन्मांधता का उल्लेख नहीं है।

वार्ता के कथन की पूर्ति श्री हरिराय जी ने अपने 'भावप्रकाश' में की है। उन्होंने स्पष्ट रूप से सूरदास को जन्म से ही अंधा होना लिखा है। यथा—

"सो सूरदास जी के जन्मत ही सों नेत्र नाहीं हैं।"

श्री हरिराय जी ने सूर और अंधे का भेद बतलाते हुए उनके सूर नाम की सार्थकता इस प्रकार बतलायी है—

"जन्में पाछे नेत्र जांय, तिनको आंधरा कहिये, सूर न कहिये और ये तो सूर हैं।"

सूरदास की जन्मांधता के विषय में इतने बाह्य प्रमाण प्राप्त हैं कि आधुनिक विद्वानों के तर्क उनके सामने टिक नहीं सकते हैं। डा० दीनदयाल गुप्त सूरदास की जन्मांधता के संबंध में श्री हरिराय जी कृत भावप्रकाश एवं अन्य बाह्य प्रमाणों से प्रभावित तो हैं, किंतु वे आधुनिक विद्वानों के अनुमान का किंचित समर्थन करते हुए सूरदास को वृद्धावस्था में नहीं, बल्कि बाल्यावस्था में अंधा होना मानते हैं। उन्होंने लिखा है—

"एक ओर तो बाह्य प्रमाण सूर को जन्मांध कहते हैं और दूसरी ओर, यदि हम उनकी रचनाओं को अंध विश्वास की आँख को हटा कर साधारण बुद्धि की आँख से देखें तो हमें उनके स्वाभाविक और सजीव भाव-चित्रों और वर्णनों के सहारे ज्ञात होगा कि कवि ने संसार के रूप-रंग को किसी अवस्था में अवश्य देखा होगा। बाह्य प्रमाण विरुद्ध होते हुए भी यदि यह मान लिया जाय कि सूरदास अपनी बाल्य अवस्था में ही अंधे हो गये थे, तो इसमें सूर का महत्व कुछ कम नहीं होता† ।"

यहाँ पर सूर के महत्व का प्रश्न नहीं है; प्रश्न तो वास्तविक बात की खोज करने का है। सूरदास की वृद्धावस्था में उनके नेत्रविहीन हो जाने की बात तो कुछ अर्थ भी रखती है, किंतु डा० गुप्त उनकी बाल्यावस्था में अंधे होने की बात किस आधार पर कहते हैं ? निस्संदेह "यदि हम उनकी रचनाओं को अंध विश्वास की आँख को हटाकर साधारण बुधि की आँख से देखें" तो बाह्य साक्ष्य ही नहीं, अंतःसाक्ष्य से भी सूरदास की नेत्रविहीनता और उनका जन्मांध होना सिद्ध होता है।

सूरदास की निम्न रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी नेत्र विहीनता ज्ञात होती है—

सक्र कौ दान बिन मान ग्वालिन कियौ, गह्यौ गिरि पान जस जगत छायौ।
यहै जिय जानिकै अंध भव त्रास तें, 'सूर' कामी कुटिल सरन आयौ ॥१॥

'सूर' कहा कहै द्विविध आँधरौ, बिना मोल कौ चेरौ ॥२॥

रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै।
इहै निज मंत्र, यह ज्ञान, यह ध्यान है, दरस दंपति भजन सार गाऊँ।
इहै मांगौं बार-बार प्रभु, 'सूर' के नयन द्वै रहौ, नर-देह पाऊँ ॥३॥

'सूर' कूर आँधरौ हौं द्वार परयौ गाऊँ ॥४॥

उक्त उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि जब सूरदास श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करते थे, तब वे निश्चित रूप से अंध थे।

उपर्युक्त अंतःसाक्ष्यों से सूरदास की अंधता सिद्ध होती है, किंतु उनकी जन्मांधता की स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं होती है। अब हम सूरदास के कुछ

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २०२

ऐसे पद देते हैं, जिनमें उनकी जन्मांधता का अस्पष्ट एवं स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पहले निम्न लिखित पद देखिए—

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं, अरु गुरु के सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारंग-पानि।
लंका दई बिभीषन जन कों, पूरबली पहिचानि॥
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सों बहुत निठुरता, नैननि हू की हानि॥

उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति से सूरदास के जन्मांध होने की अस्पष्ट सूचना मिलती है। इस पंक्ति में सूरदास ने अपने इष्टदेव के प्रति 'बहुत निठुरता' का आक्षेप किया है। इस पद में वर्णित 'त्यागी' और 'दानी' कहलाने वाले इष्टदेव पर निठुरता का प्रबल आक्षेप तभी हो सकता है, जब उन्होंने सूरदास को जन्म से ही नेत्र विहीन किया हो। यदि सूरदास वृद्धावस्था अथवा अन्य किसी कारण से अंधे होते, तो इष्टदेव के प्रति इस प्रकार का आक्षेप असंगत हो जाता। सूरदास जैसे शब्दों के मर्म को जानने वाले महाकवि से इस प्रकार असंगत कथन की आशा नहीं की जा सकती है।

निम्न लिखित पदों में सूरदास की जन्मांधता का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

(राग धनाश्री)

किन तेरौ गोविंद नाम धर्यौ।
सांदीपनि के सुत तुम ल्याये, जब विद्या जाय पढ्यौ॥
सुदामा की दालिद्र तुम काटी, तंदुल भेंटि धर्यौ।
द्रुपद सुता की लाज तुम राखी, अंबर दान कर्यौ॥
जब तुम भए लेवा देवा के दाता, हम सूं कछु न सर्यौ।
'सूर' की बिरीयां निठुर होइ बैठे, जन्म-अंध कर्यौ॥

यह पद एक प्रामाणिक एवं प्राचीन हस्त लिखित प्रति से उद्धृत किया गया है। इस प्रति का समय सं० १८०० के आस-पास का ज्ञात होता है। उक्त पद से मिलते हुए कुछ पद सूरसागर की मुद्रित प्रतियों में भी प्राप्त होते हैं, किंतु उनमें पाठ का इतना अंतर है कि वे उक्त पद से पृथक् ज्ञात होते हैं। सूरदास की रचनाओं में एक सी शब्दावली एवं भावों के कई पृथक्-पृथक् पद मिलते हैं।

इस पद में 'गोविंद' और 'जन्म अंध' की असंगति बतलाते हुए सूरदास ने गोविंद पर स्वार्थपरायणता और निठुरता का आक्षेप किया है। इस आक्षेप की पुष्टि सूरदास ने सांदीपनि आदि के दृष्टांतों से की है, जिसके कारण उनकी सार्थक शब्द-योजना और भी चमक उठी है।

'गोविंद' अर्थात् इंद्रियों का दाता—स्वामी (इंद्र), इस शब्दार्थ के कारण अपने को नेत्र-इंद्रिय से रहित जन्मांध करने पर सूरदास श्री कृष्ण के प्रति 'लेवा देवा के दाता' और 'निठुरता' के आक्षेप करते हैं और 'गोविंद' नाम की अयोग्यता भी बतलाते हैं। यद्यपि कृष्ण ने सांदीपनि को पुत्र, सुदामा को वैभव और द्रौपदी को चीर देकर अपना दातृत्व स्पष्ट किया है, तथापि सूरदास कहते हैं कि उनका वह दातृत्व क्रमशः विद्या पढ़ने, तंदुल खाने और अंबर-दान के बदले में था, अतः स्वार्थवश था। सूरदास कहते हैं कि मुझसे आपका कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ, इसलिए मुझे नेत्र-इंद्रिय का दान न कर जन्मांध कर दिया; अतः आपका 'गोविंद' जैसा असार्थक नाम किसने रखा है!

इसी प्रकार का एक पद और देखिए—

हरि बिन संकट में को का कौ।
तुम बिन दीनदयाल कृपानिधि नाम लेहुँ धौं का कौ॥
मंजारी-सुत चुवै अबा में, उनकौ बार न बाँकौ।
निरभै भए पांडुसुत डोलत, उनहिं नाहिं डर का कौ॥
धन्य भाग है पांडु सुतन के, जिनकौ रथ प्रभु हाँकौ।
जरासंध जोराबर मार्‌यौ, फारि कियौ दो फाँकौ॥
द्रौपदि चीर गहेउ दुस्सासन खेंचत भुज-बल थाकौ।
महाभारत भारहिं के अंडा तोर्‌यौ गज-कांधा कौ॥
कोटि कोटि तुम पतित उधारे, कह हूँ कवन कहाँ कौ।
रह्यौ जात एक पतित, जनम कौ आँधरौ 'सूर' सदा कौ॥

यह पद भी एक प्राचीन हस्त-प्रति से उद्धृत किया गया है। इस पद में 'हरि' और 'संकट' शब्द सार्थक हैं। हरि का अर्थ होता है दुःख को हरने वाला, इसलिए 'हरि' को 'संकट' के साथ रखा गया है। इस पद की अंतिम पंक्ति का अर्थ कुछ लोग इस प्रकार भी कर सकते हैं कि सूरदास अपने को जन्म से पतित और 'सदा कौ आँधरौ' अर्थात् अज्ञानी कहते हैं। सूरदास ने अपने अनेक पदों में अपने को सब से अधिक पतित, यहाँ तक कि

'हौं तौ पतित सात पीढ़ी कौ' कहा है, इसलिए 'एक जन्म का पतित' अर्थ करना ठीक न होगा। यहाँ पर 'पतित' शब्द को 'जनम' के साथ न मिला कर "जनम कौ आंधरौ" समझना ही उचित है।

अब निम्न लिखित पद देखिए। यह पद नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद की भजनावली में संगृहीत है—

(राग भूपाली—तीन ताल)

नाथ मोहि अबकी बेर उबारौ ।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारौ ॥
करमहीन जनम कौ अंधौ, मोतें कौन नकारौ ।
तीन लोक के तुम प्रतिपालक, मैं तो दास तिहारौ ॥
तारी जाति कुजाति प्रभु जू, मो पर किरपा धारौ ।
पतितन में इक नायक कहिये, नीचन में सरदारौ ॥
कोटि पापी इक पासंग मेरे, अजामिल कौन बिचारौ ।
धरम नाम सुनिकै मेरौ, नरक कियौ हठ तारौ ॥
मोकों ठौर नहीं अब कोऊ, अपुनौ विरद सम्हारौ ।
छुद्र पतित तुम तारे रमापति, अब न करो जिय गारौ ।
"सूरदास" साँचौ तब मानें, जो ह्वै मम निस्तारौ ॥

इस पद में 'नाथ' शब्द की सार्थकता के साथ कर्महीनता, जन्मांधता आदि का संबंध जोड़ा गया है। नाथ का शब्दार्थ है—न + अथ अर्थात् दूसरा नहीं। इस पद में सूरदास ने अपनी सर्वविध निःसाधनता बतलाते हुए एक मात्र भगवान का भरोसा किया है। सूरदास कहते हैं कि मैं कर्महीन, जन्मांध और सबसे अधिक पापी हूँ। आपने छोटे-छोटे पतितों का तो उद्धार किया है। जब आप मेरा निस्तार करेंगे, तब मैं आपके पतित पावन विरद को सत्य समझूँगा। सूरदास के पदों की सी सार्थक शब्द-योजना अन्य कवियों के काव्य में मिलना कठिन है। यही कारण है कि सूरदास हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य कहे जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि सूरदास वृद्धावस्था एवं बाल्यावस्था में ही नहीं, बल्कि जन्म से ही अंधे थे।

आरंभिक जीवन और गृह-त्याग—

सूरदास के आरंभिक जीवन का परिचय श्री हरिराय जी के 'भावप्रकाश' के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होता है। 'चौरासी वार्ता' अथवा सूरदास की रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से इस विषय पर विस्तृत रूप से प्रकाश नहीं पड़ता है। 'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि सूरदास के पिता अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे, अतः उनके लिए अंधे सूरदास भार स्वरूप थे। सूरदास की उस समय की अवस्था का बोध उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से भी होता है।

'साहित्यलहरी' के वंश–परिचय वाले पद के आधार पर श्री मुंशीराम शर्मा का कथन है—

"सूर समृद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे।" जिस वंश के व्यक्ति बादशाहों से युद्ध करने की हिम्मत रखते हों, वह वंश दरिद्र नहीं हो सकता†।"

किंतु जिसका आधार ही अप्रामाणिक है, उसके कथन को प्रामाणिक मानने का कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य साधन से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि नहीं होती है। सूरदास के विनयपूर्ण पदों में ऐसे कई अंतःसाक्ष्य हैं, जिनसे उनके दरिद्र कुलोत्पन्न होने का ही आभास मिलता है।

'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि सूरदास अपनी छै वर्ष की आयु तक अपने माता–पिता के साथ रहे। इसके अनंतर वे गृह-त्याग कर अपने जन्म-स्थान सीहीं से चार कोस दूर एक ग्राम में चले गये और वहाँ पर अपनी आयु के अठारह वर्ष तक रहे। यद्यपि छै वर्ष की आयु में गृह-त्याग की पुष्टि अभी तक किसी अन्य सूत्र से नहीं हो सकी है, तथापि 'चल्यौ सवेरौ, आयौ अवेरौ' आदि अंतःसाक्ष्यों से सूरदास द्वारा अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग की सूचना अवश्य मिलती है। मियाँसिंह कृत 'भक्त विनोद' में भी सूरदास की आरंभिक अवस्था में ही उनके गृह-त्याग का उल्लेख है, किंतु उसका वृत्तांत भिन्न है। 'भक्त विनोद' से ज्ञात होता है कि सूरदास का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की आयु में हुआ था। इसके पश्चात् उनके माता-पिता उनको लेकर ब्रज यात्रा के लिए गये। वहाँ पर मथुरा में सूरदास

† सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ३८

कृष्ण--भक्तों के साथ रह गये और अपने माता--पिता के आग्रह करने पर भी उनके साथ वापिस नहीं गये। इसके बाद सूरदास की ख्याति, उनके कूप-पतन और श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है। कवि मियाँसिंह के इस कथन के विषय में डा० दीनदयाल गुप्त का मत है—

"ज्ञात होता है कि अन्य सूरदासों की कहानियाँ मिला कर तथा साहित्य लहरी में दिये हुए सूर की वंशावली वाले प्रक्षिप्त पद का कुछ अंश में सहारा लेकर यह वृतांत लिखा गया है‡।"

हम भी डा० गुप्त के मत का समर्थन करते हैं, अतः 'भक्त विनोद' के उपर्युक्त कथन को अप्रामाणिक समझते हैं।

श्री हरिराय जी कृत 'भावप्रकाश' से ज्ञात होता है कि गृह-त्याग के अनंतर सूरदास अपने जन्म स्थान सीहीं के निकटवर्ती ग्राम में तालाब के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे आकर ठहरे। उस ग्राम के ज़िमींदार की १० गायें चोरी चली गयीं थीं। सूरदास के कारण जिमींदार की गायें मिल गयीं, अतः उसने सूरदास के रहने के लिए उक्त तालाब के किनारे एक झोंपड़ी बनवा दी और उनके खान-पान का भी प्रबंध कर दिया।

इस स्थान पर सूरदास अपनी अठारह वर्ष की आयु तक रहे। ग्राम के जिमींदार ने यह प्रसिद्धि कर दी थी कि सूरदास शकुन विद्या के अच्छे जानकार हैं। उनके बतलाने से उसकी खोई हुई गायें मिल गईं थीं। यह समाचार सुन कर अनेक व्यक्ति सूरदास के पास शकुन पूछने आने लगे। सूरदास का बतलाया हुआ शकुन सत्य होता था, अतः उनकी खूब प्रसिद्धि हो गयी। शकुन पूछने वालों की लायी हुई भेंट से सूरदास के पास अन्न, वस्त्र एवं द्रव्य यथेष्ट परिमाण में एकत्रित हो गया। अब सूरदास 'स्वामी जी' कहलाने लगे और अनेक व्यक्ति उनके सेवक हो गये। यहीं पर रहते हुए सूरदास ने गायन कला में भी कुशलता प्राप्त कर ली थी। उनके पास गायन-वादन का भी सरंजाम था। वे अपने सेवकों की मंडली में विरह के पदों का गायन किया करते थे।

सूरदास द्वारा शकुन बतलाने की बात का समर्थन किसी अन्य सूत्र से नहीं होता है, किंतु " मिलै गोपाल सोई दिन नींको।...भद्रा भली भरणी भय-हरणी चलत मेव अरु छींको॥" आदि सूरदास की रचनाओं के

---

‡ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० १२४

अंतःसाक्ष्य, श्रीकृष्ण की जन्म कुंडली के पद एवं भविष्य सूचक कथनों से यह भली भाँति सिद्ध होता है कि वे ज्योतिष विद्या के जानकार अवश्य थे। उनकी गायन--कुशलता के संबंध में कुछ कहना ही व्यर्थ है। चौरासी वार्ता के आरंभिक प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य होने के पूर्व ही सूरदास एक कुशल गायक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। इन विद्याओं का ज्ञान उनको किस प्रकार हुआ, यह किसी अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य से प्रकट नहीं होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सत्संग से ही उनको इन विद्याओं की प्राप्ति हुई थी। पूर्व संस्कारों के कारण उनको सहज ही में इनका ज्ञान प्राप्त हो गया; फिर चिर अभ्यास से वे इनमें दक्ष हो गये थे।

सूरदास की स्वामी अवस्था और उनके अनेक शिष्य आदि की सूचना निम्न लिखित पद से प्रकट होती है—

हरि, हौं सब पतितन कौ नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, इतै मान कौ लायक॥

× × ×

यह सुनि जहाँ तहाँ तैं सिमिटैं, आइ जुरे इक ठौर।
अब कैं इतने और मिलाऊं बेर दूसरी और॥
होड़ा होड़ी मनहिं भावते, किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय-तर डारौं, यहै हमारी भेट॥
बहुत भरोसों जानि तुम्हारौ, अघ कीन्हें भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरत ही, 'सूर' पतित कौ टाँड़ौ॥

इस स्थान पर रहते हुए सूरदास के पास यथेष्ट वैभव, शिष्य-सेवक तथा गाने बजाने का सरंजाम एकत्रित हो गया था। हरिराय जी ने अपने भावप्रकाश में लिखा है—

"या प्रकार सूरदास तलाब पे पीपर के वृक्ष नीचे बरस अठारह के भये। सो एक दिन रात्रि को सोवत हते, ता समय सूरदास को वैराग्य आयो। तब सूरदास जी अपने मन में बिचारे जो देखौ मैं श्री भगवान् के मिलन के अर्थ वैराग्य करिके घर सौं निकस्यो हतो। सो यहाँ माया ने ग्रसि लियो।...पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरि के लाठी लेके उहाँ तें कूंच किये।.... कितनेक सेवक संसार सों रहित हते सो सूरदास जी के संग चले।"

यद्यपि सूरदास ने अपनी बाल्यावस्था में ही गृह-त्याग किया था, तथापि वे अपने गृह से बहुत दूर नहीं, प्रत्युत् चार कोस दूर एक गाँव में रहने लगे थे। वहाँ उनके गुणों से आकर्षित होकर अनेक प्रकार के व्यक्ति उनके पास आने लगे। अबोधावस्था का वैराग्य भाव वहाँ पर दुःसंग के कारण कुछ समय के लिए दब गया था। वे स्वामित्व के कारण माया-जाल में भी फँस गये थे। इस प्रकार उनके जीवन का आरंभिक भाग व्यतीत हुआ। जब वे अठारह वर्ष के हुए, तब पश्चात्ताप पूर्वक फिर उनकी वैराग्य की ओर प्रवृत्ति हुई। उस समय का वैराग्य दृढ़ था। उस समय तक उनकी अबोधावस्था दूर हो चुकी थी, और उनको संसार का कुछ अनुभव भी प्राप्त हो चुका था। तब वे अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर संगीत के सरंजाम एवं कुछ सच्चे त्यागी सेवकों के साथ मथुरा होते हुए गऊघाट पर आकर रहने लगे।

दृढ़ भक्ति से पूर्व की स्वामी अवस्था में काम, क्रोध, निंदा, स्तुति आदि दोषों का आना स्वाभाविक है। सूरदास कृत दीनता, विनय एवं वैराग्य के पदों में ऐसे अनेक कथन हैं, जिनसे उस समय की दशा का ज्ञान हो सकता है। ये कथन अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी अवास्तविक नहीं कहे जा सकते। यदि ये कथन अवास्तविक होते, तो उनमें पश्चात्ताप की जो तीव्र भावना दिखलायी देती है, वह कदापि संभव नहीं थी। सूरदास को अपनी स्वामी अवस्था के कृत्यों का पश्चात्ताप अपनी प्रौढ़ावस्था तक रहा था, जैसा उनके अनेक पदों से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित पद देखिए—

> जौलौं सत्य स्वरूप न सूझत।
> तौलौं मन मनिकंठ बिसारे, फिरत सकल बन बूझत॥
>
> × × ×
>
> कहत बनाय दीप की बातें, कैसे ही तम नासत।
> 'सूरदास' जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखें।
> कहँ जाने दिनकर की महिमा, अंध नैंन बिनु देखें॥

इस पद के 'वे दिन गये अलेखे' शब्दों द्वारा पश्चात्ताप की भावना स्पष्ट प्रकट होती है। इसी प्रकार बाल्यावस्था में गृह-त्याग करने पर भी अधिक समय बाद बड़ी अवस्था में भगवत्प्राप्ति की सूचना निम्नलिखित पदांश से प्रकट होती है—

> चल्यौ सवेरौ आयौ अबेरौ, लेकर अपने साजा।
> 'सूरदास' प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा॥

इस कथन से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने गृह का त्याग अपनी बाल्यावस्था में ही किया था, किंतु बीच में कहीं अटक जाने के कारण प्रभु से मिलने में उनको कुछ विलंब हो गया था। इस पद से यह भी ज्ञात होता है कि प्रभु से मिलने के पूर्व वे अपने साज-सामान सहित वैभवशाली थे। यह कथन उनकी अठारह वर्ष की अवस्था तक के वृतांत की पुष्टि करता है। इसके बाद के साज-सरंजाम सहित गऊघाट पर आकर रहने और वहाँ भी बारह वर्ष के लंबे समय के पश्चात् वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी से मिले, जिसकी सूचना उक्त कथन से प्राप्त होती है।

शरणागति एवं शरणागति-काल—

सूरदास अपने वैराग्य की दृढ़ता के कारण अपना समस्त वैभव जहाँ का तहाँ छोड़ कर व्रज की ओर चल दिए। वे पहले मथुरा में आये। वहाँ कुछ समय रह कर मथुरा और आगरा के मध्यवर्ती गऊघाट नामक स्थान पर यमुना नदी के किनारे रहने लगे।

चौरासी वार्ता में सूरदास की कथा का आरंभ यहीं से होता है। चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे स्वरचित पदों के गायन द्वारा भगवान् की आराधना किया करते थे। इस प्रकार रहते हुए उनको बहुत समय हो गया। एक बार महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य अपने सेवकों सहित अड़ैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे। सूरदास के एक सेवक ने उनको सूचना दी कि आज गऊघाट पर श्री बल्लभाचार्य जी पधारे हैं। इन आचार्य जी ने काशी तथा दक्षिण में मायावाद का खंडन किया है और भक्ति-मार्ग की स्थापना की है। सूरदास ने यह समाचार सुन कर उक्त सेवक से कहा—"जब आचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर बैठें, तब मुझको सूचना देना। मैं उनके दर्शन करूँगा।"

जब श्री बल्लभाचार्य जी भोजनादि से निश्चिंत होकर गद्दी पर विराजमान हुए और उनके शिष्य सेवक गण उनके निकट बैठ गये, तब सूरदास के सेवक ने इसकी सूचना उनको दी। सूरदास अपने सेवकों सहित बल्लभाचार्य जी के दर्शनार्थ आये और दंडवत प्रणाम कर उनके सन्मुख बैठ गये। श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"सूर! कुछ भगवद्-यश वर्णन करो।" इस पर सूरदास ने निम्न लिखित पदों का गायन किया—

(१) हौं हरि! सब पतितन कौ नायक।
(२) प्रभु! हौं सब पतितन कौ टीकौ।

इन पदों को सुनकर श्री वल्लभाचार्य ने कहा—" तुम 'सूर' होकर भी ऐसी दीनता दिखलाते हो ! कुछ भगवल्लीलाओं का वर्णन करो ।" चौरासी वार्ता में लिखा है कि श्री वल्लभाचार्य के उपर्युक्त कथन पर सूरदास ने उनसे कहा—"महाराज ! मुझे भगवल्लीलाओं का ज्ञान नहीं है ।" इस पर श्री आचार्य जी ने सूरदास से कहा—"हम तुमको इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान कराये देते हैं ।"

सूरदास की रचनाओं में भी इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है—

१. श्री बल्लभ अब की बेर उबारो ।
'सूर' अधम कों कहूँ ठौर नहीं बिनु एक सरन तुम्हारौ ॥
२. मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै ।
'सूरदास' बल्लभ उर अपने चरन कमल चित लावै ॥
३. मन रे तैं आयुष वृथा गँवाई ।
अजहू चेत कृपाल सदा हरि श्री बल्लभ सुखदाई ।
'सूरदास' सरनागत हरि की और न कछू उपाई ॥

इस पर श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने संप्रदाय की विधि के अनुसार सूरदास को अष्टाक्षर मंत्र का 'नाम' सुनाया और 'ब्रह्म संबंध' कराते हुए उनसे 'समर्पण' कराया । 'नाम' एवं 'समर्पण' पुष्टि संप्रदाय की दो प्रकार की दीक्षाएँ हैं । गुरु अपने सेवक के कान के पास 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस अष्टाक्षर मंत्र को तीन बार सुनाते हैं । इसी को 'नाम सुनाना' कहते हैं । 'समर्पण' का अभिप्राय यह है कि जीव अपना सर्वस्व अर्थात् अहंता-ममतात्मक देह, इंद्रियाँ, स्त्री, पुत्र, कुटुंब, गृह, द्रव्य, अंतःकरण, प्राण, लोक, परलोक, आत्मा आदि को भगवान् श्रीकृष्ण के अर्पित कर उनका दासत्व स्वीकार करता है । सूरदास की रचनाओं में इनका इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है—

अज हू सावधान किन होहि ।
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ ।
बार-बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुडी सुनायौ ॥
(नाम दीक्षा)

यामैं कहा घटैगौ तेरौ ।
नंदनँदन कर घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहै चेरौ ।
सबै समर्पन 'सूर' स्याम कों, यह साँचौ मत मेरौ ॥
(समर्पण दीक्षा)

इस प्रकार सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए। इस विधि के अनंतर श्री वल्लभाचार्य जी ने सूरदास को श्रीमद्भागवत् के 'दशमस्कंध की अनुक्रमणिका', भागवत् की टीका स्वरूप स्वरचित 'सुबोधिनी' और भागवत सार समुच्चय रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'* सुनाया, जिनके कारण सूरदास को भागवत के तत्व और उसकी दशविध लीलाओं का यथार्थ ज्ञान हो गया। इसी के फल स्वरूप बाद में सूरदास ने श्री कृष्ण-लीला विषयक सहस्रों पद एवं सूरसारावली की रचना की थी।

श्री वल्लभाचार्य जी गऊघाट पर तीन दिन तक ठहरे। इसी समय सूरदास ने अपने समस्त शिष्य-सेवकों को भी श्री आचार्य जी द्वारा दीक्षित करा दिया। इसके अनंतर श्री आचार्य जी अपने सेवकों के साथ गोकुल होते हुए गोवर्धन चले गये। सूरदास भी उनके साथ थे। गोवर्धन पहुँच कर आचार्य जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का आदेश दिया।

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास को शरण में लेने से पूर्व श्री वल्लभाचार्य जी काशी और दक्षिण के शास्त्रार्थों में विजयी होकर 'आचार्य महाप्रभु' की पदवी प्राप्त कर चुके थे। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार पत्रावलंबन वाला काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६३ वि० में और राजसभा वाला दक्षिण का इतिहासप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १५६५ वि० में हुआ था‡, अतः सूरदास का शरण-काल सं० १५६५ के अनंतर निश्चित होता है।

गो० विट्ठलनाथ जी के आविर्भाव के समय गाया हुआ सूरदास-रचित एक बधाई का पद—'श्री वल्लभ दीजै मोहि बधाई।'—उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास गो० विट्ठलनाथ जी के जन्म सं० १५७२ से पूर्व श्री वल्लभाचार्य की शरण में आ चुके थे। इस प्रकार बहिःसाक्ष्य और अंतः-साक्ष्य के अनुसंधान से सिद्ध होता है कि सूरदास सं० १५६५ के पश्चात् और सं० १५७२ के पूर्व महाप्रभु की शरण में आये थे।

---

* 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के विषय में ऐसा समझा जाता है कि इसकी रचना सूरदास के शरणागत होने के बहुत दिनों बाद श्री गोपीनाथ जी के लिए की गयी थी। इस संबंध में हम अपने विचार विस्तार पूर्वक आगामी पृष्ठों में लिखेंगे।

‡ अष्टछाप परिचय (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ८

गो० यदुनाथ जी ने अपने 'वल्लभ दिग्विजय' नामक ग्रंथ में लिखा है कि अड़ैल से ब्रज जाते हुए श्री आचार्य जी महाप्रभु ने सूरदास को अपने शरण में लिया था। फिर ब्रज से पुनः अड़ैल वापिस पहुँचते ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी का अड़ैल में जन्म हुआ था। श्री गोपीनाथ जी की प्राकट्य तिथि सं० १५६८ की आश्विन कृ० १२ है। अड़ैल से ब्रज जाने में और वहाँ कुछ दिन रह कर पुनः अड़ैल वापिस आने में उस समय कम से कम ६ महीने अवश्य लगे होंगे। इस प्रकार सूरदास का शरण-काल वि० सं० १५६७ निश्चित होता है।

उपर्युक्त संवत् की पुष्टि वार्ता के कथन से भी हो जाती है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है सं० १५६५ के दक्षिण राजसभा वाले शास्त्रार्थ के अनंतर आचार्य जी अड़ैल से ब्रज जाते हुए गऊघाट पर ठहरे थे। राजसभा वाले शास्त्रार्थ के पश्चात् ही उन्होंने अड़ैल में अपना स्थायी निवास बनाया था, जहाँ से ब्रज में जाकर उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा का प्रबंध किया था। 'वल्लभ दिग्विजय' के अनुसंधान से सूरदास अपनी आयु के ३२ वें वर्ष में महाप्रभु की शरण में आये थे। सूरदास का जन्म संवत् १५३५ गत पृष्ठों में सिद्ध किया जा चुका है, अतः उनका शरण-काल 'चौरासी वार्ता' और 'वल्लभ दिग्विजय' दोनों के प्रमाण से सं० १५६७ ही सिद्ध होता है।

"श्रीनाथ जी की प्रागट्य वार्ता" की मुद्रित प्रति में सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ लिखा हुआ है। हिंदी के कुछ विद्वानों ने भी उनके शरण-काल का यही संवत् लिखा है†, किंतु यह सर्वथा भ्रमात्मक है। श्रीनाथ जी का मंदिर पूर्णतया सं० १५७६ में बन कर तैयार हुआ था। श्री वल्लभाचार्य द्वारा सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन कार्य के लिए नियत किये गये थे। इसी की संगति मिलाते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर के निर्माण-काल सं० १५७६ के अनंतर सं० १५७७ में सूरदास का शरण-काल लिखा गया है, जो निम्न लिखित प्रमाणानुसार अशुद्ध है।

श्री वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से पूरनमल खत्री ने श्रीनाथ जी के मंदिर निर्माण का कार्य सं० १५५६ की वैशाख शु० ३ को आरंभ कर दिया था।

† १. सूर सौरभ, प्रथम भाग, पृष्ठ ४५
२. सूर साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १८
३. सूर: जीवनी और ग्रंथ, पृष्ठ २६

द्रव्याभाव से यह निर्माण कार्य बीच में रुक गया था, किंतु तब तक मंदिर का अधिकांश भाग बन चुका था और वह ऐसी स्थिति में था कि उस नवीन मंदिर में श्रीनाथ जी का स्वरूप (मूर्ति) स्थापित हो सके। सं० १५६४ में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने उस मंदिर में श्रीनाथ जी को विराजमान कर दिया था, जैसा "वल्लभ दिग्विजय" और "संप्रदाय कल्पद्रुम" से सिद्ध है। इसके बाद द्रव्य की व्यवस्था होने पर मंदिर के शिखर आदि बाह्य भाग की पूर्ति सं० १५७६ में हुई थी। इस निर्माण-पूर्ति के संवत् की संगति के कारण ही 'श्रीनाथ जी की प्रागट्य वार्ता' में सूरदास का शरण-काल सं० १५७७ मान लिया गया प्रतीत होता है। यदि सूरदास वास्तव में सं० १५७७ में ही बल्लभ संप्रदाय में सम्मिलित हुए होते, तब उनके द्वारा सं० १५७२ में गो० विट्ठलनाथ जी के प्राकट्य अवसर पर गाया हुआ बधाई का पद किस प्रकार उपलब्ध होता!

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य के आधार पर सूरदास का शरण-काल संवत् १५६७ वि० निश्चित होता है।

ब्रजवास और कीर्तन-सेवा—

चौरासी वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की शरण में आने के अनंतर सूरदास गऊघाट से गोकुल, मथुरा होते हुए गोवर्धन गये थे। वहाँ पर बल्लभाचार्य जी ने उनको श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन-सेवा का कार्य दिया था। सूरदास ने अपना शेष जीवन स्थायी रूप से गोवर्धन में रहते हुए और श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करते हुए व्यतीत किया था।

सूरदास का स्थायी निवास गोवर्धन के निकट परासोली ग्राम में था। वहाँ पर चंद्र सरोवर के पास वे अपनी कुटी में रहा करते थे और प्रति दिन परासोली से श्रीनाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन सेवा करते थे। सूरदास के गोवर्धन निवास की सूचना निम्न लिखित पद्यांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होती है—

"नंद जू! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन तें आयौ।"

इस पद में सूरदास के ढाढ़ी बन कर गोवर्धन से आने का उल्लेख है। ढाढ़ी बनने का कारण हम जाति विषयक गत पृष्ठों में स्पष्ट कर चुके हैं। 'निज वार्ता' के अनुसार इस पद की रचना सं० १५७२ में होना सिद्ध होता है, जब कि महाप्रभु बल्लभाचार्य जी अपने नवजात शिशु विट्ठलनाथ जी को अड़ैल से प्रथम बार ब्रज में लाये थे।

गोवर्धन में आने के पश्चात् वे श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए स्थायी रूप से वहीं पर रहने लगे। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ मथुरा और कभी-कभी नवनीतप्रिय जी के दर्शनार्थ गोकुल जाने के अतिरिक्त वे गोवर्धन छोड़ कर कहीं नहीं गये। 'आईने अकबरी' में लिखा हुआ है कि एक बार अकबर बादशाह ने सूरदास को अपने से मिलने के लिए प्रयाग में बुलवाया था, किंतु यह उल्लेख किसी अन्य सूरदास से संबंध रखता है। हमारे सूरदास तो पूर्णतया विरक्त थे, अतः राज्य कार्य ही नहीं, प्रत्युत् वाह्य जगत् से भी उनका कुछ संबंध नहीं था। वे श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर कहीं जाना भी नहीं चाहते थे। एक बार सं० १६२३ में जब उनको श्रीनाथ जी के स्वरूप (मूर्ति) के साथ मथुरा जाना पड़ा, तो वहाँ पर वे श्रीनाथ जी के साथ २ माह और २२ दिन तक रहे थे। उसी समय उनकी अकबर से भी भेंट हुई थी, जिसका विस्तार पूर्वक उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया जावेगा। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखाहुआ है कि कुंभनदास और परमानंददास के कारण जब सूरदास को श्रीनाथ जी के कीर्तन से कुछ अवकाश मिलता, तो वे नवनीतप्रिय जी के सन्मुख कीर्तन करने गोकुल जाया करते थे‡। ऐसे अवसर सं० १६२८ के बाद ही आये होंगे, जब गो० विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे।

सूरदास की रचना में गोकुल, मथुरा और वृंदावन का उल्लेख† प्राप्त होने से उनका उक्त स्थानों में जाने का अनुमान होता है। उनके मथुरा और गोकुल में कार्यवशात् जाने का उल्लेख तो वार्ता में भी मिलता है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, किंतु उनके वृंदावन जाने का उल्लेख वार्ता में प्राप्त नहीं है। उनकी भक्ति--भावना को देखते हुए यह अनुमान होता है कि वे श्रीनाथ जी प्रभृति स्वरूपों की सेवा छोड़ कर अधिक समय तक वृंदावन आदि किसी स्थान में नहीं रह सकते थे। इस संबंध में वार्ता में दिया हुआ कृष्णदास अधिकारी का वृंदावन वाला प्रसंग द्रष्टव्य है*। उनकी रचना के वृंदावन वाले उल्लेख से यह संभावना होती है कि वे शायद महाप्रभु

‡ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्ट० की वार्ता' पृ० १६

† १. ब्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।

(इस पद मे गोकुल, वृंदाबन का उल्लेख हुआ है)

२. वृंदाबन एक पलक जो रहिये।

'सूरदास' बैकुंठ मधुपुरी भाग्य बिना कहाँ ते पैये॥

* 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (अग्रवाल प्रेस) मे 'अष्ट० की वार्ता' पृ० १३२

वल्लभाचार्य जी अथवा गो० विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्हीं के साथ ब्रजयात्रा करते हुए वृंदावन गये हों, अथवा स्वदेश से गऊघाट जाते समय जब वे मथुरा आये थे, तब वे संभवतः वृंदावन भी गये हों। वृंदावन में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी की बैठकें विद्यमान हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पुष्टि संप्रदाय के आरंभिक इतिहास से वृंदावन का भी संबंध है। ऐसी दशा में किसी समय सूरदास का वहाँ जाना असंभव नहीं है।

सूरदास द्वारा श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने का उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त उनके निम्न लिखित पदांश के अंतःसाक्ष्य से भी प्राप्त होता है—

'सूर कूर आँधरौ, हौं द्वार परयौ गाऊँ।'

इसके अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार पवित्रा एकादशी, रथ यात्रा, छप्पन भोग एवं अष्ट समय की सेवा के विशिष्ट पदों की रचना द्वारा सूरदास का मंदिर की कीर्तन-सेवा से घनिष्ट संबंध सिद्ध होता है।

श्रीनाथ जी के प्रति आसक्ति—

सूरदास के इष्टदेव श्रीनाथ जी थे, अतः उन्हीं के प्रति उनकी पूर्ण आसक्ति थी। उन्होंने श्रीनाथ, गोवर्धनधर, गोपाल आदि नामों से उनके प्रति अपनी भक्ति–भावना प्रकट की है, जैसा कि निम्न लिखित कतिपय पदों से स्पष्ट है—

१. अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी।
श्रीनाथ सारंगधर कृपा करि मोहि, सकल अघ हरन हरि गरुड़गामी॥

२. श्री गोवर्धनधर प्रभु, परम मंगलकारी।
उधरे जन 'सूरदास' ताकी बलिहारी॥

इन उल्लेखों से सूरदास का श्रीनाथ जी के प्रति इष्टदेव का संबंध पुष्ट होता है। भक्ति-भाव से श्रीनाथ जी की उपासना और निष्काम भाव से उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए उनको अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त हो गया था। इस बात का उल्लेख "स्याम कह्यौ 'सूरदास' सों मेरी लीला सरस बनाय", अथवा "तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनहु 'सूर' मम गाथ" इत्यादि कथनों में स्पष्टतया मिलता है।

'सूरसागर' नाम की प्रसिद्धि—

गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने के अनंतर सूरदास ने महाप्रभु जी द्वारा प्राप्त भागवतोक्त ज्ञान के आधार पर भगवल्लीलाओं का गायन किया था, जिसके कारण महाप्रभु जी उनको 'सागर' के नाम से संबोधन करते थे।

सूरदास को 'सागर' कहने का तात्पर्य यह था कि उनके हृदय में दशविध लीलाओं की स्थिति हो चुकी थी और उन्हीं लीलाओं की अनेक भाव-तरंगों को सूरदास ने अपने असंख्य पदों में व्यक्त किया है। ये पद संतप्त जीवों को सदा शांति देने वाले हैं।

महाप्रभु जी के इस मंगलाचरण से लीला-समुद्र वाली बात की पुष्टि होती है-

"नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनं।
लक्ष्मी सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥"

महाप्रभु जी इस मंगलाचरण में लीलाओं की उपमा क्षीर समुद्र से देते हैं। इस अनंत लीला रूपी समुद्र की स्थापना महाप्रभु ने भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका और समस्त भागवत के सार समुच्चय स्वरूप "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के यथार्थ ज्ञान द्वारा सूरदास के हृदय में की थी। इसी से वे "सागर" हो गये थे। महाप्रभु जी द्वारा सूरदास को "सूरसागर" कहने का यह अभिप्राय था। बाद में यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि सूरदास की रचनाएँ भी उक्त नाम से प्रसिद्ध हो गयीं।

महाप्रभु जी द्वारा 'सागर' कहने पर सूरदास अपनी दीनता दिखलाते थे, जिसका उल्लेख उनकी निम्न रचना में इस प्रकार हुआ है—

हैं हरि मो सौं अति पापी।
सागर सूर बिकार जल भर्यौ, बधिक अजामिल बापी॥

अष्टछाप की स्थापना—

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन का जो 'मंडान' प्रचलित किया था, उसके सर्व प्रथम नियमित कीर्तनकार सूरदास थे; उनके पश्चात् परमानंददास हुए। कुंभनदास यद्यपि सूरदास से भी पूर्व कीर्तन करते थे, किंतु वे गृहस्थ होने के कारण नियमित रूप से अपना समय देने में असमर्थ थे। इस प्रकार महाप्रभु जी के समय में सूरदास एवं परमानंददास नियमित रूप से श्रीनाथ जी की सभी झाँकियों में कीर्तन करते थे और कुंभनदास अपने अवकाशानुसार उनको सहयोग देते थे। महाप्रभु जी के पश्चात्

गोपीनाथ जी के समय में भी यही क्रम चलता रहा। गो० विट्ठलनाथ जी के समय में इस कीर्तन-प्रणाली को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया गया; और श्रीनाथ जी की आठों समय की झाँकियों के पृथक् पृथक् कीर्तन-कार नियत किये गये। उस समय तक सर्वोच्च श्रेणी के कई अन्य कीर्तनकार भी संप्रदाय में सम्मिलित हो चुके थे, अतः गो० विट्ठलनाथ जी ने संप्रदाय के प्रमुख आठ कीर्तनकारों को श्रीनाथ जी के मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन करने को नियत किया। उनमें से सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और कृष्णदास—ये चार महाप्रभु जी के सेवक थे तथा छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास—ये चार गोसाईं जी के सेवक थे।

गो० विट्ठलनाथ जी ने श्री गोपीनाथ जी का निधन होते ही सं० १६०० में एक ब्रजयात्रा की थी। उसी समय उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर की सेवा का विस्तार करने की इच्छा प्रकट की, किंतु उसमें द्रव्य की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने उसी वर्ष गुजरात का प्रथम 'प्रदेश' किया। उस 'प्रदेश' में प्राप्त समस्त द्रव्य उन्होंने श्रीनाथ जी के अर्पण कर दिया, जिससे व्यवस्थित रूप में सेवा का विस्तार किया गया। यह कार्य सं० १६०१ से सं० १६०२ में हुआ था।

सेवा के भोग, राग और शृंगार प्रमुख अंग हैं। गो० विट्ठलनाथ जी ने उक्त तीनों अंगों को व्यवस्थित एवं विस्तृत किया था। सेवा का रागात्मक अंग कीर्तन है, जिसका विस्तार अनेक राग-रागनी और वाद्य यंत्रों के साथ किया गया। श्रीनाथ जी के आठ समय के दर्शनों के आठ प्रमुख कीर्तनकार थे, जो 'अष्टछाप' अथवा 'अष्ट काव्य वारे' कहलाते थे। इन कीर्तनकारों में सूरदास प्रमुख थे।

अनुसंधान से ज्ञात होता है कि नंददास के अतिरिक्त 'अष्टछाप' के अन्य सात कवि सं० १६०२ तक श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में उपस्थित हो चुके थे। नंददास सं० १६०७ के लगभग गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हुए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि वे सेवक होने के अनंतर कुछ समय तक ब्रज में रह कर बाद में अपने जन्म-स्थान रामपुर में चले गये थे और सं० १६२० के पश्चात् वे स्थायी रूप से गोवर्धन में आकर रहने लगे थे†। उस समय वे अपनी काव्य-संगीत विषयक योग्यता के कारण अष्टछाप में भी सम्मिलित किये गये। इससे पूर्व अष्टछाप के आठवें कीर्तनकार

† इसका विस्तार पूर्वक कथन आगामी पृष्ठों में किया गया है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवक विष्णुदास छीपा थे। यही कारण है कि श्री द्वारिकानाथ जी महाराज उपनाम 'द्वारिकेश' कृत छप्पय में नंददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम मिलता है†। जब नंददास दुबारा ब्रज में आये, तब विष्णुदास छीपा अत्यंत वृद्ध होने के कारण गोसाईं जी के द्वार-रक्षक बनाये गये और नंददास उनके स्थान पर श्रीनाथ जी के कीर्तनकार नियत किये गये।

श्रीनाथ जी की अनन्य भक्ति के कारण अष्टछाप के आठों कवियों को अपने इष्टदेव का साक्षात्कार भी प्राप्त था। वार्ता में लिखा है कि स्वयं श्रीनाथ जी सखा भाव से उनके साथ खेलते थे। इन कारणों से वे 'अष्टसखा' के नाम से भी प्रसिद्ध हुए और श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके सखात्व के नाम भी निश्चित किये गये। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने अपने सखाओं को निम्न नामों से संबोधित किया है—

हे कृष्ण स्तोक, हे अंशो, श्रीदामन सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ‡॥

उपर्युक्त एकादश सखाओं में कृष्ण से ऋषभ तक के आठ नाम सूरदास आदि आठों भक्त कवियों के माने गये हैं। इन आठों में सूरदास मुख्य थे, अतः उनका नाम 'कृष्ण' सर्वथा उचित भी था। सूरदास की रचनाओं में जो 'सूरस्याम' नाम की छाप मिलती है, उसका कारण भी उनका यह 'कृष्ण' नाम ही ज्ञात होता है।

अष्टछाप के कवियों का पारस्परिक संबंध—

यद्यपि 'अष्टछाप' में सूरदास को प्रधानता दी गयी है, तथापि वे आठों महानुभाव एक दूसरे के प्रति अत्यंत आदर और नम्रता का भाव रखते थे। भावप्रकाश वाली वार्ता से ज्ञात है कि सूरदास कभी-कभी परमानंददास से मिलने उनकी कुटिया पर जाया करते थे और उनसे संप्रदायिक रहस्यों के संबंध में बातचीत करते थे‡। इसी प्रकार परमानंददास एवं कुंभनदास का परस्पर मिलना और उनका कृष्णदास अधिकारी के पास जाना भी वार्ता से सिद्ध है°।

---

† बंबई से प्रकाशित "श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता"

‡ श्री मद्भागवत, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध, अध्याय २२

‡ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता पृ० ५१

° चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट०वार्ता पृ० १२१

इससे ज्ञात होता है कि वे परमोच्च श्रेणी के संत होने के कारण अत्यंत नम्र भाव रखते थे और उनमें बड़प्पन का लेश मात्र भी अभिमान नहीं था।

सूरदास जहाँ संत स्वभावानुसार अत्यंत विनम्र थे, वहाँ वे स्पष्टवादी भी थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के भावापहरण के कारण कृष्णदास अधिकारी को एक वार टोका भी था‡।

ऐसा ज्ञात होता है कि सूरदास और नंददास का घनिष्ट संबंध था। वार्ता में लिखा है कि नंददास को सांप्रदायिक ज्ञान की शिक्षा सूरदास से प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त नंददास की रचनाओं में सूरदास के भावों की स्पष्ट छाया दिखलायी देती है, किंतु वार्ता से यह ज्ञात नहीं होता कि कृष्णदास अधिकारी की तरह नंददास को भी सूरदास ने कभी टोका हो। इसलिए यह अनुमान होता है कि नंददास ने सांप्रदायिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि काव्य विषयक ज्ञान भी किसी रूप में सूरदास से ही प्राप्त किया था।

अकबर से भेंट—

"चौरासी वार्ता" में सूरदास और अकबर की भेंट का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इस भेंट का विस्तारपूर्वक वर्णन 'अष्टसखान की वार्ता' में किया गया है*। इससे ज्ञात होता है कि तानसेन से सूरदास का एक पद सुनने पर अकबर ने सूरदास से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। सूरदास से मिलने की उत्सुकता में अकबर ने अपने सेवकों को उनकी खोज के लिए गोवर्धन भेजा, किंतु वहाँ ज्ञात हुआ कि सूरदास मथुरा में हैं। अंत में सूरदास और अकबर की भेंट हुई। अकबर के कहने पर सूरदास ने 'मना रे! तू कर माधौ सों प्रीत' नामक जिस उपदेशात्मक पद का गायन किया था, वह 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्राप्त है।

सूरदास का अलौकिक गायन सुन कर अकबर बड़ा प्रसन्न हुआ। वार्ता में लिखा है कि जब अकबर ने उनसे अपना यश वर्णन करने को कहा तो सूरदास ने निम्न लिखित पद का गायन किया—

> नाहिंन रह्यौ मन में ठौर।
> नंदनंदन अछत कैसै आनिए उर और ?
> स्याम गात, सरोज आनन, ललित अति मृदु हास।
> 'सूर' ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

‡ चौरासी वैष्णवन की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में अष्ट० वार्ता पृ० ११५

* चौरासी वै० की वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्टसखान की वार्ता पृ०' १४

उक्त पद के गायन से सूरदास ने अकबर को बतला दिया कि उनके हृदय में भगवान् श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के लिए स्थान नहीं है, अतः उनके द्वारा किसी व्यक्ति का यश-वर्णन करना भी संभव नहीं है। सूरदास की इस सारगर्भित स्पष्टोक्ति को सुन कर अकबर चुप हो गया, किंतु उपर्युक्त पद की अंतिम पंक्ति के संबंध में उसने सूरदास से प्रश्न किया—"सूरदास जी! तुम्हारे नेत्र तो हैं ही नहीं, फिर उनको रूप की प्यास किस प्रकार हो सकती है?" वार्ता में लिखा है कि अकबर के इस प्रश्न का सूरदास ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु अकबर जैसे गुणग्राहक और साधुसेवी नरेश को इस संबंध में स्वतः समाधान होगया।

अकबर से सूरदास की भेंट संबंधी वार्ता के उपर्युक्त कथन की पुष्टि सूरदास की रचना के अंतःसाक्ष्य अथवा किसी बहिःसाक्ष्य से भी अभी-तक स्पष्ट रूप से नहीं हो सकी है, किंतु कुंभनदास और हरिदास आदि से अकबर का मिलना प्रमाणित है, इसलिए सूरदास जैसे महान् कवि और गायक से भी अकबर का मिलना सर्वथा संभव है। अकबर संगीत का प्रेमी और साधु-संतों का आदर करने वाला गुणग्राही नरेश था। सूरदास अपने समय के विख्यात कवि, गायक और महात्मा थे, अतः अकबर द्वारा उनसे मिलने की बात निराधार नहीं हो सकती है।

सूरदास और अकबर का मिलन हमारे अनुमान से सं० १६२३ में मथुरा में हुआ था। सांप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि सं० १६२३ की फाल्गुन कृ० ७ को गो० विट्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवर्धन से मथुरा में ले गये थे। उस समय श्रीनाथ जी की सेवा के लिए सूरदास भी मथुरा गये थे। उस अवसर पर श्रीनाथ जी २ माह २२ दिन पर्यंत मथुरा में रहे थे और उस अवधि में सूरदास को भी उनकी कीर्तन-सेवा करते हुए मथुरा में ही रहना पड़ा था।

अकबर सं० १६१३ में बादशाह हुआ था और सं० १६२१ में तानसेन उसके दरबार में आया था। सं० १६२३ में अकबर का मथुरा जाना इतिहास प्रसिद्ध है, अतः तानसेन की प्रेरणा से इसी संवत् में सूरदास का अकबर से मिलना सर्वथा संगत है; अतः सं० १६२३ में अकबर-सूरदास की भेंट होने का हमारा अनुमान भी प्रामाणिक सिद्ध होता है। डा० दीनदयाल गुप्त के मतानुसार यह भेंट मथुरा में सं० १६३६ के लगभग हुई थी†, किंतु उक्त संवत् में सूरदास का मथुरा में रहना प्रामाणित नहीं होता है, अतः इसका समय सं० १६३६ की अपेक्षा सं० १६२३ ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

† अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ २१८

सूर तुलसी मिलन —

वार्ता, भक्तमाल की टीका और मूल गुसाईं चरित में सूरदास और तुलसीदास की भेंट का उल्लेख किया गया है। वार्ता और भक्तमाल द्वारा इस भेंट का संवत् ज्ञात नहीं होता है, किंतु 'मूल गुसाईं चरित' में इसका संवत् १६१६ दिया गया है। 'मूल गुसाईं चरित' में लिखा है सं० १६१६ में श्री गोकुलनाथ जी ने सूरदास को कृष्ण-रंग में डुबो कर तुलसीदास से मिलने को भेजा था। चित्रकूट पर उनकी तुलसीदास से भेंट हुई। सूरदास ने तुलसीदास को स्वरचित सूरसागर दिखलाया और उसमें से दो पदों का गायन भी किया। इसके पश्चात् सूरदास ने तुलसीदास के चरणों में मस्तक नवाया और उनसे आशीर्वाद माँगा। सूरदास वहाँ पर सात दिन तक रहे। अंत में तुलसीदास ने गोकुलनाथ जी के नाम एक पत्र देकर उनको विदा किया‡।

'मूल गुसाईं चरित' का उपर्युक्त कथन सर्वथा इतिहास विरुद्ध है। सं० १६१६ में गोकुलनाथ जी प्रायः ८ वर्ष के बालक थे, अतः उनके द्वारा सूरदास का भेजा जाना असंभव है।

हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि गोवर्धन आने के पश्चात् सूरदास कभी--कभी गोकुल या मथुरा जाने के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं गये। ऐसी दशा में अपनी ८१ वर्ष की वृद्धावस्था में श्रीनाथ जी की सेवा छोड़ कर चित्रकूट जैसे सुदूर स्थान में उनका जाना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त सूरदास आयु में तुलसीदास से बड़े थे और उन्होंने काव्य-रचना भी तुलसीदास से बहुत पहले आरंभ कर दी थी। सं० १६१६ में सूरदास सहस्रों पदों की रचना कर चुके थे, जिनके कारण वे 'सागर' कहलाते थे। इसके विरुद्ध तुलसीदास ने उस समय तक 'रामचरित मानस' आदि अपने प्रमुख ग्रंथों की रचना का आरंभ भी नहीं किया था। ऐसी दशा में सूरदास का तुलसीदास के चरणों में नत--मस्तक होना भी असंगत कल्पना ज्ञात होती है। ऐसे ही कारणों से प्रायः समस्त प्रमुख विद्वानों ने 'मूल गुसाईं चरित' को अप्रामाणिक माना है। हम भी इसे अप्रामाणिक मानते हैं, अतः इसमें वर्णित सूर-तुलसी मिलन का वृतांत सर्वथा अग्राह्य है।

वार्ता में इस प्रसंगका संवत् नहीं दिया गया है, किंतु उसमें वर्णित घटनाओं की संगति से सूर-तुलसी मिलन और उसके काल की यथार्थता सिद्ध हो जाती है। वार्ता से ज्ञात होता है कि एक बार तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे। वे नंददास से परासोली में मिले*। परासोली

‡ मूल गुसाईं चरित, पृ० २६,३० *प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४४

सूरदास का निवास स्थान था। नंददास और सूरदास का जो काव्य-विषयक संबंध हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं, उसके कारण नंददास का सूरदास के यहाँ आना-जाना होता ही था, अतः परासोली में नंददास से मिलने पर तुलसीदास की सूरदास से भेंट होना सर्वथा संभव है। वार्ता और श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृतों से ज्ञात होता है कि उस समय नंददास अपने भाई तुलसीदास को गोकुल में भी ले गये थे। वहाँ पर उन दिनों गो० विट्ठलनाथ जी के पंचम पुत्र श्री रघुनाथ जी का विवाह हो रहा था†। रघुनाथ जी के विवाह का समय सं० १६२६ श्री गोकुलनाथ जी के स्फुट वचनामृतों की हस्त लिखित प्रति के निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है—

"ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हते। ता दिन श्रीरघुनाथ जी महाराज कौ विवाह हतौ। सो ठौर ठौर आनंद होय रह्यौ हतौ।···ता समें श्री रघुनाथ जी वर्ष पंद्रे के हते।"

रघुनाथ जी का जन्म सं० १६११‡ है। उपर्युक्त घटना के समय वे १५ वर्ष के थे, अतः उक्त घटना का समय सं० १६२६ निर्धारित होता है। ऐसी दशा में तुलसीदास के ब्रज-आगमन और उनके सूरदास से मिलने का समय भी सं० १६२६ ही सिद्ध होता है। सं० १६२० के पश्चात् नंददास गृहस्थ का त्याग कर विरक्त भाव से गोवर्धन में स्थायी रूप से रहने लगे थे, अतः सं० १६२६ में उनसे मिलने के लिए तुलसीदास का ब्रज में आना सर्वथा संभव है।

ब्रज में आने पर और वहाँ के वातावरण से प्रभावित होने पर तुलसीदास ने कुछ पदों की रचना भी की थी। वे पद उक्त घटना की स्मृति स्वरूप पुष्टि संप्रदाय के मंदिरों में परंपरा से गाये जाते हैं*। उक्त पद एवं कुछ अन्य

---

† १. प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग, पृ० ३४६

२. वार्ता साहित्य मीमांसा (गुजराती) पृ० ६ ‡ श्री वल्लभ वंशवृत्त

* १. बरनौं अवधि श्री गोकुल गाम।
उत बिराजत जानकी-वर, इतहिं स्यामा स्याम॥
भक्त हित श्री राम-कृष्ण सु धर्यौ नर अवतार।
दास 'तुलसी' दोऊ आसा, कोउ उबारो पार॥

२. श्री रघुनाथ राम अवतार।
जानकी जीवन सब जगवंदन कलिमद हरन उतारन भार॥
श्री गोकुल में सदा विराजो, बचन पीयूष काम निरवार।
'तुलसीदास' प्रभु धनुषबान धरो, चरनन देहुँ सीस तब डार॥

रचनाओं के कारण तुलसीदास का ब्रज में आना प्रामाणित होता है*। तुलसीदास कृत 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' ब्रजभाषा में लिखी हुई और ब्रज के भक्ति-भाव से अनुप्राणित रचनाएँ हैं। इनके कारण भी तुलसीदास का ब्रज में आना और पुष्टि संप्रदाय के भक्तों से किसी रूप में प्रभावित होना अवश्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनंतर हमारा मत है कि तुलसीदास सं० १६२६ में ब्रज में आये थे और उसी समय उनकी सूरदास से भी भेंट हुई थी।

गुरु–निष्ठा—

संसार के समस्त धर्म एवं संप्रदायों में अति प्राचीन काल से गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। आर्य शास्त्रों में तो गुरू को ईश्वर तुल्य बतलाया गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

भारतवर्ष के संत एवं भक्तों में तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़ कर बतलाया गया है। निम्न लिखित दोहा इसका प्रमाण है—

गुरु गोविंद दोनों खड़े, का के लागों पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दिये बताय॥

इस प्रकार की मान्यता का कारण यह है कि गुरु द्वारा ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे जीव अपना वास्तविक कल्याण कर सकता है। 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' यह कहावत इसीलिए लोक में चल पड़ी है। किंतु गुरु किस प्रकार का होना चाहिए, इसके संबंध में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का निम्न लिखित कथन विचारणीय है—

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादि रहितं नरम्।
श्री भागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्†॥

महाप्रभु जी ने गुरु के जो तीन लक्षण बतलाये हैं, वे सब स्वयं उनमें विद्यमान थे, इसीलिये सूरदास उनमें और हरि में कोई अंतर नहीं समझते थे।

---

* राधे–राधे रटत हैं, आक ढाक और कैर।
तुलसी या ब्रजभूमि में, कहा राम सों बैर॥

† निबंध श्लोक २२९

वार्ता में लिखे गये सूरदास के देहावसान संबंधी प्रसंग से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है* ।

सूरदास जिस प्रकार अपने दीक्षा-गुरु महाप्रभु जी को श्री हरि के रूप में देखते थे, उसी प्रकार उनके पुत्र गोसाईं जी को भी देखते थे। इसकी पुष्टि सूरदास की रचना और वार्ता के प्रसंगों से होती है। इसके अतिरिक्त वे महाप्रभु जी के पौत्रों का भी अत्यंत आदर करते थे, जैसा कि वार्ता में लिखित नवनीतप्रिय जी के शृंगार वाले प्रसंग से प्रकट है‡ ।

लोक-कल्याण की भावना—

वीतरागी भक्त जन लोक एवं वेद के बाह्य धर्मों के प्रति प्रायः उदासीन होते हैं। वे एकांत स्थान में आत्म-चिंतन करते हुए परमानंद का अनुभव करते रहते हैं। इस प्रकार वे अपनी आत्मा का कल्याण तो कर लेते हैं, किंतु लोक-कल्याण के कार्यों में उनसे कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। सूरदास परम विरक्त और परमोच्च श्रेणी के भक्त एवं संत होने के कारण ब्रह्मानंद में लीन तो रहते ही थे, किंतु वे लोक-कल्याणकारी कार्यों के प्रति भी उदासीन नहीं थे।

अपनी स्वामी अवस्था से ही उनके पास अनेक जिज्ञासुओं की भीड़ लगी रहती थी। सूरदास अपने सदुपदेश द्वारा उनको सन्मार्ग पर लाते थे। वल्लभ संप्रदाय के सेवक होने के अनंतर उनकी प्रकृति में दैन्य भाव की विशेष वृद्धि हो गयी थी, फिर भी वे अपने नम्र उपदेशों द्वारा अनेक व्यक्तियों का कल्याण करते थे।

वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने अपने उपदेश से चौपड़ खेलते हुए कुछ व्यक्तियों और गोपालपुर निवासी एक द्रव्यासक्त वैश्य को सन्मार्ग दिखलाया था† ।

उपस्थिति-काल—

सूरदास की विशाल-काय काव्य-रचना और उनके काव्य के अंतःसाक्ष्य से यह भली भाँति ज्ञात होता है कि वे बहुत बड़ी आयु तक जीवित रहे थे। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से उनकी वृद्धावस्था की पुष्टि होती है।

---

* चौरासी वार्ता (अग्रवाल प्रेस) में 'अष्टसखान की वार्ता' पृ० २६, ३०

‡ „ „ „ पृ० १७, १८

† „ „ „ पृ० १९, २०

सूरदास के पदों की निम्न लिखित पंक्तियाँ देखिये—

१. तीनों पन में ओर निबाही, इहै स्वाँग को काछे।
 'सूरदास' कों इहै बड़ो दुख, परत सबन के पाछे॥ १, ७७

२. सबै दिन गए विषय के हेत।
 तीनों पन ऐसे ही बीते, केस भए सिर स्वेत॥ १, १७५

३. बिनती करत मरत हौं लाज।
 नख-सिख लों मेरी यह देही, है पाप की जहाज॥
 और पतित न आवें आँख तर, देखत अपनौ साज।
 तीनों पन भरि बहोरि निबाह्यौ, तोउ न आई लाज॥

उपर्युक्त पदों से ज्ञात होता है कि सूरदास अपने तीनों पन—बाल्य, युवा एवं वृद्धावस्था को पार कर अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। सूरदास अत्यंत वृद्धावस्था तक जीवित थे, यह निश्चित है; किंतु उनकी स्थिति इस भूतल पर किस संवत तक रही, यह विचारणीय है। इसके विवेचन के लिए हम सूरदास की रचना के कुछ अंतःसाक्ष्य उपस्थित करते हैं और पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से उनकी संगति मिलाते हुए उनके उपस्थिति-काल पर भी विचार करते हैं।

सूरदास कृत 'छप्पन भोग' का एक पद उपलब्ध है, जो इस प्रकार है—

भोजन करत गोवर्धन धारी।
छप्पन भोग, छतीसों व्यंजन परोस धरे ललिता री।
अचवन कों लाई चंद्रावलि, भरि यमुनोदक झारी॥
सुगंध बीड़ी आरोगावति, बिसाखा अँग-अँग फूलत भारी।
मुकुर दिखावति चंपकलता, 'सूरदास' बलिहारी॥

इस पद में श्रीनाथ जी के छप्पन भोग का वर्णन है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि यह छप्पन भोग सं० १६१५ की मार्गशीर्ष शु० १५ को हुआ था। इसकी स्मृति में तब से अब तक बराबर प्रति वर्ष मार्गशीर्ष शु० १५ को श्रीनाथ के यहाँ छप्पन भोग का मनोरथ होता है। इससे ज्ञात होता है कि सं० १६१५ तक सूरदास उपस्थित थे।

इसके अनंतर 'रथ यात्रा' के निम्न लिखित पद पर विचार कीजिए—

तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा।
'सूरदास' गोकुल के बासी, प्राननाथ बर पावै॥

इस पद के अंतःसाक्ष्य की संगति बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से मिलाने पर सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ पर्यंत अवश्य निश्चित होती है। सांप्रदायिक इतिहास से प्रकट है कि बल्लभ संप्रदाय में रथयात्रा का उत्सव सं० १६१७ से आरंभ हुआ है। इससे पहले संप्रदाय में रथोत्सव नहीं होता था। यह उत्सव सर्व प्रथम श्री नवनीत प्रिय जी का अड़ैल में हुआ था।

सं० १६१६ में जब अड़ैल में राजकीय उपद्रव की आशंका हुई, तब गो० विट्ठलनाथ श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप (मूर्ति) और अपने कुटुंब को लेकर रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा नामक स्थान में चले गये, जहाँ वे प्रायः दो वर्ष तक रहे। गढ़ा वर्तमान मध्य प्रांत के जब्बलपुर नगर के निकट इतिहास-प्रसिद्ध रानी दुर्गावती की राजधानी था। गो० विट्ठलनाथ जी की पत्नी रुक्मिणी जी का देहांत सं० १६१६ में हो चुका था। इनसे गोसाईं जी को १० संतान—६ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ थीं। रानी दुर्गावती के आग्रह से सं० १६२० की अक्षय तृतीया के दिन सजातीय कन्या पद्मावती के साथ गोस्वामी जी को अपना दूसरा विवाह करना पड़ा। सं० १६२१ में जब गढ़ा में भी रानी दुर्गावती और अकबर के युद्ध की संभावना हुई, तब विट्ठलनाथ जी गढ़ा से प्रयाग होते हुए सं० १६२२ में मथुरा आ गये। मथुरा से वे गोकुल गये, किंतु वहाँ पर जन्माष्टमी के उत्सव पर दही दूध के छींटों के कारण गोसाईं जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी की महावन के भोमियाओं से काफी कहा-सुनी हो गयी। उस समय गोसाईं जी गोवर्धन में थे। इस उपद्रव का समाचार सुन कर वे गोवर्धन से गोकुल आये और उपद्रव अधिक न बढ़े, इसलिए अपने कुटुंब सहित गोकुल से फिर मथुरा आ गये और रानी दुर्गावती द्वारा निर्मित भवन में रहने लगे। सं० १६२८ में राजा बीरबल की सहायता से गोसाईं जी को जब अकबर द्वारा गोकुल बसाने की आज्ञा प्राप्त हुई और वहाँ की सुरक्षा का भी यथोचित प्रबंध हो गया, तब गोसाईं जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने।

उपर्युक्त पद के 'सूरदास गोकुल के बासी प्राननाथ वर पावे' वाले कथन से यह सिद्ध होता है कि तब तक गोसाईं विट्ठलनाथ गोकुल में बस चुके थे। यह उल्लेख सं० १६२२ से भी संबंधित हो सकता है और सं० १६२८ से भी; अतः उपर्युक्त उल्लेख के कारण सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२२ तक अवश्य मानी जा सकती है।

अकबर से सूरदास की भेंट का समय भी उनके उपस्थिति-काल पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। हमने गत पृष्ठों में इस भेंट का समय सं०१६२३ निश्चित किया है, अतः सूरदास की उपस्थिति सं० १६२३ पर्यंत मानी जा सकती है।

'अष्टसखान की वार्ता' से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन के लिए जब कुंभनदास एवं परमानंददास का 'ओसरा' आता था, तब कभी-कभी सूरदास नवनीतप्रिय जी के मंदिर में कीर्तन करने के लिए गोकुल जाया करते थे। उस समय ठाकुर जी का जैसा शृंगार होता था, उसका सूरदास नेत्र विहीन होते हुए भी यथावत् वर्णन करते थे। एक बार गुसाईं जी के पुत्रों ने सूरदास की परीक्षा के लिए नवनीतप्रिय जी को वस्त्र न पहरा कर केवल मोतियों का शृंगार किया और सूरदास को बतलाए बिना उनसे कीर्तन करने को कहा। सूरदास जी ने उस समय जिस पद का गायन किया था, उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है—

देखे री हरि नंगम नंगा।
जल सुत भूषन अंग विराजति, बसन हीन छवि उठत तरंगा॥

उपर्युक्त उल्लेख से सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६२८ पर्यंत अवश्य मानी जा सकती है, क्यों कि इसी संवत् में गुसाईं विट्ठलनाथ जी स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे, तभी नवनीतप्रिय जी का मोतियों का शृंगार और 'ओसरा' के अनुसार सूरदास द्वारा उनके कीर्तन करने का अवसर आया था।

अष्टछाप के कवि कृष्णदास रचित बसंत का एक पद नीचे दिया जाता है। इससे सूरदास की उपस्थिति कम से कम सं० १६३८ तक मानी जा सकती है। वह पद इस प्रकार है—

(राग बसंत)

खेलत बसंत वर विट्ठलेश राय। निज सेवक सुख देखत आय।
श्री गिरिधर राजा बुलाय। श्री गोविंदराय पिचकारी लाय॥
श्री बालकृष्ण छवि कही न जाय। श्री गोकुलनाथ लीला दिखाय।
रघुनाथलाल अरगजा लाय। श्री जदुनाथ चोबा मँगाय॥
घनस्याम धाय फेंटन भराय। सब बालक खेलत एक दाय।
तहाँ सूरदास नाँचत है आय। परमानंद घोरि गुलाल लाय॥

चत्रभुज प्रभु केसर माँट भराय। छीतस्वामी हु बूका फेंके जाय।
नंददास निरखि छबि रहत आय। गावै कुंभनदास बीना बजाय॥
तब गोविंद बोलि छिरकें आय। कोउ नाँचत देइ दसा भुलाय।
सब बालक हो हो बोलें जाय। उड्यौ अबीर गुलाल धुंधर फराय॥
पिचकाई इत उत छींटे जाय। कोउ फेंकत फूलन अपने भाय।
कोउ चोवा ले छिरके बनाय। बाजें ताल मृदंग उपंग भाय॥
बिच बाजत मुहचंग मुरली जाय। कोऊ डफ ले महुवरि सों मिलाय।
एक नौंवत पग नूपुर बजाय। बाढ्यौ सुख समुद्र कछू कह्यौ न जाय॥
सब बालक भीने अंग चुवाय। भक्तन घर घर सुख ही छाय।
सोभा कहे कहा कवि हू बनाय। यह सुख सब सेवक दिखाय॥
सुर कुसुमन बरखत आय आय। सब गावत मीठी गारि भाय।
सब अपने मनोरथ करत आय। तहाँ 'कृष्णदास' बलिहारि जाय॥

उक्त पद में सूरदास सहित अष्टछाप के आठों कवि, गोसाईं विट्ठलनाथ जी एवं उनके सातों बालकों का नामोल्लेख हुआ है। गोसाईं जी के सप्तम पुत्र घनश्याम जी का जन्म सं० १६२८ निश्चित है†। बसंत खेलते समय उनकी आयु कम से कम १० वर्ष की मानी जाय, तो सं० १६३८ तक सूरदास की उपस्थिति सिद्ध होती है।

अब सूरदास कृत निम्न रचना के कारण उनकी उपस्थिति सं० १६४० के लगभग मानी जा सकती है—

भोजन भयौ भाँवतो मोहन। तातौ ई जेंय जाहुगे गोहन॥
खीर खाँड़ खीचरी सँवारी। मधुर महेर अरु गोपिन प्यारी॥
राय भोग लीनों भात पसाय। मूंग ढरहरी हींगु लगाय॥
सद माखन तुलसी दै छायौ। घृत सुवास कचौरनि नायौ॥
पापर बरी अचार परम रुचि। अद्रक अरु निंबुअनि ह्वै हैं रुचि॥

× × ×

'सूरदास' देख्यौ गिरिधारी। बोलि दई हँसि झूँठनि थारी॥
वह जेंवनार सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभय पद पावै॥

† श्री बल्लभ वंशवृक्ष

उपर्युक्त रचना में 'राजभोग' में 'छप्पन भोग' की भावना की गयी है। सांप्रदायिक इतिहास के अनुसार इस का समय सं० १६४० वि० है। उस वर्ष में गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता में सब निधि स्वरूपों को एकत्रित कर गोकुल में राजभोग करते हुए छप्पन भोग की भावना मात्र की थी।

छप्पन भोग की भावना करने का कारण यह था कि जब सं० १६१५ में गुसाईं जी ने श्रीनाथ जी का छप्पन भोग किया था, तब उन्होंने अपने स्थायी निवास अड़ैल स्थित श्री नवनीतप्रिय जी का भी छप्पन भोग करने का निश्चय किया था, किंतु कई असुविधाओं के कारण उनकी मनोभिलाषा तत्काल पूर्ण न हो सकी। सं० १६१५ के अनंतर गुसाईं जी जगदीश और गौड़ देश की यात्रा को चले गये। वहाँ से वापिस आने पर सं० १६१६ में उनकी प्रथम पत्नी रुक्मिणी जी का देहावसान हो गया। इसके पश्चात् वे गढ़ा और गढ़ा से मथुरा होकर गोकुल आये, किंतु उनको फिर सं० १६२२ में मथुरा में रहना पड़ा। सं० १६२३ में वे गुजरात की यात्रा करने गये। इसके बाद सं० १६२८ में वे स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे, किंतु पुत्रों के यज्ञोपवीत, पुत्र-पुत्रियों के विवाह और सभी बालकों के पृथक्-पृथक् निवास स्थान बनवाने में उनको यथेष्ट व्यय करना पड़ा। इसी बीच में उनको दो वार द्वारिका जैसे सुदूर प्रदेश की यात्रा भी करनी पड़ी। सं० १६३८ के पश्चात् उन्होंने अपने सातों पुत्रों का बँटवारा कर दिया। इस प्रकार गृहस्थ के कार्यों से निश्चिंत होकर और अपना अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने अपना पूर्व मनोरथ पूर्ण करने विचार किया, किंतु उस समय उन पर कुछ ऋण भी हो गया था, अतः वे अपनी इच्छानुसार छप्पन भोग की सांगोपांग पूर्ति नहीं कर सकते थे; इसलिये उन्होंने श्री नवनीतप्रिय जी की प्रधानता में सब निधि-स्वरूपों को एकत्रित कर राजभोग में ही छप्पन भोग की भावना द्वारा अपने पूर्व मनोरथ की पूर्ति की थी। यदि उस उत्सव को छप्पन भोग की प्रणाली से यथावत् किया जाता, तो उसमें द्वादश मास के सभी उत्सवों का करना भी आवश्यक हो जाता, जो कि उस समय की स्थिति के अनुसार संभव नहीं था; अतः गुसाईं जी ने सब प्रकार की सामिग्री राजभोग में 'अरोगा' कर छप्पन भोग की भावना मात्र की थी। सूरदास ने इसीलिए इस मनोरथ को छप्पन भोग का नाम न देकर 'जेंवनार' कहा है; जब कि माणिकचंद, भगवानदास आदि गोसाईं जी के अन्य सेवकों ने अपने-अपने पदों में इसे छप्पन भोग ही कहा है।

उक्त पद के 'सूरदास देख्यो गिरधारी' वाला कथन श्री नवनीतप्रिय जी के निकट भावना से पधराये हुए श्रीनाथ जी के स्वरूप का सूचक है। इससे 'भावना' वाले कथन की भी पुष्टि होती है। इस उल्लेख के कारण सूरदास जी की उपस्थिति सं० १६४० के आस-पास सिद्ध हो जाती है। चतुर्भुजदास कथित 'षट ऋतु की वार्ता‡' में भी श्रीनाथ जी के साथ सातों स्वरूपों के प्रथम अन्नकूट का जो उल्लेख हुआ है, उसका समय भी सं० १६४० ही आता है। उस अवसर पर सूरदास जी की उपस्थिति का भी उल्लेख हुआ है, अतः इससे भी सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० तक मानी जा सकती है।

इस प्रकार अंतःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यों से सूरदास का उपस्थिति-काल सं० १६४० पर्यंत सिद्ध होता है।

देहावसान—

अपना अंतिम समय निकट जान कर एक दिन सूरदास श्रीनाथ जी की मंगला-आरती कर परासोली चले गये। वहाँ पर पहुँच कर श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा को साष्टांग प्रणाम कर वे उसके सन्मुख मुख कर एक चबूतरे पर लेट गये। अंत में सब ओर से चित्त की वृत्ति को हटाकर वे श्रीनाथ जी एवं गुसाईं जी का ध्यान करते हुए अपने अंतिम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर श्रीनाथ जी की शृंगार-झाँकी के अवसर पर सूरदास को अनुपस्थित देख कर गुसाईं विट्ठलनाथ जी को उनके विषय में शंका हुई। सूरदास का यह नियम था कि वे श्रीनाथ जी के शृंगार के समय प्रति दिन जगमोहन में उपस्थित होकर कीर्तन किया करते थे। गुसाईं जी के सेवकों ने उनको बतलाया कि आज प्रातःकाल की मंगला आरती के दर्शन कर और समस्त वैष्णवों को भगवत्-स्मरण कराकर सूरदास परासोली चले गये हैं। सूरदास का अंतिम समय निकट जान कर गुसाईं जी ने समस्त वैष्णवों से कहा—"सूरदास पुष्टि मार्ग के जहाज हैं। अब उनके जाने का समय आ गया है। आप सब लोग उनके पास जाओ, और उनसे जो लेना हो, सो लेलो। हम भी श्रीनाथ जी के राजभोग की आरती के उपरांत वहीं पर आते हैं।"

यह सुन कर गोसाईं जी के सेवक परासोली गये। उन्होंने वहाँ पर सूरदास को अचेतावस्था में पाया। कुछ समय पश्चात् गुसाईं विट्ठलनाथ भी वहाँ पर पहुँच गये। उनके साथ रामदास, कुंभनदास, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास आदि कई वैष्णव भी थे।

‡ संदेश प्रेस, अहमदाबाद से प्रकाशित (पृ० ४३)

गोसाईं जी ने सूरदास का हाथ पकड़ कर कहा—"सूरदास जी ! क्या हाल है ?" गोसाईं जी के शब्द सुन कर सूरदास ने तत्काल नेत्र खोल दिए और दंडवत करते हुए उनसे कहा—"महाराज ! आप आ गये । मैं तो आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था । आपने बड़ी कृपा की ।"

इसके अनंतर कुछ भगवत्-चर्चा करते हुए उन्होंने निम्न लिखित पद कह कर अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया—

खंजन नैंन रूप-रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि-पलटि ताटंक फँदाते ।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

सूरदास के देहावसान की निश्चित तिथि का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता है । हमारे अनुमान से उनका देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था । पुष्टि संप्रदाय के कुछ विद्वान और हिंदी साहित्य के अनेक लेखकों ने उनके देहावसान का संवत् १६२० लिखा है, किंतु उनका यह मत भ्रमात्मक है ।

गत पृष्ठों में हम सूरदास की उपस्थिति सं० १६४० पर्यंत सिद्ध कर चुके हैं । ऐसी दशा में सं० १६२० में उनका देहावसान होना सर्वथा असंभव है । वार्ता के उल्लेखानुसार सूरदास का देहावसान गोसाईं विट्ठलनाथ जी की उपस्थिति में हुआ था । सांप्रदायिक इतिहास से सिद्ध है कि सं० १६१६ से १६२१ तक गोसाईं जी ब्रज में उपस्थित नहीं थे । सं० १६२० में वे रानी दुर्गावती की राजधानी गढ़ा में थे । ऐसी दशा में सं० १६२० में सूरदास का देहांत परासोली में गो० विट्ठलदास की उपस्थिति में कैसे संभव हो सकता है !

गो० विट्ठलनाथ जी के देहावसान का सं० १६४२ निश्चित है । इसके साथ ही सं० १६३८ के पश्चात् तक हम सूरदास की उपस्थिति प्रमाणित कर चुके हैं । ऐसी दशा में उनके देहावसान का समय सं० १६३८ से १६४२ के बीच में होना चाहिए ।

'अष्टसखान की वार्ता' प्रसंग १० में श्री हरिराय जी ने बतलाया है जिस प्रकार भगवान् की श्री कृष्ण अपने भक्त यदुवंशियों का संसार से तिरोधान कराकर आप वैकुंठ में पधारे, इसी प्रकार श्री आचार्य जी महाप्रभु अंतर्ध्यान हो गये और गुसाईं जी को अभी होना शेष है । श्री गोसाईं जी भगवदीय जनों को नित्य लीला में स्थापित करने के अनंतर ही पधारेंगे ।

इस उल्लेख से सिद्ध है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी के निधन से कुछ समय पूर्व ही सूरदास का देहावसान हुआ होगा। गोसाईं जी का निधन-काल सं० १६४२ निश्चित है, अतः सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग सिद्ध होता है। गत पृष्ठों में बतलाए हुए उनके उपस्थिति-काल से भी इस संवत् की संगति बैठती है, अतः सूरदास का निधन संवत् १६४० प्रमाणित होता है।

तृतीय परिच्छेद

ग्रंथ-निर्णय

*

सूरदास के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ—

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट, प्राचीन पुस्तकालयों के अनुसंधान और आधुनिक विद्वानों के कथनों के अनुसार सूरदास के नाम से अधिक से अधिक निम्न लिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—

१. सूरसारावली, २. साहित्यलहरी, ३. सूरसागर,
४. भागवत भाषा, ५. दशमस्कंध भाषा. ६. सूरसागर-सार,
७. सूर रामायण, ८. मान लीला, ९. राधारसकेलिकौतुहल
१०. गोवर्धन लीला (सरस लीला) ११. दान लीला,
१२. भँवरगीत, १३. नाग लीला, १४. ब्याहलो,
१५. प्राणप्यारी, १६. दृष्टिकूट के पद, १७ सूरशतक,
१८. सूरसाठी, १९. सूरपचीसी, २०. सेवाफल,
२१. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद, २२. हरिवंश टीका(संस्कृत)
२३. एकादशी माहात्म्य, २४ नलदमयंती, २५. रामजन्म

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कांकरौली सरस्वती भंडार में सूरदास कृत स्वरूप-वर्णन, चरण चिन्ह वर्णन और दो बारहमासी भी मिलती हैं, जिन्हें हम स्फुट पदों के अंतर्गत मान लेते हैं।

उपर्युक्त पच्चीस ग्रंथों में संख्या २२ से २५ तक की रचनाएँ निश्चित रूप से अष्टछाप के कवि सूरदास कृत नहीं हैं। संख्या १ से २१ तक की रचनाएँ हमारे सूरदास की ही हैं। सं० २२ से २५ तक की रचनाओं को हम निम्न-लिखित कारणों से प्रक्षिप्त मानते हैं—

२२ हरिवंशटीका—यह एक संस्कृत रचना है। नाम से ज्ञात होता है कि यह हरिवंश पुराण की टीका होगी। "कैटेलोगस कैटेलोग्रम" में इसका सूरदास कृत होना लिखा है।

हमारे सूरदास ने संस्कृत में भी कोई रचना की थी ऐसा किसी भी सूत्र से आज तक ज्ञात नहीं हो सका है। प्रत्युत् उन्होंने श्रीमद्भागवत आदि संस्कृत

ग्रंथों को भाषा में ही गाया है। इससे यह संस्कृत टीका किसी अन्य सूरदास, संभवतः बिल्वमंगल सूरदास, की रचना हो सकती है।

२३. एकादशी माहात्म्य—इसका उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की १६१७–१६ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (बी) में हुआ है। इसके प्रारंभ में गणेश, शारदा और अन्य देवों की वंदना प्राप्त है। फिर राजा हरिश्चंद्र की प्रशंसा और एकादशी माहात्म्य संबंधी अन्य कथाएँ हैं। यह सारा ग्रंथ अवधी भाषा में दोहा–चौपाई छंदों में लिखा हुआ है।

भाषा और सांप्रदायिक सिद्धांतों के आधार पर यह रचना अष्टछाप के सूरदास की सर्वथा नहीं हो सकती। सूरदास प्रारंभ से ही ब्रजभाषा में रचना करते थे, अतः यह ग्रंथ भी किसी अन्य सूरदास का होना चाहिए।

२४. नल-दमयन्ती—इस ग्रंथ का उल्लेख सर्व प्रथम बाबू राधाकृष्ण दास ने सूर की जीवनी में किया है। उसी के आधार पर मिश्रबंधु आदि हिंदी के सभी लेखकों ने इसको संदिग्ध रूप से सूरदास कृत माना है। अष्टछाप के सूरदास ने कभी मानव-काव्य भी रचा था, ऐसा किसी सूत्र से ज्ञात नहीं होता, अतः इसे भी हम प्रक्षिप्त मानते हैं।

डा० मोतीचंद एम० ए०, पी० एच० डी० ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में कवि सूरदास कृत 'नलदमन' काव्य पर एक लेख लिखा था। यह प्रेम-काव्य ग्रंथ उनको बंबई के "प्रिंस ऑफ वेल्स म्युज़ियम" में मिला था। इसके कर्ता सूरदास ने इस ग्रंथ के अंत में अपना वंश परिचय भी दिया है। इसके अनुसार वे गुरदासपुर जिला कलानौर के कम्बू गोत्र के किसी गोवर्धनदास के पुत्र थे। इस रचना का संवत् १७१४ वि० है।

यदि यह "नलदमन" काव्य उक्त "नल-दमयन्ती" ग्रंथ ही है, तो इसका अष्टछाप के सूरदास कृत न होना विशेष स्पष्ट हो जाता है।

२५. रामजन्म—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १६१७–१६ ई० नं० १८७ (ए) में इसे भी सूरदास कृत लिखा गया है। ग्रंथ में गणपति, राम आदि की वंदना की गयी है, जिससे इसका अष्टछाप के सूरदास कृत होना नहीं माना जा सकता, अतः यह भी किसी अन्य सूरदास का ही सिद्ध होता है। डा० दीनदयालु गुप्त के मतानुसार एकादशी माहात्म्य और रामजन्म का कर्ता एक हो सकता है।

उपर्युक्त कारणों से ये चारों ग्रंथ अष्टछाप के सूरदास कृत नहीं हैं, इसलिए हिंदी इतिहासकारों को अब सूरदास के नाम पर बतलाये जाने वाले ग्रंथों में से इन्हें निकाल देना चाहिए।

हमारी राय में सूरदास की प्रामाणिक रचनाएँ ये हैं—

१. सूरसारावली

२. साहित्यलहरी

३. सूरसागर (भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर रामायण, मानलीला, राधारसकेलिकौतुहल, गोवर्धनलीला (नरसलीला) दानलीला, भँवरगीत, नागलीला, ब्याहलो, प्राणप्यारी, दृष्टकूट के पद, सूरशतक—ये रचनाएँ सूरसागर के ही अंश हैं; अतः इनको हम स्वतंत्र नहीं मानते हैं।)

४ सूरसाठी

५. सूरपच्चीसी

६. सेवाफल

७. सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद।

इस प्रकार हमारे मतानुसार सूरदास की स्वतंत्र एवं प्रामाणिक रचनाएँ सात हैं। इनमें सबसे प्रथम सूरसारावली की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

१. सूरसारावली—यह ग्रंथ बंबई और लखनऊ से प्रकाशित सूरसागर के संस्करणों के प्रारंभ में दिया हुआ है। इसमें ११०७ तुक हैं। इसके प्रारंभ में संग्रहकार ने इस प्रकार लिखा है—

"अथ श्रीसूरदास जी कृत सूरसागर सारावली"।"तथा सवा लक्ष पदों का सूचीपत्र ॥"

उक्त उल्लेख का आधार शायद सारावली की ११०३ वाली यह तुक ज्ञात होती है—

श्रीवल्लभ गुरू तत्त्व सुनायौ लीला भेद बतायौ।
ता दिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि गावत अति आनंद ॥ ११०३

हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने भी "एक लक्ष पद बंद" का एक लाख पद अर्थ करते हुए सारावली को एक लक्ष पद वाले सूरसागर का सार रूप मानकर इसे सूरदास की ही रचना स्वीकार की है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में इस सारावली पर विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने "एक लक्ष पद बंद" का अर्थ एक लाख पद मान कर ही 'सारावली के इस दावे को' गलत सिद्ध करने की चेष्टा की है। उन्होंने सूरसागर और सारावली का विश्लेषण करते हुए इन दोनों रचनाओं के बीच २७ अंतर स्थापित किये हैं। अंत में दोनों रचनाओं का कर्ता एक नहीं हो सकता, इस प्रकार का अपना अभिमत प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है—

"उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर-सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती। तथा कथित आत्म-कथन और कविछापों से भी यही संकेत मिलता है†।"

यदि हम सारावली को सवालाख पदों का सूचीपत्र मानें, जैसा प्रायः सभी विद्वान मानते आये हैं, तो निःसंदेह डा० वर्मा के स्थापित किये हुए उक्त २७ अंतर बड़े महत्त्वपूर्ण और विचारणीय कहे जा सकते हैं, किंतु सारावली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्रात्मक सार रूप नहीं है, और न सारावली का भी यह दावा है! फिर भी "कथा वस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से" निश्चय ही यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसके "आत्मकथन और कवि छापों से भी" इसी बात की पुष्टि होती है, जिसका हम अगले पृष्ठों में विस्तृत विवेचन कर रहे हैं।

सारावली को सूरदास के लाख या सवा लाख पदों का सूचीपत्र न मानने का निम्न-लिखित कारण है—

मूल वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास ने "सहस्रावधि" पद किये थे। "सहस्रावधि" के दो अर्थ हो सकते हैं—एक "सहस्र है जिसकी अवधि" और दूसरा सहस्रों की अवधि। प्रथम अर्थ से केवल ९९९ पदों तक का ही सूचन होता है और दूसरे अर्थ से ९९९९९ पदों तक का सूचन होता है। सूरदास की रचनाओं को देखते हुए दूसरा अर्थ स्वीकार करना ही अधिक समीचीन जान पड़ता है, जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया जा रहा है।

---

† सूरदास, पृष्ठ ८३

इन्हीं अर्थों को लेकर भावप्रकाश वाली वार्ता में 'सहस्रावधि' और "लक्षावधि" ऐसे दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है† । वार्ता प्रसंग १० में कहा गया है कि सूरदास अपने अंतिम समय तक एक लक्ष पदों की रचना कर सके थे । शेष २५ हजार पद सूरश्याम की छाप से श्रीनाथ जी ने किये थे ।

अब यदि हम सारावली के "एक लक्ष पद बंद" का अर्थ एक लाख पद करते हुए उनके सार रूप से इसकी रचना की हुई मानें तो यह सूरदास के अंतिम समय की रचना सिद्ध होती है । उस समय सूरदास प्रायः १०५ वर्ष के थे सारावली के "गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाले कथन से यह स्पष्ट है कि सूरदास ने इसकी रचना अपने ६७ वें वर्ष में की थी । यदि हम इस सरसठ वर्ष को सूरदास के जन्म संवत से जोड़ते हैं तो इसकी रचना का संवत् १६०२ वि० आता है । इसी प्रकार यदि हम इसको सूरदास के संप्रदाय प्रवेश से ६७ वें वर्ष में रची हुई माने तो इसका संवत आता है १६३४ वि० । इन दोनों में से किसी भी संवत को स्वीकार किया जाय तब भी " एक लक्ष पद बंद " का एक लाख पद वाला अर्थ इससे संगत नहीं हो सकता है; क्यों कि सूरदास के लाख पदों का समाप्ति-काल वि० सं० १६४० में आता है ।

सारावली का रचना-काल वि० सं० १६३४ की अपेक्षा वि० सं० १६०२ मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक होगा । वि० सं० १६३४ इस लिये विरुद्ध और अप्रामाणिक कहा जायगा कि सारावली की "सरस संवत्सर लीलाओं" में वल्लभ संप्रदाय के वि० सं० १६१५ के पश्चात निर्मित उत्सवों के सूरदास रचित पदों का संकेत भी नहीं मिलता है, यथा—रथ यात्रा, छप्पनभोग आदि के वर्णन । जैसा पहले कहा जा चुका है इन उत्सवों का निर्माण वि० सं० १६१५ के पश्चात् गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था ।

वि० सं० १६०२ में सारावली का निर्माण मानना अधिक प्रशस्त एवं प्रामाणिक इसलिए है कि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली का व्यवस्थित और

---

† " तैसे ही सूरदास ने सहस्रावधि पद किये हैं ।" (प्रसंग ३)

" और सूरदास जी ने श्रीठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं ।"(प्रसंग ११)

(अग्रवाल प्रेस से प्रकाशित भावनावाली ८४ वार्ता में सूरदास की वार्ता)

विस्तृत निर्माण वि० सं० १६०२ में गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने सर्व प्रथम किया था, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इससे संप्रदाय की सेवा में नवीनता और अद्भुतता आई, जिसका स्पष्टीकरण सारावली के अनंतर ही लिखे हुए "सेवाफल" में सूरदास ने इस प्रकार किया है—

'सेवा की यह अद्भुत रीति, श्रीविट्ठलेश सों राखें प्रीत"

इस अद्भुतता का कारण सेवा में निकुंज-लीला का क्रियात्मक विस्तार है। गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व तक सेवा में केवल बाल-भावना का क्रियात्मक विस्तार हुआ था। इसीलिए वल्लभ-संप्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पूर्व माधुर्य भक्ति का अभाव था, इस प्रकार का मत लोक में प्रसिद्ध हुआ है। किंतु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने जिस माधुर्य-भक्ति को अपने ग्रंथों में व्यक्त किया था, उसी को श्री विट्ठलनाथ जी ने सेवा में क्रियात्मक रूप से उपस्थित किया, जिसके फल स्वरूप संप्रदाय में निकुंज-भावना तादृश हुई। इसी से सूरदास ने प्रभावित होकर सेवा की अद्भुतता और "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन" आदि कथन किया है। जिन निकुंज के दर्शनों की सूरदास अभिलाषा करते थे, वे उनको अपनी ६७ वर्ष की अवस्था में तादृश हुए थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गो० विट्ठलनाथ जी में कोई भेद नहीं समझते थे‡ इसलिए यहाँ भी उन्होंने "गुरु-प्रसाद होत यह दरसन" इस प्रकार का कथन किया है और उनका निकुंज लीला के साथ ही वर्णन किया है।

गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने इन्हीं निकुंजादि की माधुर्य भावनाओं को अपने 'शृंगाररस मंडन' तथा 'निकुंज विलास' आदि ग्रंथों में स्पष्ट किया है। इस प्रकार वि० सं० १६०२ में ही सारावली की रचना होना सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारावली सूरदास के सवालाख अथवा लाख पदों का सूचीपत्र नहीं है। जब यह बात निश्चित हो गयी कि यह लाख या सवालाख पदों का सूचीपत्र नहीं है, तब डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा स्थापित २७ अंतर एक प्रकार से निरर्थक हो जाते हैं।

‡ "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।"—इस पद में "इन चरनन" शब्द अपने सन्मुख उपस्थित हुए श्री विट्ठलनाथ जी के चरणों का बोध कराने वाले हैं। इससे श्री वल्लभाचार्य जी और गो० श्री विट्ठलनाथ जी के प्रति सूरदास की समान भक्ति ज्ञात होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब सारावली सूरसागर का सूचीपत्र रूप नहीं है तो 'ताको सार सूरसारावली' का अर्थ क्या हो सकता है? सारावली के गंभीर और सांगोपांग अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यहां 'सार' का अभिप्राय 'सैद्धांतिक तत्व रूप' से है, अर्थात् सूरदास ने जिन कथात्मक और सेवात्मक हरिलीलाओं का वर्णन सं० १६०१ तक किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक तत्व रूप से उन्होंने सारावली की रचना की है। जैसे नंददास जी ने रासपंचाध्याई के कथात्मक वर्णन के अनंतर उसी के सैद्धांतिक-सार रूप से 'सिद्धांतपंचाध्याई' की रचना की है। इस दृष्टि से ही हम डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत हो सकते हैं और उन्हीं के शब्दों में कहेंगे कि—

"सारावली सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु में सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ठ साम्य होते हुए भी उसे निश्चित सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते*।"

फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। सारावली की प्रामाणिकता और हमारे सैद्धांतिक तत्व वाले कथन की पुष्टि आगामी विस्तृत विवेचन से स्पष्ट हो जायगी।

सब से प्रथम यहाँ आंतर उल्लेखों एवं कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण से सारावली का परिचय और उसकी प्रामाणिकता को हम स्पष्ट करेंगे। सारावली पर विचार करने के लिए सब से प्रथम उसके निम्न लिखित उल्लेख द्रष्टव्य हैं —

करम योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायौ।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ॥ ११०२॥
ता दिन तें हरि-लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताकौ सार 'सूर-सारावलि' गावत अति आनंद॥ ११०३॥
सरस संबतसर लीला गावै युगल चरन चित लावैं।
गरभवास बंदीखाने में 'सूर' बहुर नहिं आवैं॥ ११०७॥
गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहीं लीन॥१००२॥

---

* सूरदास, पृ० ७०

इन तुकों से ये बातें प्रकट होती हैं—

(१) सारावली के कर्ता सूरदास हैं।

(२) सूरदास प्रारंभ में कर्मयोग, ज्ञान, उपासना आदि में विश्वास करते थे; किंतु श्रीवल्लभ गुरु ने जब उनको तत्त्व सुनाकर लीला-भेद दिखाया (समझाया), तब सूरदास को कर्मयोग आदि के अपने पूर्व विश्वास भ्रम रूप ज्ञात होने लगे और तभी से उन्होंने उन लीलाओं को एक 'लक्ष' स्वरूप श्रीकृष्ण की पद वंदना करते हुए गाया है, जिसका सार-सिद्धांत तत्त्वरूप—यह 'सारावली' है।

(३) सारावली की लीला के दर्शन सूरदास को अपनी ६७ वर्ष की वय में गुरुप्रसाद से हुए थे। उस समय सूरदास संप्रदाय के तत्त्व और लीला ज्ञान में 'प्रवीन' हो चुके थे। सारावली में कही हुई लीला का अनुभव शिवजी को भी अनेक विधि पूर्वक बहुत दिन तक तप करने से भी नहीं हुआ था।

(४) सारावली की सरस संवत्सर की लीला को जो कोई युगल चरणों में चित्त स्थापित कर गावेगा, वह गर्भवास बंदीखाने में फिर कभी नहीं आवेगा।

उक्त चार बातों की पुष्टि सूरदास के अन्य अंतःसाक्ष्य आदि से करना आवश्यक है। जब ये बातें पुष्ट हो जायगी, तब सारावली पर विशेष विचार करना सुगम होगा।

१—कर्ता—सारावली के कर्ता सूरदास थे, इस बात का ज्ञान जिस प्रकार सारावली में प्राप्त सूर, सूरज आदि उपलब्ध छापों से होता है, उसी प्रकार उसकी भाषा आदि से भी होता है। सारावली की भाषा सूरदास के सूरसागर और उनके अन्य पदों की भाषा से इस प्रकार मिलती है—

(कृष्ण-जन्म)

सारावली—'आठें बुद्ध रोहिनी आई' संख चक्र वपु धार्यो।

कुंडल लसत 'किरीट' महा धुनि वपु वसुदेव निहार्यो। ३६५।

'पीतांबर' अरु श्याम जलद वपु निरखि सुफल दिन लेख्यौ।

अस्तुति करी बहुत नाना बिधि रूप चतुर्भुज देख्यौ।३६६।

तब हरि कहेउ जन्म तुम्हरे गृह 'तीन बार' हम लीनों।

पृश्नी-गर्भ देव ब्राह्मण जो कृष्ण रूप रंग कीनों।३६७।

'मांग्यौ सकल' मनोरथ अपने मन वांछित फल पायौ ।
'संख चक्र गदा पद्म' 'चतुर्भुज' 'अजन जन्म' लै आयौ ।३६८।

प्राकृत रूप धरयौ हरि छनमें 'सिसु ह्वै रोवन लागे' ।
तब देवकी दीन ह्वै भाख्यौ नृप को नांहि पतीजै ।
'अहो वसुदेव जाव लै गोकुल' कह्यौ हमारौ कीजै ।३७१।

उक्त पंक्तियों का मिलान सूरसागर की 'बालविनोद भांवती लीला'† के पद से करने पर उनकी भाषा आदि का इस प्रकार साम्य दिखलायी देता है—

कीर्तन – 'बुध रोहिनी अष्टमी' संगम वसुदेव निकट बुलाये हो ।
सकल लोकनायक सुखदायक 'अजन जन्म' धरि आये हो ॥
माथे 'मुकुट' सुभग 'पीतांबर' उर सोहत भृगु रेखा हो ।
'संख चक्र भुज चारि विराजत' अति प्रताप सिसु भेखा हो ॥
सुनो देव एक 'आन जनम' की तुमसों कथा चलाऊं हो ।
तुम 'मांग्यो मैं दयौ नाथ ह्वै तुमसों बालक पाऊं हो ॥
यह कहि माया मोह अरुझाये 'सिसु ह्वै रोवन लागे हो' ।
'अहो वसुदेव जाउ लै गोकुल' तुम हो परम सभागे हो ॥

दोनों ग्रंथों की उपर्युक्त पंक्तियों के अतिरिक्त अन्य पंक्तियाँ भी देखिये—

सारावली— 'सेष सहस फन ऊपर छाये' घन की बूँद बचावै हो ।
आगें 'सिंह हुंकारत' आवत, निर्भय बाट जनावै हो ॥
'यमुना अति जलपूर' बहत है, 'चरन कमल परसायौ' ।

कीर्तन— आगे 'जानु जमुन जल बूड़ो' पाछें 'सिंह दहाड़े' हो ।
'चरन पसारि परसि कालिंदी' तरवा नीर तें आगे हो ॥
'सेष सहस फन ऊपर छायो' गोकुल कों अति भागे हो ।

सारावली— 'पहुँचे आय महरि मंदिर में' 'नैंक न संका कीन्हीं' ।

कीर्तन— 'पहुँचे जाय महरि मंदिर में' मनहिं 'न संका कीन्हीं हो' ।

सारावली— 'यह कन्या मोहि बकसि बीरजू' कीजे मो मन भायौ हो ।

कीर्तन— 'यह कन्या मोहि बकसि बंधु तू' दासी जानिकर दीन्हीं हो ।

---

† सूरसागर, बधाई, पृ० १७४

सारावली— 'कंस बंस को नास करत है' कहा समुझ री सयानी ।

कीर्तन— क्रूर कंस मम बंस बिनासन' समुझे बिना रिस कीन्हीं हो ।

सारावली— 'पटकत सिला गई आकासै' कंस प्रतीति न मानी ।
भई 'अकास बानी' 'सुरदेवी' कंस यहाँ अब आई ॥
'तेरो सत्रु प्रगट कहुँ ब्रज में' 'काहु लख्यौ नहीं जाई' ।
'जैसे मीन करत जल क्रीड़ा' 'जल में रहत समाई' ॥

कीर्तन— 'पकरत कन्या गई अकासहिं' दोउ भुज चरन लगाई हो ।
'गगन गई बोली सुरदेवी' कंस मृत्यु नियराई हो ॥
'जैसे मीन जाल में क्रीड़त' गनै न आपु लखाई हो ।
'तैसोई कंस काल उपज्यो है' 'ब्रज में जादौराई हो' ॥

सारावली— छम अपराध देवकी मेरो, 'लिख्यो न मेट्यो जाई' ।
मैं 'अपराध किये सिसु मारे' कर जोरे बिलखाई ॥
पुनि गृह आय 'सेज पर सोयो' 'नेक नींद नहिं' आवै ।
'देस देस के दूत बुलाये' 'सबहिंन मतो सुनावै' ॥

कीर्तन— 'बहु अपराध करे सिसु मारे' 'लिख्यौ न मेट्यौ जाई हो' ।
'चारि पहर सुख सेज पर निस' 'नैक हू नींद नहिं आई हो'॥
'देस देस के दूत बुलाये' 'कासों है छल करौं हो' ।

इसी प्रकार कृष्ण जन्म के इस वर्णन के कई शब्द भी सूरदास के अन्य कीर्तनों में ज्यों के त्यों प्राप्त होते हैं, जैसा कि "खड्ग", "कन्या" आदि । इस प्रकार इस वर्णन में भाषा, शब्द, भाव, वर्णन पद्धति आदि सबका साम्य प्राप्त होता है ।

(ब्रज वर्णन)

सारावली— ' नंदराय घर ढोटा जायौ महर महा सुख पायौ ' ।
विप्र बुलाय बेद विधि कीन्हीं, स्वस्ति वचन पढ़ायौ ॥
जाति कर्म पूजि 'पितर' सुर 'पूजन' विप्र करायौ ।
'दोय लख धेनु दई तिहिं ओसर' बहुतहिं दान दिवायौ ॥

इन पंक्तियों में 'विप्र बुलाय पितर पूजन' आदि के तथा 'दान' आदि की जो वर्णन पद्धति प्राप्त होती है, वही वर्णन पद्धति सूरदास कृत जन्माष्टमी की बधाई के अन्य पदों में भी मिलती हैं, जैसा कि—

"नांदीमुख 'पितर पूजाय' अंतर सोच हरें ।"
"गनगैया गिनी न जाय"...."ते दीनी द्विजन अनेक।" इत्यादि*
"महरि जसोदा ढोटा जायो ।" इत्यादि†
"दई सुवच्छ लच्छ द्वै गैया नंद बढ़ायो त्याग¶ ।"

(ढाढ़ी)

सारावली— 'निज कुल' 'वृद्ध जानि' 'एक ढाढ़ी गोवर्धन तें आयो । ४०६
कीर्तन— नंद जू मेरे मन आनंद भयो सुनि 'गोवर्धन तें आयो' ।
हौं तो 'तुम्हारे घर को ढाढ़ी' सूरदास मेरो नाउँ ।
सारावली— बहुत दान दिये 'उपनंद जू' रतन कनक मणि हीर ।
'धरानंद' धन बहुतहिं दीन्हों ज्यों बरखत घन नीर ॥
कुंडल कान कंठ माला दै 'ध्रुवनंद' अति सुख पायो ।
सीधो बहुत 'सुरसुरानंदे' गाड़ा भरि पहुँचायो ॥
'कर्मा धर्मानंद' कहत है बहुतहिं दान दिवायो ।
कीर्तन— महानंद 'सुरसुरानंद' नंदनंद सुख कीजै ।
'धरानंद' 'ध्रुवनंद' और 'उपनंद' परम उपकारी ॥

(पूतना वध)

सारावली— 'प्रथम पूतना कंस पठाई' अति 'सुंदर वपु धारयऊ' ।
'लीन्हे खैंच प्रान विषमय युत' देह विकल तब कीनो ॥
'योजन डेढ़' विटप बेली सब चूर चूर कर डारे ।
कीर्तन— 'प्रथम कंस पूतना पठाई' ।
'अति मोहिनी रूप धरि लीन्हे' ।
'पय संग प्राण ऐंच हरि लीन्हों' 'जोजन डेढ़' गिरी मुरझाई ।
इत्यादि—

इसी प्रकार करवट, शकट, तृणावर्त और नामकरण आदि के पदों का भी मिलान करने पर वही शब्द, वही भाव, वही वर्णन पद्धति का साम्य दिखलायी देता है। करोटी, बूढ़े बाबू आदि शब्द भी सूरदास के पदों में मिलते हैं, जिनका डा० वर्मा ने नहीं मिलने का उल्लेख किया है‡ ।

---

* 'व्रज भयो महरि के पूत' इस पद की पंक्तियां हैं ।
† 'हौं एक नई बात सुनि आई' इस पद की पंक्ति है ।
¶ 'आज अति बाढ्यो है अनुराग' (सूरसागर) इस पद की पंक्ति है ।
‡ सूरदास, पृष्ठ ७१

'कागासुर' की कथा केवल सूरदास ने ही अपने पदों में गायी है और किसी ने भी उसका गायन नहीं किया है। यह विशेष कथा सारावली में भी है, जैसा कि—

सारावली— 'कंस नृपति इक असुर पठायौ' 'धरेउ काग कौ रूप'।
'कंठ चांप बहु बार फिरायौ' 'पटक्यौ' 'नृप के पास'॥
'एक याम में' बचन कह्यौ यह 'प्रगट भयौ तुव नास'। ४३५।

कीर्तन— 'काग रूप एक दनुज धरेउ'।
'नृप आयुस' लै कर माथे दे हरषवंत उर गर्व भरेउ॥
'कंठ चांपि' 'बहु बार फिरायौ' 'गहि पटक्यौ नृप पास'।
बीते 'जाम' 'बोलि तब आयौ' 'सुनहु कंस तेरौ आइ सरेउ'।

इसी प्रकार सारावली की चंद्र दर्शन, बूढ़े बाबू की लीला, घुटुरुवन आदि लीलाओं का इसी प्रकार की लीलाओं के पदों से साम्य ज्ञात होता है, जैसा कि—

(चंद्र दर्शन)

सारावली— 'ससि कों देखि' और 'हठ ठानी' कर मनुहार मनावत।
कमलनयन कों 'महरि जसोदा' 'जल प्रतिबिंब दिखावत'॥
'फेरत हाथ चंद पकरन कों' नाहिंन होत लखावत। ४४०

कीर्तन— मेरौ माई 'अरटचौ' है बाल गोविंदा।
गहि अचरा मोहि गगन बतावत खेलन को माँगे 'चंदा'।
'भाजन में जल मेलि जसोदा' लालै चंद दिखावै।
रुदन करै 'पानी में ढूँढ़ै' चंद धरनि कैसै आवै॥

(बूढ़े बाबू दर्शन)

सारावली— 'बूढ़े बाबू' दरसन आये लाय चंद्रमनि दीन्हों। ४४०½

कीर्तन— 'बूढ़ौ बाबू' नाम हमारौ 'सूर श्याम' तेरौ जानें।

(घुटुवन)

सारावली— 'घुटुवन चलत स्याम कों' 'देखत' 'बोलत' अमृत बानी।
'इततें नंद-महर बोलत हैं' 'उततें जननि बुलावत'॥

कीर्तन— 'किलकत कान्ह 'घुटरुवन' आवत।
'बालदसा सुभ निरखि यसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावत'॥

इसी प्रकार माटी भक्षण, दामोदर लीला, अघा, बका आदि के वध वाले सारावली के उल्लेखों को भी सूरदास के अन्य पदों से मिलान करने पर उनमें भी ऐसा ही साम्य दिखाई देता है।

काली नाग का 'कनक कमल' का विशेष उल्लेख सूरदास की रचना में ही प्राप्त होता है, और वह सारावली में भी मिलता है।

(कनक कमल)

सारावली— कालीनाग नाथ हरि लाये सुरभी ग्वाल जिवाये।
'कनक† कमल' के बोझ शीश धरि मथुरा कंस पठाये॥ ४७३॥

कीर्तन — 'कमल कनक' भार दधिभार माखन भार लिये ग्वाल नृप घर आये।

इसी प्रकार कंस वध पर्यंत की लीलाओं का वर्णन आदि सूरदास के तत्तत् पदों से मिलता है। अब कुछ भ्रमर गीत के साम्य को देखेंगे—

(भ्रमर गीत)

सारावली— 'बन में मित्र हमारे यक हैं' 'हमही सौ है रूप'।
'कमल नयन घनस्याम मनोहर' 'सब गोधन कौ भूप'॥
ताकौ पूजि 'बहुरि सिर नइयो' अरु कीजो परनाम।

कीर्तन— 'मंत्री यक बन बसत हमारौ' ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरौ हूतौ ताहि 'माथ नवाइयो'॥
सुंदर परम किसोर वय क्रम चंचल नयन विसाल।
'कर मुरली सिर मोर पंख' 'पीतांबर उर बनमाल'॥

सारावली— तब 'यक सखी कहे सुनरी तू' 'सुफलक-सुत फिरि आयौ'।
'प्राण गये लै' पिंड देन कौं देह लेन मन भायौ॥

कीर्तन— बहुरि 'सखी' 'सुफलक सुत' आयौ परचौउ संदेह उर गाढ।
'प्राण हमारे तबहि लै गयौ' अब केहि कारन आयौ॥

इस प्रकार के भाषा, भाव और वर्णन शैली के अनेक साम्य इस लीला में भी मिलते हैं, किंतु स्थानाभाव से हम यहाँ उन सबको दे नहीं सकते।

अब कुछ राम, नृसिंह और वामन विषय के पदों का भी 'सारावली' से मिलान करेंगे—

† पीत रंग के कमल।

(रामजन्म का वर्णन)

सारावली— "देत 'दान' नृपराज द्विजन को सुरभी हेम अपार।
आये देव और 'मुनिजन' सब दे असीस सुख भारी॥"

कीर्तन— आनंद आज नृपति दसरथ घर। ××
'ऋषि मुनि' वेद मधुर धुनि उपजत 'दान' विधान करत
एति औसर। ××

जिस प्रकार राम का भोजन विषयक वर्णन सारावली में प्राप्त होता है, उसी प्रकार सूरदास के अन्य पदों में भी मिलता है। जैसा कि—

(राम भोजन)

सारावली— "बैठे संग बाबा के 'चारों भैया जेंवन लागे';
लघु लघु ग्रास राम मुख मेलत आपु 'पिता मुख मेलत'॥"१८५

कीर्तन— "जननि 'अपुने हाथ जिमावति'।
'भोजन करत भ्रात एक थारी' लोचन लाल सिरावत।"

(नरसिंह विषयक)

सारावली— 'निरगुण सगुण होय मैं देख्यो तोसों भक्त न पाऊं'।
'सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी' तोकों कबहुं न त्यागूं॥

कीर्तन— तौलों हौं वैकुंठ न जैहों।
'सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी' जौलों तो सिर छत्र न दैहों।
'निर्गुण सगुण हेर सब देखे तोसों भक्त मैं कबहू न पैहों'॥

(वामन विषयक)

सारावली— "करी 'वेद धुनि' नृप द्वार पै मनहु महा घन गाजै।
'सुनि धायौ तबहिं बलिराजा' आय 'चरन सिर नायौ'॥
'चलिये विप्र यज्ञ शाला में' जहाँ द्विज वर सब राजै।
'तब नृप कहेउ कछू' द्विज माँगो 'रत्नभूमि' मणिदान॥
हय गज हेम रत्न पाटंबर दैहौं प्रगट प्रमान।
तब बोले वामन यह बानी सुन प्रहलाद कुल भूप॥
'बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र' जो 'जाय परत भव कूप'।
'तीन पेंड बसुधा हम पावें' 'पर्णकुटी' इक कारन॥

'जब नृप भुव संकल्प कियौ है' लागे 'देह पसारन' ।
'एक पैंड में' वसुधा नापी 'एक पैंड' सुरलोक ॥
'एक पड दीजै बलिराजा' तब ह्वै हो बिन सोक ।
'नापो देह हमारी द्विजवर' सो 'संकलिपत कीनो' ॥

कीर्तन— राजा एक पंडित पौरि तिहारी । × × ×
'सुनि सुनि बलिराजा उठि धाये' आहुति यज्ञ बिसारी ।
सकल रूप देख्यौ जू विप्र कौ 'कियो दंडोत जुहारी' ॥ ३
'चलिये विप्र जहाँ यज्ञ वेदी' बहुत करी मनुहारी ।
'जो मांगो सो' देहों तुरत ही हीरा 'रतन भंडारी' ॥ ४
रहो रहो राजा अधिक न कहिये 'दोष लगत है भारी' ।
'तीन पैंड वसुधा मोहि दीजे' जहाँ रचों 'धर्म सारी' । ५ × × ×
ले 'उदक संकल्प जो कीनों' वामन 'देह पसारी' ॥ ७
जय जयकार भयौ भूमापत 'द्वय पैंड भई' सारी ।
'एक पैंड तुम देहु तुरत ही' कै वचनन मत हारी ॥ ८
सत नहीं छांड़ों सतगुरू मेरे 'नापो पीठ हमारी' ।

(होरी वर्णन)

होरी वर्णन में एक साम्य की वर्णन की शैली का " कछु दिन ब्रज औरै रहो " इस पद से साम्य है ।

इस प्रकार सारावली की प्रत्येक लीला सूरसागर और सूरदास के अन्य पदों की भाषा, उनके भाव आदि से मिलती है, जिनके स्पष्टीकरण में सैकड़ों पृष्ठ और चाहिये, इसलिए हम उस बृहद् अनुसंधान के कार्य को अपने उत्साही पाठकों के लिए ही छोड़ देते हैं । पाठक अवश्य ही उन सबका मिलान कर इस कथन की वास्तविकता की जाँच करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं ।

सारावली और सूर की अन्य रचनाओं में प्राप्त कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्दों का एक सा उल्लेख इस प्रकार है—

'सिंघद्वार', 'रतन चौक', 'सुनो सूर', 'अँकवार', फगुवा', 'मंत्र'*, 'कोपि'‡

---

* बसंत धमार के पदों में ।

‡ बधाई के पदों में ।

'कटकट*', 'सगुण निर्गुण‡', 'थापें‡', 'चोतनिया†', 'मनो', 'जन्म पत्रिका', 'झगुलिया†', 'अंकवार', 'अशरण शरण', 'बकस', 'आनकदुंदभि', 'अंधाधुंध‡', 'नाथ', 'रिंगनलीला' इत्यादि।

इनसे भी सारावली के कर्ता सूरदास हैं, इस बात की पुष्टि होती है।

उक्त कथन का विशेष समर्थन आगे के प्रमाणों से और होगा, अतः इस बात को हम यहीं पर समाप्त करते हैं।

२-आत्म वृतांत –

(अ) सूरदास श्री बल्लभ गुरू के शरण में आने से पूर्व कर्म ज्ञानादि में विश्वास करते थे।

(ब) किंतु जब श्री बल्लभ गुरू ने उनको तत्त्व सुना कर लीला भेद को समझाया, तब वे अपने पूर्व विश्वास को भ्रम समझने लगे और तभी से उन्होंने उस लीला का गायन किया, जिसका सार (सैद्धांतिक तत्त्व रूप) यह सारावली है।

सारावली के इन कथनों की क्रमशः पुष्टि सूरदास के अंतःसाक्ष्यों से इस प्रकार होती है—

(अ—कर्म ज्ञानादि विश्वास)

(१) "करम गति टारी नांहि टरै।"

(२) "रे मन ! चिंता ना कर पेट की।"

इत्यादि पदों से सूरदास का कर्म पर अटल विश्वास जिस प्रकार जाना जा सकता है, इसी प्रकार 'सब दिन होत न एक समान' तथा च 'भजन बिनु बैल बिराने ह्वै हो' आदि पदों से उनके ज्ञान तथा उपासना-भक्ति की प्रारंभिक श्रद्धा को भी जाना जा सकता है।

---

* करखा के पदों में।

‡ नृसिंह जयंती आदि के पदों में।

† शृंगार के पदों में।

‡ "सूरदास ए कैसे निभैगी 'अंधाधुंध' सरकार" शेष शब्द सामान्य पदों में प्राप्त होते हैं।

(ब--वल्लभ गुरु से तत्त्व-लीला ज्ञान)

(१) " श्री बल्लभ भले बुरे तोउ तेरे। "
(२) " दृढ़ इन चरनन केरो। "

इन पदों से सूरदास श्री बल्लभ गुरु के सेवक थे, यह बात स्पष्ट होती है।

अब प्रथम यह जानना आवश्यक है कि श्री बल्लभ गुरु ने सूरदास को कौन सा तत्त्व सुनाया और किस लीला भेद को समझाया था, जिनकी सूचना सारावली में दी गयी है, तभी उस पर आगे विचार किया जा सकता है।

उक्त बात का ज्ञान वार्ता से होता है। वार्ता में लिखा है कि सूरदास को महाप्रभु ने शरण में लेकर " दशम स्कंध की अनुक्रमणिका " और " पुरुषोत्तम सहस्रनाम " सुनाये थे, जिनसे सूरदास को भागवत की टीका स्वरूप श्री सुबोधिनी का ज्ञान हुआ था। इस ज्ञान के आधार पर ही सूरदास ने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की लीलाओं का कीर्तन किया*।

वार्ता के इस कथन की पुष्टि सूरदास के इन पदों से होती है—

(१) " गुरु बिनु ऐसी कौन करें। "

इस पद में सूरदास कहते हैं कि—

भवसागर तें बूड़त राखे 'दीपक' हाथ धरें।

सूरदास का सांकेतिक यह 'दीपक' ज्ञान प्रदीप रूप श्रीमद्भागवत है। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही कलिकाल रूप अज्ञानांधकार को दूर करने वाला "प्रदीप" कहा है। जैसा कि—

" श्रीमद्भागवतप्रदीपमधुना चक्रे मुदा वल्लभः। " (निबंध)

---

* " पाछें आप दशम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये × × × सो सगरी श्री सुबोधिनी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो। × × × ता पाछें श्री आचार्य जी ने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो। तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदास ने प्रथम स्कंध श्री भागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये। " (प्रा० वा० र० पृ० १४–१५)

इसलिए सूरदास ने भी उक्त पद में भागवत का ही 'दीपक' शब्द से संकेत किया है† । महाप्रभु के मत से इस कलिकाल में श्री कृष्ण के नाम स्वरूप यह भागवत शास्त्र ही जीव के उद्धार करने में एक मात्र समर्थ है, इसीलिए सूरदास ने 'भव सागर तें बूड़त राखे' शब्दों का भी वहाँ प्रयोग किया है । अस्तु ।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को श्रीमद्भागवत के 'सार समुच्चय' रूप कहा है; क्यों कि श्रीमद्भागवत में से ही महाप्रभु ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक हजार नामों को उद्धृत कर 'पुरुषोतम सहस्रनाम' की रचना की है. इसलिए महाप्रभु ने तत्व रूप 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा श्रीमद्भागवत रूप ज्ञानदीपक का ही सूरदास को दान किया था । इस प्रकार सूरदास के उक्त पद से वार्ता के पूर्व कथन की तथा सारावली के 'तत्व सुनायौ' वाले उल्लेख की पुष्टि होती है ।

अब 'लीला भेद बतायौ' वाले कथन को स्पष्ट करेंगे । श्रीमद्भागवत के तत्व स्वरूप पुरुषोतम सहस्रनाम' में महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की सर्ग, विसर्ग, स्थान पोषण, ऊति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दशविध लीला सूचक नामों का स्कंधानुसार निरूपण किया है‡, अतः 'सहस्रनाम' के उपदेश द्वारा उक्त लीला भेद को महाप्रभु ने सूरदास को समझाया था, जिससे समग्र भागवत का अर्थ सूरदास के हृदय में स्फुरायमान हुआ था । इस कथन की पुष्टि जिस प्रकार वार्ता के "सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी इस उल्लेख से होती है, उसी प्रकार आगे आने वाले पद से भी होती है—

---

† सूरदास ने निम्न पद में श्रीमद्भागवत को 'ज्ञानदीप' स्पष्ट रूप से भी कहा है-

"निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख ते जु दयौ ।
श्री सुकदेव कृपा करि के अति परीक्षित स्रवन पयौ ॥
"ज्ञानदीप हिरदै" प्रगटायौ मनोकामना काज लयौ ।
जग में प्रकास करि हरि कथा उर कौ तिमिर सबहि गयौ ॥
'सूर स्याम' सुन हो रसिकनमनि बारंबार रस पीवो नयौ ।"

‡ 'सर्गलीलाप्रवर्तकः', 'विसर्गकर्तासर्वेशः', 'स्थितिलीलाब्धिरच्युतो विजयप्रदः ।' इत्यादि ।

श्री भागवत सकल गुन-खानि।
सर्ग, विसर्ग, स्थान, रू, पोषण, उति, मन्वंतर जानि॥
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि, ये दस लच्छन होय।
'उत्पत्ति तत्व' 'सर्ग' सो जानो 'ब्रह्माकृता' 'विसर्ग' है सोय॥
कृष्ण 'अनुग्रह' 'पोषण' कहिये कृष्ण 'वासना' उति ही मानो।
'आछे धर्मन की' प्रवृत्ति जो, सो 'मन्वंतर' जानो॥
'हरि हरिजन की कथा' होय जहाँ सो 'ईशानु' ही सान।
'जीव स्वतः हरि ही मति धारे' सो 'निरोध' हिय मान॥
'तजि अभिमान कृष्ण जो' पावै सोई 'मुक्ति' कहावै।
'उत्पत्ति, पालन, प्रलय करै जो हरि' 'आश्रय' कहावै॥
सूरदास 'हरि की 'लीला' लखि कृष्ण रूप ह्वै जावै'।

महाप्रभु ने उक्त सर्गादि लीलाओं का क्रम तथा अर्थ इस प्रकार किया है—

'आनंदस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधाहि सः।
अत्र सर्गो, विसर्गश्च, स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वंतरेशानुकथा 'निरोधो' मुक्तिराश्रयः।
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्रहि॥' (निबंध)

अर्थ—"आनंद रूप हरि की लीला वह इस समग्र भागवत का अर्थ है।" 'वह लीला' सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय के नाम से 'दशधा' है।

अधिकारी के भेद को दिखाने वाला प्रथम स्कंध है। सर्व प्रकार के ज्ञान कहने वाला साधन रूप द्वितीय स्कन्ध है। तृतीय स्कंध से सर्गादि लीलाओं का क्रम है। महाप्रभु के सिवाय भागवत के सभी टीकाकार 'आश्रय' को 'निरोध' के स्थान पर और 'निरोध' को अंतिम 'आश्रय' के स्थान पर रखते हैं, किंतु उसकी असंगति को महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी में अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया है*।

सूरदास ने भी अपने उक्त पद में निरोध (प्रलय) को अष्टम ही माना है। यह उनको महाप्रभु ही के द्वारा भागवत के लीला भेद के ज्ञान प्राप्ति का सूचक है।

---

* देखो दशमस्कंध सुबोधिनी की कारिकाएँ।

इन लीलाओं के महाप्रभु द्वारा बतलाए हुए लक्षणों को ही सूरदास ने भी उक्त पद में कहा है । इससे उक्त बात की और पुष्टि होती है। महाप्रभु ने इन लीलाओं की व्याख्या इस प्रकार की है—

"अशीरस्यविष्णोः पुरुष शरीर स्वीकारः† 'सर्गः'। पुरुषाद्ब्रह्मादीनामुत्पत्ति 'विसर्गः, उत्पन्नानां तत्तन्मर्यादया पालनं स्थान', स्थितानामभिवृद्धिः 'पोषणं', पुष्टानामाचार 'ऊतिः,' तत्रापि सदाचारो 'मन्वन्तरम्' तत्रापि विष्णुभक्तिरीशानुकथा भक्तानां प्रपञ्चाभावो 'निरोधः. निष्प्रपञ्चानां स्वरूपलाभो 'मुक्तिः', मुक्तानां ब्रह्म स्वरूपेणावस्थान'माश्रयः' ।"

आचार्य श्री के इस कथन का अर्थ वही होता है, जो सूरदास ने उक्त पद में सरलरीत्या किया है* । इससे जाना जा सकता है कि महाप्रभु ने लीलाभेद से भागवत के द्वादश स्कंधों का अर्थ पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम के उपदेश द्वारा सूरदास के हृदय में स्थापित किया था । इसी के अनुसंधान से सूरदास ने श्रीमद्भागवत को दो प्रकार से गाया था । एक द्वादश स्कंधात्मक कथा रूप से, जिसको सूरसागर कहते हैं, और दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्गादि दशविध लीलाओं के सार-तत्व-रूप से, जिसको उन्होंने सारावली नाम दिया है । जैसा कि आगे स्पष्ट किया जा रहा है, सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' के आधार पर की गयी होने से उसमें उन लीलाओं के अनुकूल और पोषक अन्य पुराणादि की कथाओं का भी समावेश हुआ है । 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' में आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं के एक हजार नामों के उपरांत अन्य पुराणादि से भी तत्तल्लीला पोषक ७५ नामों को विशेष रूप से उद्धृत किया है । जैसा कि—

"पञ्चसप्तति विस्तीर्णं पुराणांतर भाषितम् ।" २४६

इसीलिए सूरदास ने भी अन्य पुराणादि की कथाओं को स्वीकार किया है । महाप्रभु जी श्रीमद्भागवत से अविरुद्ध ऐसे सर्गादि पांच लक्षण वाले अन्य पुराणों को भी 'हरि का स्वरूप' मानते हैं|| ।

---

† तत्व रूप से ।

* देखो निबंध प्रकाश' आदि ग्रंथ ।

|| पुराण हरिरेवसः । पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा । (निबंध)

भागवत के प्रथमस्कंध से द्वादशस्कंध पर्यंत कीर्तनों की 'सूरसागर' नाम से प्रसिद्धि है। यह प्रसिद्धि महाप्रभु के समय से ही है, क्योंकि वार्ता में लिखा है कि महाप्रभु सूरदास को देखते तब 'आओ सूरसागर!' इस प्रकार कहते थे।

महाप्रभु श्रीमद्भागवत को 'सागर' मानते हैं। जैसा कि—

"हृर्याविशित चित्तेन श्रीमद्भागवत सागरात्।" (पु० सहस्रनाम)

भागवत की इन्हीं दशविध लीलाओं को सूरदास के हृदय में स्थापित कर सूरदास को भी महाप्रभु ने 'सागर' बना दिया था। इससे सूरदास 'भागवत' स्वरूप हो चुके थे, इसलिए ही महाप्रभु उनको 'सागर' कहते थे। महाप्रभु द्वारा कहा हुआ 'सागर' नाम सूरदास के हृदय मे उच्छलित लीला भावों के तरंग रूप पदों से सार्थक हुआ है।

जैसा कि पहले कहा गया है 'आओ सूरसागर!' कथन की पुष्टि "सागर सूर विकार जल भर्यौ" वाले अंतःसाक्ष्य से होती है। इससे मानना होगा कि महाप्रभु के समय में ही सूरदास भागवत की द्वादश स्कंधात्मक लीलाओं को विशेषतया गा चुके थे, तभी तो वे उस समय में भी 'सागर' नाम से प्रसिद्ध थे।

अब सारावली के 'एक लक्ष पद बंद' वाले उल्लेख पर विचार करेंगे! यहाँ 'एक लक्ष' वाला कथन संख्या वाची नहीं है, किंतु वह कृष्ण का सूचक है। अर्थात् श्रीमद्भागवत में नवलक्षण—सर्गादि नव लीलाओं से लक्ष्य-आश्रय-स्वरूप-श्रीकृष्ण का ही निरूपण किया गया है। इसलिए इन दशविध लीलाओं को गाने के पूर्व उन लीलात्मक श्रीकृष्ण के पद की वंदना सूरदास ने की है। इस कथन का समर्थन 'सूरसागर' के भागवत-माहात्म्य वाले प्रारंभिक मंगलाचरण के इस पद से होता है—

"वंदों श्री गिरिधरनलाल के चरन कमल रज सदा सीस बस।
जिनकी कृपा कटाच्छ होत ही पायौ परम तत्व लीला रस† ।।"

नंददास ने भी अपने श्रीमद्भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव लक्षण से लक्ष्य श्रीकृष्ण की वंदना की है।

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसयें आश्रय रूप।
नंद बंदि लै ताहि कों श्रीकृष्णाख्य अनूप ।।

† कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य वर्णन के प्रारंभिक मंगलाचरण का पद।

उक्त सब प्रमाणों से यह निश्चित होता है कि महाप्रभु ने सूरदास को श्रीमद्भागवत के तत्व रूप' 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सुनाकर श्रीमद्भागवत और उसकी दशविध लीलाओं के भेदों को समझाया था। उसी ज्ञान के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत और तदनुकूल अन्य पुराणान्तरों की तत्तल्लीला विषयक सहायक कथाओं को भी श्रीनाथ जी की पद-वंदना कर गायन किया है। ये कथाएँ महाप्रभु द्वारा 'सूरसागर' के नाम से प्रसिद्ध हुईं और इन्हीं लीलाओं, कथाओं के सैद्धांतिक तत्व सार-रूप से उन्होंने सूर-सारावली को गाया था; अतः इन दोनों का मुख्य आधार भागवत होते हुए भी इन दोनों की रचनाओं के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे।

(च) अब हम श्रीमद्भागवत स्वरूप सूरसागर के सार रूप 'सारावली' पर विचार करेंगे—

सूरसागर में श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं का उसके स्कंध, प्रकरण और अध्यायानुसार प्राप्त कथाओं द्वारा गायन किया गया है। इन कथाओं में श्रीकृष्ण के अनेक अवतार और उनकी अनेक लीलाओं का स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत की अनेक अस्पष्ट लीलाओं को भी अपनी सुबोधिनी में कई स्थानों पर स्पष्ट किया है[1]। इससे जाना जा सकता है कि श्रीमद्भागवत में गूढ़ रूप से भी कई लीलाओं का वर्णन हुआ है।

महाप्रभु ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में श्रीमद्भागवत की स्पष्ट और अस्पष्ट सभी लीलाओं को उनके तत्व रूप एक हजार पचहत्तर नामों से प्रकट किया है। इसलिए 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को महाप्रभु ने 'भागवत सार समुच्चय' कहा है। सूरदास ने भी इसी 'सहस्रनाम' के आधार पर अपने सूरसागर की लीलाओं, कथाओं के सार तत्व रूप इस सारावली की रचना की है। इसलिए भागवत की गूढ़ लीलाएँ भी, जो 'द्वादश स्कंधों के कथात्मक' 'सूर-सागर' में स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं है, सारावली में स्पष्ट हुई हैं।

जिस प्रकार महाप्रभु ने भागवत के सार रूप पुरुषोत्तम सहस्रनाम को 'भागवत सार समुच्चय' रूप कहा है, उसी प्रकार सूरदास ने सूरसागर के सार

[1] स्वभावत एव स्त्रिया तां त्यक्त्वा अन्यथा सहास्थित इति। ततश्चेत् समागत्य प्रकर्षेण दर्शनं, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति (१०–३१–१० सु०) यहां खंडिता को स्पष्ट किया है।

रूप इस ग्रंथ को 'सारावली' कहा है। इस प्रकार 'सारावली' नाम भी पुरुषोत्तम सहस्रनाम के 'सार समुच्चय' नाम पर ही आधारित है।

अब हम 'सारावली' के तात्विक सार वाले कथन की प्रामाणिकता 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के नामों से स्पष्ट करेंगे। पुरुषोत्तम सहस्रनाम के प्रारंभ में महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

'श्रीकृष्णः'(१), सच्चिदानंदो(२), नित्यलीलाविनोदकृत्(३)।
सर्वागमविनोदीच(४), लक्ष्मीशः(५), पुरुषोत्तमः(६) ॥६॥
आदिकालः(७) सर्वकालः(८), कालात्मा(९), माययावृतः(१०) ॥६॥

इन्हीं नामों के अनुसार सूरदास अपनी सारावली के प्रारंभ में श्रीकृष्ण के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

'अविगत, आदि, अनंत, अनूपम, अलख, पुरुष अविनासी।
पूरनब्रह्म, प्रकट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ॥ १ ॥

सारावली के इस वर्णन में 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के उक्त नामों का इस प्रकार समावेश हुआ है—

*१. 'अविगत' = सर्वागमविनोदी(४), २. 'आदि' आदि कालः(७), ३. 'अनंत' = सर्वकालः(८), ४. 'अनूपम = लक्ष्मीशः(५), ५. 'अलख' = माययावृतः(१०), ६ 'पुरुष' = सच्चिदानंदो(२), ७. 'अविनासी' = कालात्मा(९), ८. 'पूरनब्रह्म' = श्रीकृष्णः(१), ९. 'प्रगट पुरुषोत्तम' = पुरुषोत्तमः(६), १०. 'नित निजलोकविलासी' = नित्य लीलाविनोदकृत्(३)।

सूरदास 'नित निज लोक विलासी' का विशदीकरण सारावली में इस प्रकार करते हैं—

---

* इन नामों के स्पष्ट अर्थों को जानने के लिए देखो, गो० श्रीरघुनाथजी कृत 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम की टीका' तथा महाप्रभु कृत सुबोधिनी आदि अन्य साहित्य।

'नित्यलीलाविनोदकृत्' नाम का विवरण—

'जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार ॥२॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस हंस चकोर मोर खग कूजत कोकिल कीर ॥३॥
जहाँ गोवर्द्धन पर्वत मणिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निशदिन करत विहार' ॥४॥

आगे 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा', 'जगत्कर्ता' 'जगन्मयः।' नामों का विशदीकरण सूरदास ने सारावली में चौबीस अवतारों के वर्णन से तथा सृष्टि की उत्पत्ति और तत्वों से किया है। जैसा कि—

खेलत खेलत चित्त में आई 'सृष्टि करन विस्तार'।
अपुने आपु करि 'प्रगट कियौ है हरि पुरुष अवतार ॥५॥

इसमें 'जगत्कर्त्ता' नाम का सूचन है। इसका विस्तार आगे और भी किया गया है। आगे 'जगन्मयः' नाम का सूचन इस प्रकार हुआ है—

'कीने तत्त्व प्रगट तेही क्षण सबै अष्ट अरु बीस।'

इन अट्ठाईस तत्वों से परब्रह्म ही इस जगत् रूप हुए हैं, ऐसा शुद्धाद्वैत सिद्धांत है,‖ अतः इससे 'जगन्मयः' नाम का सूचन होता है।

चौबीस अवतारों का हेतु मुख्यतः भक्तों के उद्धार का है, इसलिए उनके वर्णन से 'भक्तोद्धारप्रयत्नात्मा' नाम का स्वतः बोध होता है।

सारावली में सर्गादि दस लीलाओं का इस प्रकार वर्णन किया गया है – महाप्रभु ने सर्ग लीला दो प्रकार की मानी हैं—अलौकिक और लौकिक।

अलौकिक सर्ग श्रीकृष्ण की 'निर्गुण-त्रिगुणातीत-लीला सृष्टि की उत्पत्ति' है। इसका वर्णन सूरदास ने सारावली के प्रारंभ में पूर्वोक्त २-३-४ तुकों में तथा आगे भी किया है।

लौकिक सर्ग अट्ठाईस तत्व आदि की उत्पत्ति है। इसका वर्णन सारावली में तुक ५ से १० तक किया है। इस उत्पत्ति का प्रकार भी महाप्रभु के कथनानुसार ही है, जैसा कि महाप्रभु अपनी 'भगवत्पीठिका' में सृष्टि-उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

‖ 'अष्टाविंशति तत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः।' (निबंध)

"श्रीपुरुषोत्तमस्य सृष्टेरिच्छा यदा जायते 'तदा रविकाश्मिरयोगो' 'यथा वह्निः प्रजायते तथा 'कालोऽक्षरराज्जातः सदानंदकटाक्षतः पृथक् भवति । भ्रुवो रंध्राद्दुत्पद्यते 'कालात्प्रकृतिपुरुषौ' । 'प्रकृतेर्गुणात्मको' 'नारायणो' लक्ष्मीपतिः । 'तस्य' मनसो विष्णुः । ललाटाद्रुद्रः । नाभिकमलात् 'ब्रह्माजातः' ।"

इसी को सूरदास ने सारावली में इस प्रकार कहा है—

"खेलत खेलत चित्त में आई सृष्टि करन विस्तार ।
'अपुने आप करि' प्रगट कियौ है 'हरि पुरुष अवतार ॥५॥
माया क्षोभ कियौ बहु बिधि करि 'काल पुरुष के अंग ।
'राजस तामस सात्त्विक' 'त्रैगुण' 'प्रकृति पुरुष' कौ संग ॥६॥

तथाच—

अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः ।

इस निबंध वाक्य और 'तत्त्वकर्ता' यह 'सहस्रनाम' वाले (श्लोक २७॥) नाम के अनुसार सूरदास सारावली में २८ तत्त्वों का इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

कीने तत्त्व प्रगट तेहि क्षण सबै अष्ट अरु बीस ।
तिनके नाम कहत कवि 'सूर' जो 'निर्गुण' सब के ईस ॥७॥
'पृथ्वी','अप','तेज','वायु','नभ', संज्ञा 'शब्द', 'परस' अरु 'गंध' ।
'रस' अरु 'रूप , और 'मन','बुद्धि','चित्त', 'अहंकार' मति अंध ॥८॥
'पान', 'अपान', 'व्यान', 'उदान', और कहियत 'प्रान' समान ।
'तक्षक', 'धनंजय', पुनि 'देवदत्त' और 'पौंड्रक' 'शंख' 'द्युमान' । ६॥
'राजस', 'तामस', 'सात्त्विक' तीनों जीव, ब्रह्म सुखधाम ।
अट्ठाइस तत्त्व यह कहियत सो कवि 'सूर' जो नाम ॥१०॥

इस प्रकार द्विविध सर्गों के वर्णन के अनंतर ब्रह्मादि की उत्पत्ति से सूरदास विसर्ग का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नाभि कमल 'नारायण' की सो वेद गरभ अवतार ।
नाभि कमल में बहुत ही भटक्यौ तउ न पायौ पार ॥११॥
तब आज्ञा भई यह हरि की नभ करो परम तप आप ।
तब ब्रह्मा तप कियौ वर्ष सत दूर किये सब पाप ॥१२॥
तब दर्शन दीन्हों करुणाकर परमधाम निज लोक ।
ताकौ दर्शन देखि भयौ अज सब बातन निःशोक ॥१३॥

जहाँ आदि 'निजलोक' महानिधि 'रमा सहस संजूत'।
आंदोलन झूलत करुणानिधि रमा सुखद अति पूत ॥१४॥
अस्तुति करें बिबिध नाना करि परम पुरुष आनंद।
जै जै जै श्रुति गीत गाय कै पढत हैं नाना छंद ॥१५॥
आज्ञा करी 'नाथ' चतुरानन करो सृष्टि विस्तार।
होरी खेलन की बिधि नीकी रचना रचे अपार ॥१६॥
दश ही पुत्र भये ब्रह्मा के जिन संच्यौ संसार।
स्वायंभू मनु प्रगट तब कीने अरु शतरूपा नार ॥१७॥

सारावली के इस वर्णन मे ब्रह्म की उत्पत्ति नारायण के नाभी कमल से हुई, ऐसा ज्ञात होता है। यह बात पूर्वोक्त 'पीठिका' के उल्लेख के अनुसार ही है। इसी प्रकार ब्रह्मा को जिस 'निज लोक' के दर्शन कराये हैं, वह 'अलौकिक सर्ग' का सूचक है। महाप्रभु ने—

'नमामि हृदयेशेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
'लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः' सेव्यमानं कलानिधिम्॥"

इस श्लोक में भगवान के दिव्य रूप का जो उल्लेख किया है, उसी के अनुसार सूरदास ने 'रमा सहस संजूत' आदि को यहाँ और अन्यत्र भी कहा है। यह महाप्रभु का कहा हुआ 'अलौकिक सर्ग' है।

यहाँ ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि की रचना का कथन 'विसर्ग' है। इसमें 'आदि कर्त्ता' नाम सार्थक हुआ है।

महाप्रभु 'पुरुषाद्ब्रह्मादीनामउत्पत्तिर्विसर्गः' जिस प्रकार कहते हैं, उसी प्रकार सूरदास 'ब्रह्माकृता विसर्ग है सोय' कहते हैं। इसी के अनुसार यहाँ आदि पुरुष से ब्रह्मा और शतरूपा, स्वायंभू आदि की उत्पत्ति के वर्णन द्वारा विसर्ग का सूचन किया गया है।

फिर पृथ्वी आदि की स्थिति एवं चौदह लोक के निर्माण द्वारा 'स्थान' का निरूपण सारावली में तुक १९ से ३४ तक किया गया है। यथा—

सातों द्वीप कहे सुक मुनि ने सोई कहत अब सूर।
जंबू प्लक्ष क्रौंच शाक शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर ॥३४॥

इसी प्रकार पोषण (अनुग्रह) और उति लीला (कर्मवासना) का सूचन सूरदास ने तुक ३५-३६ में इस प्रकार किया है—

अपने अपने 'स्थानन' पर 'फगुवा' दियौ चुकाय।
जब जब हरि माया तें दानव प्रकट भये हैं आय ॥३५॥

तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीनों 'असुर संहार' ।३५६॥

यहाँ 'फगुवा' के नाम से स्थानाधिपतिओं को अधिकार देकर अभिवृद्धि करने का सूचन है। यही पोषण-अनुग्रह रूप है। महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि- "स्थिता नाम अभिवृद्धि पोषणं"।

इसी प्रकार देव और दानवों को कर्मों में प्रवृत्त कर सद्-असद् वासना रूप उति-लीला आप करते हैं। पुनः अवतार लेकर दानवों के नाश द्वारा आप भक्ति की प्रवृत्ति करते हैं—यही सद् वासना है। ऐसे सद्, असद् और सद्-असद् वासना रूपी उति-लीला का भी यहाँ सूचन हुआ है।

इस प्रकार ३५ तुकों से श्रीकृष्ण की सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और उति ऐसी पांच लीलाओं को तत्वरूप मे सूरदास ने सारावली में गाया है। तत्वरूप से इसलिए कि उनमें तत्तत्कथाओं का विस्तार नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि ये कथाएँ विस्तार से सूरसागर में कही जा चुकी हैं, अतः यहाँ पर उनको तत्वरूप से कहा गया है।

महाप्रभु के मत से भागवत की ये पांच लीलाएँ 'भगवदन्वय' रूप हैं, अर्थात इन पांच लीलाओं में भगवान् का समन्वय है। भगवान् कारण रूप से उनमें रह कर इन लीलाओं को करते हैं। शेष मन्वंतरादि पांच लीलाएँ 'व्यतिरेक' वाली हैं, अतः उनमें भगवान् भिन्न रूप से दिखायी देते हैं। इसीलिए उन लीलाओं का निरूपण सूरदास ने २४ अवतारों के कार्यों द्वारा सारावली में विस्तृत रूप से किया है। इस प्रकार सूरसागर रूपी भागवत में भगवान् के अनेक अवतारों का जो निरूपण किया गया है, उनके सार रूप से सारावली में मुख्यतः २४ अवतारों का वर्णन हुआ है। अन्य पुराणादि के सहारे उनकी कथाओं का विस्तार और गौण रूप से अन्य अवतारोंका भी उसमें उल्लेख हुआ है, जो कि तत्तत् लीलाओं के पोषक हैं। इस प्रकार सारावली में श्री वल्लभ गुरु द्वारा बतलाए हुए तत्व और दशधा लीलाओं का उल्लेख हुआ है।

महाप्रभु ने वाल्मीकि रामायण और महाभारत को भी शास्त्र रूप में प्रमाण माना है†, इसलिए इन दोनों ग्रंथों की विशेष कथाओं को भी सारावली में गाया गया है। जैसा कि—

† अर्थोऽयमेव 'निखिलैरपि वेदावाक्यैः 'रामायणैः' सहित 'भारत' पंचरात्रैः।
अन्यैश्च 'शास्त्रवचनैः सह तत्त्व 'सूत्रै' निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव।

रामायण— ब्याह केलि सुख बरनन कीनों मुनि वाल्मीकि अपार ।
सो सुख 'सूर' कह्यौ यह कीरति जगत करी विस्तार ॥२४२॥

महाभारत— सभा रची चौपर क्रीडा करि कपट कियौ अति भारी ।
जीत युधिष्ठिर भई सब जानीं तउ मन में अधिकारी ।७६२

सूरदास ने सागर और सारावली में अन्य पुराणों की कथाओं को भी स्वीकार किया है । इसका उल्लेख भी उन्होंने कहीं-कहीं किया है । जैसा कि—

सो 'ब्रह्मांड पुराण' व्यासमुनि कियौ वदन उच्चार । १६२ ।

इस प्रकार सारावली 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' और द्वादशस्कंध के कथात्मक 'सूरसागर' के तात्विकसार रूप सिद्ध होती है । भाषा, भाव, वर्णन शैली, कथा के प्रकार और सिद्धांतादि के साम्य से भी इसकी पुष्टि होती है । इससे सारावली के निम्न कथन की प्रामाणिकता निर्विवादतः स्पष्ट होती है —

कर्मयोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला-भेद बतायौ ॥
ता दिन तें यह लीला गाई एक लक्ष पद बंद ।
ताकौ सार "सूर" सारावली गावत अति आनंद ॥

उपर्युक्त विवेचन से भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि 'सारावली' के रचयिता अष्टछाप के सूरदास ही थे । इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि महाप्रभु जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना सूरदास के लिए की थी, अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी के लिए नहीं, जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है । सूरसागर के तात्विक सार रूप होने के कारण सारावली सूरदास की स्वतंत्र रचना सिद्ध होती है, क्यों कि सूरसागर और सारावली के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं ।

अब हम 'सारावली' में कथित '६७ बरस प्रवीन' और 'सरस संवत्सर लीला' इन दो महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करते हैं । ये दोनों कथन ऐतिह्य दृष्टि से एक दूसरे के सापेक्ष हैं, अतः हम उन दोनों पर एक साथ विचार करते हैं ।

'सरस संवत्सर लीला" वाले कथन को स्पष्ट करने से '६७ बरस प्रवीन' वाला कथन अपने आप स्पष्ट हो जाता है, इसलिए सब से प्रथम 'सरस संवत्सर लीला' वाले उल्लेख पर ही विचार किया जाता है ।

सूरदास की कही हुई "सरस संवत्सर लीला" कौनसी है, यह जानना सर्व प्रथम आवश्यक है। श्री मुंशीराम जी शर्मा 'सरस' नामक संवत्सर की कल्पना द्वारा व्यर्थ उलझन में पड़ गये हैं‡। हमारा निश्चित मत है कि 'सरस' नाम का कोई संवत् नहीं होता है। ऐसी दशा में 'सरस संवत्सर लीला' का अर्थ होगा संवत्सर की सरस लीला। यहाँ संवतत्सर की सरस लीला का तात्पर्य श्रीकृष्ण की वर्ष भर की दान-मानादि रसात्मक लीलाओं से है, जिनको सूरदास ने सारावली में गाया है। इन लीलाओं के उल्लेखों का महत्व तब समझ में आ सकेगा, जब हम वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांत और उसकी सेवा-प्रणाली विषयक आवश्यक अंगों को जान लेंगे।

वल्लभ संप्रदाय में 'रसोवैसः' 'सर्वरस.' आदि श्रुतियों के आधार पर परब्रह्म को रसात्मक माना है। महाप्रभु के मत से यह रसात्मक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं, अतः पुष्टिमार्ग के परमदैवत् तथाच उपास्य देव भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

ये रसात्मक श्रीकृष्ण अपने वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं संकर्षण व्यूहों से ब्रज में प्रगट हुये थे। उन चार व्यूहों से उन्होंने मोक्ष, वंशवृद्धि, धर्मोपदेश तथाच संहार कार्य किया था। धर्मी मूलस्वरूप रसात्मक श्रीकृष्ण ने तो एक मात्र आनंददायी लीलाएँ की हैं। महाप्रभु के मत से ये धर्मी स्वरूप की स्थिति केवल ब्रज में और भक्तों के हृदय में रहती है, क्यों कि इनको केवल भाव रूप माना गया है। भक्त जब, जैसे और जहाँ इस स्वरूप की भावना करते हैं, तब वैसे और वहाँ वह स्वरूप प्रकट होकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करता है। इसलिए यह स्वरूप और उसकी लीलाएँ भी नित्य मानी गयी हैं। ऋग्वेद आदि से भी लीला की नित्यता का समर्थन होता है*।

रसात्मक भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रज में श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए प्रकट होकर उनके साथ अनेक प्रकार की आनंदमयी लीलाएँ की हैं। इन लीलाओं का वर्णन श्रीमद्भागवत तथाच पद्म, ब्रह्म, बाराह आदि पुराण और गर्ग संहिता, नारद पंचरात्रि आदि में प्राप्त है।

---

‡ सूर सौरभ, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३३

* ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यैयत्र गावो भूरिश्रृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमंपदमवभाति भूरि॥
—ऋग्वेद (२-२-२४)

इन प्रमाणों के आधार पर पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना का निर्माण हुआ है। इसमें नित्य और वर्षोत्सव की भावनाएँ प्रधान हैं। नित्य की भावना में भगवान् श्रीकृष्ण नंदालय में बाल भाव से और निकुंज में किशोर भाव से प्रातःकाल से शयन तक अनेक प्रकार की आनंदात्मक लीलाएँ करते हैं। वर्षोत्सव की भावना में भगवान की प्रागट्य लीला से लगाकर हिंडोलना पर्यंत की षट्ऋतु आदि की लीलाओं का समावेश हुआ है। ये सब लीलाएँ रसात्मक ब्रह्म के संबंध वाली होने से सरस हैं।

नित्य की भावना और वर्षोत्सव की भावनाओं का क्रमबद्ध वर्णन पुष्टि-मार्गीय सेवा प्रणाली के अनुसार सूरदास ने सारावली में तुक ८७० से १०८९ तक किया है। पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम जन्माष्टमी से माना गया है, इसलिए सूरदास ने भी जन्माष्टमी से ही इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

जन्माष्टमी (भाद्र० कृ० ८-९)—

नित प्रति मंगल रहत महर के, नितप्रति बजत बधाई।
नितप्रति मंगल कलस धरावत, नितप्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

ये सब बातें पुष्टिमार्ग की सेवा में प्रति वर्ष होती हैं। श्रीमद्भागवत दशमस्कंध के जन्म प्रकरण की देवस्तुति भी पढ़ी जाती है।

राधाष्टमी (भाद्र शु० ८)—

श्री वृषभानुराय के आंगन नितप्रति बजत बधाई।

पुष्टिमार्ग में जन्माष्टमीवत् राधाष्टमी भी प्रतिवर्ष मानी जाती है।

बाललीला—

बाल केलि क्रीडत ब्रज आंगन जसुमति कों सुख दीन्हों।

जन्माष्टमी और राधाष्टमी के बीच बाललीला गायी जाती है। पलना आदि भी होते हैं।

चंद्रावली आदि का उत्सव (भाद्र शु० ५-६-७)—

चंद्रावली गोप की कन्या चंद्रभाग गृह जाई ॥८७२॥

पुष्टिमार्ग में भादों सुदी ५ को चंद्रावली जी का, सुदी ६ को विशाखा जी का तथा सुदी ७ को ललिता जी का प्रागट्योत्सव माना जाता है।

दान (भाद्र शु० ११ से)—

लूट लूट दधि खात साँवरौ जहाँ साँकरी खोर। (८७३ से ८९४)

इसी दान के प्रकरण में सूरदास ने नंदालय और निकुंज की नित्यकेलि के क्रमों को भी ले लिया है, जो पुष्टिमार्गीय भावना के अनुकूल हैं।

पुष्टिमार्ग में दान, होरी, रास आदि उत्सवों में नित्य की तथाच वर्षोत्सव की सभी अनुकूल भावनाओं का समावेश किया जाता है। इस बात की पुष्टि इन पदों† से होती हैं—

(१) होरी में दान की भावना—

माई मेरौ मन मोह्यो साँवरे अब घर हो मोपै रह्यौ न जाय।

इस होरी की धमार में—

माई हौं गोरस लै निकसी श्री वृंदावन ही मँझार।
आय अचानक औंचका मटुकी हो मेरी दीनी ढार ॥ (त्रिलोकी)

(२) दान की धमार—

सखी री रसिया नंदकुमार दधि बेचन गई री।
गलिन गलिन सखी हौं फिरी दधि काहु नांहि लई री ॥(सूरदास)

(३) कनक पुरी होरी रची मोहन ब्रज बाला।
कहाँ की तुम ग्वालिनी मोहन ब्रज बाला।
कहाँ दधि बेचन जाय मोहन ब्रज बाला। (छीतस्वामी)

होरी में मंगला से शयन पर्यंत की नित्य की भावना के अनेक पद प्राप्त होते हैं, जैसा कि—

आज भोरहिं ब्रज युवतिन रोर मचायौ ॥ आदि

इन पदों से उक्त बात की पुष्टि होती है। इसी भावना के अनुसार सूरदास ने दान प्रकरण में निकुंज तथा नंदालय की नित्यकेलि की इस प्रकार संगत भावनाएँ की हैं—

इंदा वृंदा और राधिका चंद्रावलि सुकुमारि।
बिमल बिमल दधि खात सबनकौ करत बहुत मनुहारि॥८६५॥
गहि बहियाँ लै चले स्याम घन सघन कुंज के द्वार।
पहले सखी सबै रचि राखी कुसुमन सेज सँवार ॥८६६॥

---

† १-२-३ पद देखो त्रिकमचकु द्वारा प्रकाशित 'वर्षोत्सव के पद', द्वितीय भाग, पृ० ४४४—४८०

नाना केलि सखिन संग बिहरत नागर नंद कुमार।
गोवर्धन की सघन कंदरा कीनौं रैन निवास।
भोर भये निज धाम चले अति आनंद विलास ॥६८१॥

नंदालय की मंगला से राजभोग पर्यंत की लीला—

नंद धाम हरि बहुरि पधारे पौढ़ रहे निज सैन।
यसोमति मात जगावत भोरहिं जागे अंबुज नैन ॥६८२॥
करी मुखारी और कलेऊ कीनों जल असनान।
करि शृंगार चले दोऊ भैया खेलन को सुखदान ॥६०३॥
कहुँ खेलत कहुँ ग्वाल मंडली आँख मिचौनी खेल।
भोजन समय जात यसुमति ने लीनें दुहुन बुलाय ॥६०५॥

पुनः निकुंज की नित्य लीला (मान आदि)—

राधा सों मिलि अति सुख उपज्यौ उन पूछी यक बात ॥६१०॥
द्वितीय रूप देख अबला कौ मान बढ़्यौ तन छाँह ॥६१४॥

निकुंज के मंगला शृंगार आदि—

जागे प्रात निपट अलसाने भूषन सब उलटाने।
करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिथिलाने ॥१०१६॥

सांझ की उत्थापन आदि की लीला बन की है, उसका वर्णन—

कंद मूल फल दीने गोधन सो निशि कों मैं खायौ ॥६११३॥

दान के पद १२ दिन तक गाये जाते हैं। इस लिए भी नित्य की भावनाएँ संगत होती हैं।

निकुंज प्रकरण में सूरदास ने रास, व्रतचर्या, जल-विहार और हिंडोलना की लीलाओं को प्रसंगानुसंधान तथा इन भावनाओं के अनुकूल होने से ले लिया है, जैसा कि—

नित्यरास—

नाना बंध विधि रस क्रीडा खेलत स्याम अपार ॥ ६७६ ॥
यह निकुंज कौ वर्णन करिके वेद रहे पचिहार।
नेति नेति कहेउ सहस वेद विधि तऊ न पायौ पार ॥१००६॥

इस स्थान पर सूरदास ने बृहद् बामन पुराण तथा पद्म पुराण की उन कथाओं का भी उल्लेख किया है, जिनका संबंध रासलीला से है। बृहद् बामन पुराण के अनुसार श्रुतियों को ब्रह्म ने अपने निर्गुण रसात्मक स्वरूप तथा

अपनी आनंदमयी लीला का दर्शन देकर उनको अपने स्वरूपानंद देने का वरदान दिया था। इसलिए सारस्वत कल्प में ये श्रुतियाँ ब्रज में गोपियों के रूप में प्रकट हुई थीं। इसी प्रकार दण्डकारण्य के ऋषियों को रामचंद्र जी ने वरदान दिया था, अतः वे ब्रज में कुमारिकाओं के रूप में हुए। यह कथा पद्मपुराण में है।

इन गोपियों और कुमारिकाओं के साथ कृष्ण ने रासलीला की थी, अतः पुष्टिमार्ग में रास का उत्सव आश्विन शु० १५ को माना जाता है। इसके अनुसार सूरदास ने यहाँ दोनों प्रकार के रास का वर्णन किया है—एक नित्य-रास, जो निकुंजादि में विविध प्रकारों से होता है और दूसरा कृष्णावतार का रास।

'नाना बंध विधि रस क्रीड़ा' वाला सारावली का पूर्व वर्णन नित्यरास का सूचक है और तुक १००७ से १००६ का रास अवतार दशा का है। सूरदास ने वहाँ इस प्रकार उल्लेख किया है—

कृष्णावतार का रास—

सो श्रुति रूप होय ब्रजमंडल कीनों रास विहार।
नवल कुंज में अंश बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ।।१००८।।
पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
'चरन प्रसाद राधिका' देवी उन हरि कंठ लगाय ।।१००६।।

व्रतचर्या—

'चरन-प्रसाद राधिका देवी' से यहाँ तात्पर्य है, श्रीकृष्ण की तामस आधिदैविक शक्ति रूप 'कात्यायनी' से। 'राधिका' शब्द 'राधस्' मुख्य शक्ति वाचक है। उनकी आराधना से ही कुमारिकाओं को रास का वर प्राप्त हुआ था$। इसमें हेमंत मास की व्रतचर्या की भी सूचना मिलती है। पुष्टिमार्ग में व्रतचर्या का उत्सव मार्गशीर्ष कृ० १ से एक मास पर्यंत माना जाता है, अतः रास और व्रतचर्या का क्रम भी सेवा-प्रणाली के क्रमशः संगत ही रहता है।

इसके आगे सारावली में जल विहार और झूला का जो वर्णन निकुंज की नित्य-केलि में आया है, वह वर्षोत्सव के क्रम से संगत नहीं है, क्योंकि वर्षोत्सव के क्रम में ये उत्सव उष्णकाल और वर्षाऋतु में होते हैं।

सूरदास ने इन उत्सवों का यहाँ उल्लेख कर जिस प्रकार निकुंज केलि के वर्णन में विशेषता की है, उसी प्रकार यह भी सूचित किया है कि ये दोनों

$ इस विषय का विस्तृत विवेचन महाप्रभु ने अपनी सुबोधिनी तथा श्री विट्ठलेश ने अपनी टिप्पणी में किया है।

उत्सव प्रत्येक ऋतु में होते हैं। इसलिए इनमें क्रम का प्राधान्य नहीं दिया है। युगलगीत के श्लोक और लीलाओं की संगति से भगवान श्रीकृष्ण पौष में भी जलविहार करते हैं, यह सुबोधिनी प्रभृति से जाना जा सकता है। चूंकि संप्रदाय की सेवा में वात्सल्य भाव का प्राधान्य है, अतः जलविहार को उष्णकाल के क्रम में रखा गया है, अन्यथा किशोर भाव से तो शरद्-ऋतु में भी रासोत्सव के समय प्रभु ने जलक्रीड़ा की ही है।

इस प्रकार ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण के जलविहार तथा हिंडोला के उत्सवों के क्रम को सारावली में निकुंज की नित्य केलि के साथ ले लिया है। जैसा कि—

'कबहुँक' केलि करत यमुना जल सुंदर 'शरद' तडाग।'
'कबहुँक' मधुर माधुरी 'झूलत' आनँद अति अनुराग॥१०२३॥

इन वर्णनों के अनंतर सूरदास ने वसंत, होरी, डोल और बनविहार (फूलमंडलिओं) की लीलाओं को तुक १०२४ से १०८८ तक गाया है, जो सांप्रदायिक वर्षोत्सव की भावनाओं से क्रम के अनुकूल हैं।

'प्रथम 'बसंत पंचमी' शुभ दिन मंगलचार बधाये।' १०२४।

संप्रदाय की प्रणाली के अनुसार बसंत माघ शु० ५ से शु० १४ तक माना जाता है। शु० १५ को होरीदांडारोपण होता है। इसका उल्लेख सारावली में इस प्रकार है—

होरी दाडों दिवस जानिके अति फूले ब्रजराज। १०५०॥
विप्र बुलाय वेद विधि करिके होरी दांडो रोप।१०५१॥

फिर फाल्गुन कृ० १ से फाल्गुन शुक्ल १५ तक तीस दिन की होरी मानी जाती है, जिसका मितिवार वर्णन सारावली में इस प्रकार प्राप्त होता है—

'परिवा' प्रथम दिवस होरी को नंदराय गृह आई। १०५२।
'शुक्लपच्छ' परिवा पुरुषोत्तम क्रीडा करत अपार। १०६७।
'पून्यौ सुख पाये ब्रजवासी होरी हरख लगाय। १०८४।

फिर 'डोल'—

यशुमति माय लाल अपुने को 'शुभ दिन डोल' झुलायो।

यहाँ शुभ दिन इसलिए कहा गया है कि पुष्टिमार्ग में श्रीविट्ठलेश व निर्णय के अनुसार 'उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र' जिस दिन हो, उसदिन प्रभु को डोल झुलाने का नियम है। मिति निश्चित नहीं है। उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र १५-१-२ इन फाल्गुन शुक्ल और चैत्र कृष्ण के दिनों में किसी एक दिन आता है।

चैत्र कृ० २ को द्वितीया को पाट का उत्सव माना जाता है। उसमें गोपादि की यमुना स्नान की तथाच प्रभु के पाट विराजने की भावनाएँ हैं। इस आधार पर सूरदास ने सारावली में गाया है कि—

'यमुना जल क्रीडत' व्रजवासी संग लिये गोविंद।
सिंहद्वार 'आरती उतारत' यसुमति आनंद कंद ॥१०८७॥

फिर वनविहार की भावना से संप्रदाय में दो-तीन मास तक फूलमंडलियाँ होती हैं। इनमें उपवन क्रीडा-कुंज और निकुंजादि की भावना है। इसीलिए उन दिनोंमें कुंज-निकुंजादि के पद भी गाये जाते हैं। यथा—'चलो किन देखन कुंज कुटी' इत्यादि। इस वनविहार की भावना सारावली में इस प्रकार प्राप्त है—

यह विधि क्रीडत गोकुल में हरि निज वृंदावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुंदर बहुलावन अभिराम ॥१०८८॥
नंदग्राम संकेत खिदरवन और कामवन धाम।
लोहवन माँट बेलवन सुंदर भद्र महदवन ग्राम ॥१०८९॥
चौरासी व्रज कोस निरंतर खेलत हैं बल मोहन।

इस प्रकार सूरदास ने पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव की लीला भावनाओं को सारावली में 'सरस संवत्सर की लीला' रूप में गाया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है वर्षोत्सव की सेवा-भावना का विधि पूर्वक निर्माण गो० विट्ठलनाथ जी ने बड़ी अद्भुत रीति से किया था। इस रीति के अनुसार सेवा करने से कलियुग में भी द्वापर का अनुभव होता है। भक्तमाल के रचयिता नाभा जी ने इसीलिए गाया है कि—

"राग भोग नित विविध रहत परिचर्या तत्पर।
सज्या भूषन बसन रुचिर रचना अपने कर॥
वह गोकुल वह नंद-सदन दीक्षित कौ सोहै।
प्रगट विभौ जहाँ घोष देखि सुरपति मन मोहै॥
बल्लभ सुत बल भजन के, 'कलियुग में द्वापर कियौ।
बिट्ठलनाथ व्रजराज ज्यों, लाल लड़ाय कै सुख लियौ॥'

गो० विट्ठलनाथ जी ने इस कलियुग में कृष्णलीलाओं को सेवा-प्रणाली द्वारा साक्षात् कर दिखाया था, इसीलिए सूरदास ने गाया कि 'गुरुप्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।' अर्थात् महाप्रभु और विट्ठलनाथ जी के प्रसाद से ही आज मुझे अपनी सरसठ वर्ष की आयु में यह संपूर्ण साक्षात्कार की भावनाओं वाली सेवा की नित्य और वर्षोत्सवों की लीलाओं के दर्शन हो

रहे हैं। इन लीलाओं के समझने में सूरदास उस समय 'प्रवीन' हो चुके थे, अतः उन्होंने अपने लिये 'प्रवीन' शब्द का भी प्रयोग किया है। इन लीला-भावनों के ज्ञान में प्रवीणता की नितांत आवश्यकता है, क्यों कि जब तक लीला भेद नहीं जाना जाय, तब तक इन भावनाओं का वास्तविक ज्ञान भी नहीं हो सकता है। इसी महत्ता को प्रकट करने के लिये सूरदास ने शिवजी का दृष्टांत भी दिया है कि अनेक विधानों से बहुत दिनों तक तप करने पर भी मर्यादा भक्त शिरोमणि शिवजी ने भी इस लीला का पार नहीं पाया है, अर्थात् उनको भी इसका अनुभव नहीं हुआ है। शिवजी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने रामचरित्र आदि कई स्थानों पर अन्यत्र भी कहा है—

सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव रामचरित सुखसार।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ तऊ न पायौ पार ॥१४७॥

नहिं प्रवेस अज, सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार ॥६६६॥

सूरदास अपने को अन्य स्थानों पर भी प्रवीन, चतुर, सुजान, आदि कहते हैं, यथा—

"व्रज बधू बस किये मोहन 'सूर' 'चतुर सुजान'।"

संप्रदाय के इतिहास की संगति के अनुसार गो० विट्ठलनाथ जी ने वर्षोत्सव के अद्भुत सेवा प्रकार का निर्माण वि० सं० १६०२ में किया था। उस समय सूरदास ६७ वर्ष के थे। इससे सूरदास का जन्म वि० सं०१५३५ में होना सिद्ध होता है, जैसा गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है।

सारावली के अनंतर सूरदास ने 'सेवाफल' की रचना की है। इसमें उन्होंने सेवा के विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

सेवा की यह 'अद्भुत रीति'। श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति ॥

इस कथन से उक्त बात की पुष्टि होती है। श्री विट्ठलनाथ ने महाप्रभु की प्रकट की हुई सेवा में वर्षोत्सव की भावनाओं को अद्भुत रीति से स्थापित कर उनका विस्तार किया है। इसका रहस्य श्री विट्ठलनाथ पर प्रीति रखने से ही प्राप्त हो सकता है, क्यों कि ये भावनाएँ उनकी स्वतंत्र खोज की हुई वस्तुएँ हैं।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि सारावली में सर्गादि लीलाओं के साथ वर्षोत्सव की सेवा-भावना को क्यों मिलाया गया है? इसका उत्तर इस प्रकार है—

(१) वर्षोत्सव की सेवा-भावना का पर्यवसान निरोध में है। इससे प्रपंचासक्ति दूर होकर भगवदासक्ति सिद्ध होती है। इसलिए सारावली के तत्व रूप आठवीं निरोध लीला से उसकी संगति होती है, अतः उसका विस्तार यहाँ आवश्यक था।

(२) वर्षोत्सव की इन लीलाओं की संगति सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि के प्रति कही हुई ब्रज लीलाओं के वर्णन से की है, इसलिए भी ये आवश्यक हैं। जैसा कि—

एक दिना रुकमनि सों माधव करत बात सुखदाई।
सुनि रुकमनि राधिका बिनु मोहि पल छिन कल्प बिहाई॥

श्रीकृष्ण का यह कथन भागवत की कथा में नहीं है, किंतु पुराणांतर में प्राप्त है, अतः उसकी पूर्ति सूरदास ने इस वर्णन से की है।

विशेष मिलान—

सारावली—(१) कंचन बरन जात तेरो वपु 'पीतांबर' पहिरावै। ६३४

पद—वे जो धरत तन कनक 'पीतपट' सो तो सब तेरी गति ठानी।

सारावली (२) वायस अजा शब्द मन मोहन रटत रहत दिन रैन।६५५।

दृष्टिकूट पद—वायस अजा शब्द कों मिलिवौ ता कारन उठि धावै।

कवि-छाप के प्रयोगों की शैली भी सूरसागर के समान होने के कारण इसी की पुष्टि करती है। जैसा कि—

सारावली— (३) सातों द्वीप कहे शुक मुनि ने 'सोई' कहत अब सूर।

फलश्रुति —

सूरदास की बड़ी बड़ी सभी रचनाओं में जिस प्रकार फलश्रुति मिलती है, इसी प्रकार इस में भी है। इससे भी इसकी प्रामाणिकता की पुष्टि होती है।

इस रचना की विशिष्टता यह है कि सारावली के प्रारंभ में जिस 'अविगत आदि अनंत अनूपम' स्वरूप और उसके नित्य अलौकिक विहार का संकेत किया गया, है उसी स्वरूप और विहार के वर्णन का अंत में भी उससे मिलान किया है। जैसा कि —

सदा 'एक' रस 'एक अखंडित' 'आदि', 'अनादि', 'अनूप'।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत विहरत युगल स्वरूप'॥१०६६॥

इसी प्रकार होरी के वर्णन की भी समाप्ति इस प्रकार की है—

संकर्पन के वदन अनल तें उपजी अग्नि अपार।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सों मानों होरी दई पजार॥११००॥

यहाँ उत्पत्ति, पालन और प्रलय करने वाले 'आश्रय' स्वरूप ब्रह्म का वर्णन समाप्त होता है।

इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत का भी अंत में सूचन इस प्रकार किया गया है—

सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण 'सब हैं अंश' गोपाल।११०१॥

इस प्रकार सारावली का प्रारंभ और अंत एकसा है। इससे कवि की काव्य-निपुणता भी प्रकट होती है। ऐसी रचना सूर के सिवाय और कोई नहीं कर सकता है।

होरी भावना का रहस्य—

सारावली में जगत् की उत्पत्ति का वर्णन होरी की लीला के रूपक से किया गया है। इसका रहस्य यह है कि होरी में जिस प्रकार ऊँच-नीच का भेद तथाच किसी भी प्रकार की संकुचित भावना नहीं रहती है, उसी प्रकार इस सृष्टि के खेल में सभी से सभी प्रकार का खेल ईश्वर करता है। इसमें सब एक-रस खेल होता है, इसीलिए यह सारा जगत ईश्वर का होरी के खेल रूप है।

इस प्रकार यह सारावली अष्टछाप के सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है और उसमें बड़ा भारी तत्त्व ज्ञान भरा हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि—

(१) कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से यह सारावली निःसंदेह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसमें प्राप्त आत्म-कथन और कवि छापों से भी इसकी पुष्टि होती है।

(२) सारावली की रचना वि० सं० १६०२ में हुई है।

(३) सारावली का आधार 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' है।

(४) सारावली का दृष्टिकोण सैद्धांतिक रहा है।

(५) वि० सं० १६०२ पर्यंत सूरदास ने श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के जिन पदों को गाया था, उन्हीं का यह सूचीपत्र अथवा सिद्धांतात्मक सार है। सृष्टि रचना के

लिए उसकी प्रारंभिक "विशिष्ट प्रस्तावना" और "होरी खेल की कल्पना" इस सिद्धांतात्मक दृष्टि की पुष्टि करती है।

(६) द्वादशस्कंधात्मक भागवत के सार रूप से इसमें प्रधानतः २४ अवतारों का वर्णन और नित्य एवं उत्सव की सेवाओं के पदों के सार रूप से "सरस संवत्सर लीला" की भावनाओं का वर्णन है। इस प्रकार सारावली में "कथा वस्तु" को दो भागों में पृथक्-पृथक् बाँटना भी 'ताको सार सूर सारावली' वाले कथन की पुष्टि करता है।

इस प्रकार सारावली सूरदास की एक स्वतंत्र सैद्धांतिक रचना है।

२. साहित्यलहरी—यह भी सूरदास की प्रमुख रचना है। इसमें ११८ दृष्टिकूट के पदों का संग्रह है। १०९ और ११८ संख्या वाले पदों को छोड़ कर अन्य सब पदों में काव्यशास्त्रोक्त रस प्रकरण के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। १०९ संख्या वाले पद में 'साहित्य लहरी' का रचना-काल और ११८ संख्या वाले पद में सूरदास का वंश परिचय दिया गया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन सर्व प्रथम भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की प्रति के आधार पर सन् १८९२ ई० में खड्गविलास प्रेस से हुआ था। इसके पश्चात् संवत् १९९६ वि० में पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय से इसका पुनः प्रकाशन हुआ है।

११८ संख्या वाले पद के अतिरिक्त साहित्य-लहरी के अन्य समस्त पदों को हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने सूरदास कृत माना है। हम भी उक्त पद के अतिरिक्त इसके सभी पदों को प्रामाणिक मानते हैं। जिस पद को हमने अप्रामाणिक माना है, उसमें जहाँ इतिहास विरुद्ध अनेक कथन हैं, वहाँ अन्य पदों के विरुद्ध उसमें दृष्टिकूट शैली का भी नितांत अभाव है। इस पद की अप्रामाणिकता के विषय में हम गत पृष्ठों में विशेष रूप से लिख चुके हैं।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपनी "सूरदास" थीसिस में "साहित्य-लहरी" पर भी विशेष रूप से विचार किया है। उन्होंने अपने 'विश्लेषण' से दो बातें स्पष्ट की हैं—

"एक तो यह कि 'साहित्य-लहरी' के प्रणयन में उसके कवि की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, भक्ति नहीं और दूसरी यह कि इन दृष्टकूट कहे जाने वाले पदों में राधा एवं राधाकृष्ण के नखशिख के वर्णन नहीं हैं; कुछ पद शृंगार से संबद्ध होते हुए भी राधा का उल्लेख नहीं करते तथा कुछ स्पष्टतया राधा और दाम्पत्य रति से असंबद्ध हैं।"

उन्होंने आगे लिखा है—

"सूरसागर का कोई प्रसंग और कदाचित कोई पद ऐसा नहीं है, जिसमें कवि की भक्ति-भावना किसी न किसी रूप में प्रकट न हुई हो ... 'साहित्य-लहरी' का रचना-काल संवत १६२७ मानें, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि सूरदास ने इसकी रचना की है तो अपनी मृत्यु के कुछ ही पहले उन्होंने अपनी भक्ति-भावनापूर्ण मनोवृत्ति में आकस्मिक परिवर्तन कर दिया और मानों वे अपने साधन को साध्य रूप में ग्रहण करके मरते-मरते एक असफल और शिथिल लक्षण ग्रंथ रचकर अपने भावी साहित्यिक बंधुओं का नेतृत्व करने के लिये तत्पर होगए। .... सूरसागर जैसे बृहद् ग्रंथ में जो कवि अपनी रचना के विषय में मौन रहा हो, वह 'साहित्य-लहरी' जैसे असफल प्रयत्न में नाम और रचना-काल में इतना मुखर हो जाए, यह भी उसकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल जान पड़ता है†।"

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर डॉ० वर्मा साहित्य-लहरी को भी सूरदास कृत नहीं मानते हैं। डॉ० वर्मा की मुख्य मुख्य शंकाओं का निम्न लिखित प्रश्नों में समावेश हो जाता है—

१. सूरदास जैसे विरक्त महात्मा और सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था में इस प्रकार के काव्य-साहित्य रस का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता हुई?

२. जब इसमें राधा के नख-शिख का वर्णन नहीं, तब इसे दृष्टिकूट शैली में रचने की क्या आवश्यकता थी?

३. सूरसागर जैसे बृहद् ग्रंथ में जब कवि ने रचना-काल आदि नहीं लिखा तब इसे एक असफल प्रयत्न में संवतादि देने की क्या आवश्यकता हुई?

इन तीनों प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-प्रणाली तथा उसके सिद्धांत को प्रथम जान लेना आवश्यक है। पुष्टि संप्रदाय में भगवान् श्रीकृष्ण को "रसोवैसः" श्रुति के अनुसार रसात्मक माना गया है और ब्रह्मांड में जहाँ कहीं आनंद-रस अभिव्यक्त है, वह भगवद्रूप माना गया है—

"वस्तु तस्तु ब्रह्माण्ड मध्ये आनन्दोऽभिव्यक्तस्तिष्ठति भगवद्रूपः‡।"

† सूरदास, पृ० ८७, ९३ ‡ सुबोधिनी तृ० स्कं० १५-३९

इसी के आधार पर नंददास ने भी अपनी "रसमंजरी" में लिखा है—

रूप-प्रेम-आनंद-रस जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को निधरक बरनों ताहि॥

अर्थात् जगत् में जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी आनंद (रस) है, वह भगवान् श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है। इसलिए शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की रास पंचाध्यायी के अंतिम अध्याय के २६ वें श्लोक में कहा है—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः ससत्यकामोऽनुरताबला गणः।
सिषेव आत्मन्युपरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथा रसाश्रयाः॥२६॥

इस श्लोक के अंतिम चरण "सर्वाः शरत्काव्य कथा रसाश्रयाः" से स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्रोक्त प्रकारों से भी लीलाएँ की हैं। इसका स्पष्टीकरण महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने भी अपनी सुबोधिनी में इस प्रकार किया है—

"काव्य कथा अपिनीताः। काव्योक्त प्रकारेण गीतगोविन्दोक्त न्यायेनापि रतिं कृतवान। तत्र हेतुः रसाश्रया इति।"†

अर्थात् काव्य कथाओं का भी इस प्रकार सेवन किया। काव्योक्त प्रकारेण, तथाच गीत गोविन्दोक्त न्याय से भी भगवान् ने रमण किया।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने काव्यशास्त्र के अनुसार नायिकाभेद की पद्धति से भी रमण किया है। इन्हीं आधारों पर अष्टछाप के भक्त कवियों ने अनेक प्रकार की नायिकाओं को उपस्थित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन किया है।

हमारे सूरदास ने भी श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक के स्पष्टीकरण एवं विशदीकरण में ही समस्त 'साहित्य-लहरी' का निर्माण किया है इसीलिए इसमें नायिकाभेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

सूरदास की समस्त रचनाओं का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत रहा है, क्यों कि महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उनको शरण में लेते ही तत्काल 'पुरुषोत्तम-सहस्रनाम' और 'दशम् स्कंध की अनुक्रमणिका' द्वारा श्रीमद्भागवत की दशविध लीलाओं का बोध कराया था। इसी के आधार पर सूरदास ने समस्त भागवत की कथाओं का सामान्य अनुवाद और दशम् स्कंध की अस्पष्ट एवं स्पष्ट लीलाओं का विशेष रूप से विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसी में दशम-

---

† सुबोधिनी १०-३३-२६

स्कंध की अस्पष्ट सांकेकित लीलाओं में इस विषय का भी समावेश हो जाता है। यदि सूरदास ने इस ग्रंथ की रचना न की होती, तो उनके द्वारा भागवत की लीलाओं का पूर्ण रूप से वर्णन न हो पाता। अब 'साहित्य-लहरी' नाम पर विचार करते समय यह बात दृष्टव्य है कि उन्होंने भगवत् लीलात्मक नाम न रख कर 'साहित्य' शब्द का उपयोग क्यों किया ? इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस रचना में किसी एक विशिष्ट लीला का उल्लेख नहीं है। इसमें केवल शृंगार-रस ही नहीं है, वरन् अन्य रसों का भी वर्णन किया गया है। ये रस काव्य-शास्त्र की आत्मा हैं, अतः इनके विवेचन के कारण इस रचना का नाम साहित्य से संबंधित रखा गया है। इसका दूसरा मुख्य कारण यह है कि इसमें भगवान् कृष्ण की लौकिक प्रकार की काव्य कथा होने के कारण अनधिकारी व्यक्तियों में अन्यथा भाव उत्पन्न न हो। राजा परीक्षित जैसे ज्ञानी भक्त को भी उक्त श्लोक को सुनकर जब शंका हुई थी, तब अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है ! इसीलिए नायिकाभेद की रचनाएँ दृष्टिकूट शैली में लिखी गयी हैं, जिससे अधिकारी विद्वान ही उनका रसानुभव कर सकें। दृष्टिकूट शैली के आवरण के कारण ही इस रचना में काव्यानंद की स्पष्ट झलक नहीं दिखलायी देती। यह आवरण जानबूझ कर रखा गया है।

उपर्युक्त सैद्धांतिक विवेचन से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक तो यह कि साहित्यलहरी का नाम और उसका बाह्य कलेवर काव्य-साहित्य का सूचक होते हुए भी वह भक्ति की उच्चतम भावना से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की रहस्यमयी लीलाओं का गायन करना मात्र था, "साहित्यिक-नेतृत्व" करना नहीं। दूसरी बात यह है कि इन पदों में काव्योक्त (लौकिक प्रकारों वाली) कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ़ रखना आवश्यक था, अतः इनमें प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढ़ता लायी गयी है, जिसके कारण नखशिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टिकूट शैली की नितांत आवश्यकता थी।

यहाँ एक गौण प्रश्न और हो सकता है। वह यह कि सूरदास कृत इस प्रकार की लीलाओं के ऐसे भी अनेक पद हैं, जिनमें दृष्टिकूट शैली का सर्वथा अभाव है—इसका क्या कारण है ? इसका उत्तर यह है कि एक तो उन पदों में नायिकाओं का स्पष्ट कथन प्राप्त नहीं है; केवल लक्षणों से ही उनका ज्ञान होता है। दूसरे वे पद श्रीनाथजी के सन्मुख स्वतः गाये हुए हैं, जहाँ उन्हें छिपाने

की कोई आवश्यकता नहीं थी। 'साहित्य-लहरी' के पद भागवत की कथा के विशदीकरण रूप में विशिष्ट कारण से रचे गये हैं।

इस विवेचन से उक्त दोनों प्रश्न हल हो जाते हैं। अब रह जाता है तीसरा रचना-काल विषयक प्रश्न। इसका उत्तर यह है—

श्रीमद्भागवत की कथाओं का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतंत्र रचना है। इसमें भागवत की कथाओं का अनुसरण है, अतः यह स्वतंत्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनंतर ही इसके तत्वरूप से सूरदास ने सूर-सारावली की सैद्धांतिक स्वतंत्र रचना की थी। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है, जिससे सूरसागर का भी रचना-काल जाना जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ साहित्य-लहरी की रचना का उद्देश्य ज्ञात होता है, वहाँ डा० ब्रजेश्वर वर्मा की शंकाओं का भी स्वतः समाधान हो जाता है; अतः उन शंकाओं पर पृथक् विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

डा० वर्मा का एक तर्क यह है कि—

"उक्त गोस्वामी जी के द्वारा साहित्य-लहरी का कोई उल्लेख न होना, जब कि इस रचना में कवि ने तिथि और नाम तथा अपनी वंशावली का उल्लेख किया है, वास्तव में इस रचना को सूरदास कृत न मानने के लिये एक प्रबल कारण है *।"

वार्ता साहित्य के गंभीर अध्ययन से यह ज्ञात हो सकता है कि समग्र वार्ता-साहित्य प्रासंगिक रूप से कहा हुआ है, अतः जहाँ जिस विषय का प्रसंग चल पड़ा, वहाँ उसका वर्णन किया गया है। इसको ऐतिहासिक ढंग से आद्योपांत चरित्र रूप में नहीं लिखा गया है। यदि वार्ता में सूरदास की रचनाओं पर पूर्ण रूप से एक स्थान पर विचार किया गया होता, तब तो उक्त तर्क का महत्व सिद्ध होता; किंतु उसमें प्रासंगिक स्थानों पर सूरदास की अमुक-अमुक रचनाओं का उल्लेख हुआ है, अतः उक्त तर्क पर बल देना निरर्थक है।

साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली और उसके पदों के वर्ण्य विषय सूर-सागर में तथा सूरदास की अन्य रचाओं में भी प्राप्त हैं। इनसे भी इसकी प्रमाणिकता का अनुमान हो सकता है।

---

* सूरदास, पृ० ६६

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने साहित्य-लहरी के रचयिता और उसके रचना-काल के विषय में इस प्रकार अनुमान किया है—

"संभव है इसका रचयिता कोई अप्रसिद्ध सूरजचंद नामक भाट हो और वह भी संभव है कि स्वयं उसी ने इसकी टीका की हो। ऐसी दशा में उसका समय भाषाभूषण-कार जसवंतसिंह के पहले नहीं माना जा सकता† ।"

यदि डा० वर्मा के मतानुसार 'साहित्य-लहरी' का रचयिता कोई अन्य सूरजचंद माना जाय और उसका समय सं० १७०० के पश्चात् का मानें, तो निम्न-लिखित बातों का हमें प्रामाणिक उत्तर भी देना होगा—

१. साहित्य-लहरी के रचना-काल सूचक पद में प्राप्त संवत, मिति, वार, नक्षत्र, योग आदि का प्रामाणिक उल्लेख लगभग सौ वर्ष पश्चात् किस प्रकार जाना जा सकता था ?

२. उक्त रचना-काल सूचक पद से यह जाना जा सकता है कि रचना-कार अपने को अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि सूरदास के रूप में ही उपस्थित करता है, अतः किसी भी परवर्ती कवि को अपना अस्तित्व मिटाकर इस प्रकार का नाम-साम्य करने से क्या लाभ हो सकता था ? फिर नक्षत्र आदि का सूक्ष्माति-सूक्ष्म विवेचन करने का अत्यंत कष्ट भी उसने क्यों उठाया, जब कि सामान्य संवतादि के सूचन से भी वह अपना उद्देश्य सिद्ध कर सकता था ?

३. वास्तव में देखा जाय तो 'साहित्य-लहरी' काव्य नहीं, किंतु काव्य-शास्त्र है। इसमें नायिका, अलंकार और रसों की अत्यंत क्लिष्ट और जटिल रचनाएँ उपलब्ध हैं। इतना श्रम कोई साधारण कवि नहीं ले सकता है। उस दशा में एक प्रकांड कवि 'नाम-साम्य का अपराध' करे, यह कैसे संभव हो सकता है ?

जहाँ तक हम समझते हैं कोई आलोचक इन प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर नहीं दे सकता है, अतः 'साहित्यलहरी' निश्चित रूप से सूरदास की प्रामाणिक रचना सिद्ध होती है। इसकी पुष्टि निम्न लिखित पदों के साम्य से भी होती है—

---

† सूरदास, पृष्ठ ६७

कृष्ण जन्म-कुंडली का पद—

नंद जू मेरे मन आनंद भयौ सुनि मथुरा तें आयौ ।
लग्न सोधि जोतिस कों गिनि कैं चाहत तुम्हें सुनायौ ॥
संवत्सर ईश्वर कौ भादों नाम जू कृष्ण धरयौ है ।
रोहिनि बुध आठैं अँधियारी हर्षन योग परयौ है ॥
वृष है लग्न उच्च के उडपति तन कों अति सुखकारी ।
दल चतुरंग चलै सँग इनके ह्वै हैं रसिक बिहारी ॥
चौथे भवन सिंह के दिनमनि महि मंडल कों जीतैं ।
करि हैं नास कंस मातुल कों निश्चै कछु दिन बीतैं ॥
पंचम बुध कन्या के सोभित पुत्र बढ़ेंगे सोई ।
षष्ठम सुक्र तुला के सनि युत सत्रु बचै नहिं कोई ॥
नीच ऊँच युवती बहु भोगें सप्तम राहु परयौ है ।
केतु मूर्ति में स्याम बरन चोरी में चित्त धरयौ है ॥
भाग्य भवन में मकर महीसुत अति ऐश्वर्य बढ़ैगौ ।
द्विज गुरुजन कों भक्त होय कें कामिनि चित्त हरैगौ ॥
नव निधि जाके नाभि बसत हैं मीन वृहस्पति केरी ।
पृथ्वी भार उतारें निश्चै यह मानों तुम मेरी ॥
तब हो नंद-महर आनंदे गर्ग पूजि पहरायौ ।
असन, वसन, गजराज, धेनु, धन भूरि भंडार लुटायौ ॥
बंदीजन द्वारें जस गावें जो जाच्यौ सो पायौ ।
ब्रज में कृष्ण-जनम कौ उत्सव "सूर" विमल जस गायौ ॥

इस पद में प्राप्त श्रीकृष्ण की जन्म-कुंडली और नंदादि के वात्सल्य रस का वर्णन 'साहित्य-लहरी' के निम्न-लिखित पद की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार मिलता है—

विप्र जी पावन पुन्य हमारे ।
जो जजमान जानि कैं मो कहँ आपु यहाँ पगु धारे ॥
एक बार जो प्रथम सुनाई लगन-कुंडली सोइ ।
पुनहीं मोहि सुनावहु सुन कर कहन लगे सुख भोइ ॥
संवत मास षष्ठ वसु तिथि है रवि तें चौथी बार ।
पुत्र पच्छ औ वेद नपत है हरषन जोग उदार ॥
दुती लगन में है सिव भूषन सो तन कों सुखकारी ॥

केहरि बेद रास त्रै मूरत सेस भार सब लैहैं।
बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहैं॥
सास्त्र सुक्र तुल के रवि सुत ते बैरी हरता जोग।
मुनि बस तिय बस करै भूमि सुत भागवान में भोग॥
लाभ थान पंचमी काम भुज ग्रहनिधि गृह में आई।
मान लेहु मन अपने भू सब हरो भार इन भाई॥
बान वर्ष में कब देखैगी, कही तिहारी पूरी।
"सूरदास" दोउ परे पाँइ तर भूषन चित्र समूरी॥८१॥

प्रथम पद में गर्ग नाम स्पष्ट है। उसको यहाँ दृष्टिकूट शैली के कारण विप्र कहा है। इसी प्रकार मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और ग्रहों का भी दृष्टिकूट शैली में वर्णन हुआ है। उन सब के फल भी वही कहे हैं, जो प्रथम पद में प्राप्त हैं। इसमें वात्सल्य रस को इन पंक्तियों में विशेष रूप से प्रकट किया गया है—

एक बार जो प्रथम सुनाई लगन-कुंडली सोइ।
पुनहिं मोहिं सुनावहु सुन कर कहन लगे सुख भोइ॥
× × × ×
बान वर्ष में कब देखैगी कही तिहारी पूरी।
'सूरदास' दोउ परे पाँइ तर भूषन चित्र समूरी॥

इन दोनों पदों से कृष्ण की जन्म-कुंडली इस प्रकार निर्मित होती है—
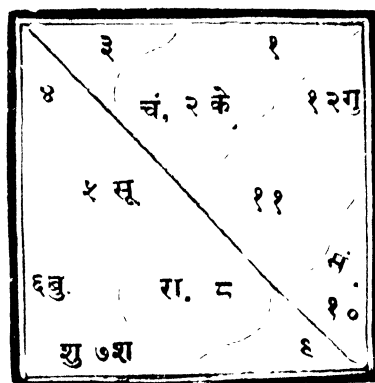
इसी प्रकार एक ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अनुरूप का साम्य देखिये—

नंदनंदन हँसे नागरी हर्ष चंद्रावलि कंठ लाई।
बाम भुजा बनी दक्षिण भुजा सखी पर चले बन धाम सुख कहीन जाई॥

मनों बिंच दामिनी बीच नव घन सुभग देखि छबि काम रति सहित लाजै।
किधों कंचनलता बीच तरु तमाल भामिनी बीच गिरिधर बिराजै॥
गये गृह कुंज अलि गुंज सुमननि पुंज देखि आनंद भरे 'सूर' स्वामी।
राधिकारवन युवतीरवन मनरवन निरखि छबि मन होत काम कामी॥
(अनुराग लीला—पृष्ठ ४६३)

इस पद में राधिका को वाम भाग और चंद्रावलि को दक्षिण भाग में रखकर भगवान कृष्ण गृह को गये—ऐसा वर्णन है। राधिका को ज्येष्ठा और चंद्रावलि को कनिष्ठा कह कर साहित्य-लहरी की दृष्टिकूट शैली में इस प्रकार गाया गया है—

आज सखिन सँग सुरुचि साँवरी करत रही जल केलि।
आइ गयौ तहाँ सरस साँवरा प्रेम पसारन बेलि॥

× × × ×

भूपन हित परनाम 'छोट बड' दोहुन कों कर राखी।
'सूरज' प्रभु फिर चले गेह कों करत मत्रु सिव साखी॥७॥

इसी प्रकार नेत्र वर्णन, नायक का मान, विपरीत रमण और खंडिता आदि साहित्य-लहरी के कई विशिष्ट विषय सूरदास के सागर और उनके अन्य पदों से मिलते हैं।

दृष्टिकूट पदों का साम्य—

सखी री सुन परदेसी की बात।
अरध बीच दै गये धाम कों हरि अहार चलि जात।
ग्रह नछत्र अरु वेद अरध कर को बरजै मुहि खात॥
रवि पंचक सँग गये स्यामघन ताते मन अकुलात।
कहुँ महुक्त कवि मिले "सूर" प्रभु प्राण रहत न जात†॥२३॥

† लहेरियासराय वाली प्रति में "न नो जात" पाठ है, किंतु वह अशुद्ध है। टीकाकार ने और भी कई पाठों को अशुद्ध बना दिया है, जैसा कि—"राधे कियौ कौन सुभाव" इस पद में "प्रानपति बेदन बिभूषित सुंन गुन चित्त चाव॥" यहाँ वास्तव में "सुन गुन" चहिए "सुंन गुन" नहीं। इससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। इसी प्रकार और भी कई अशुद्धियाँ हैं; जैसे "आवत थी"—यहाँ "आवत ही" चाहिए इत्यादि।

कहे न कोई परदेसी की बात ।
जब तें बिछुरे नंदसाँवरौ ना कोइ आवै न जात ।
मंदिर अर्ध अवधि प्रभु बदि गये हरि अहार चलि जात ।।
अजयाभख अनुसारत नाहीं कैसेक समय सिरात ।
ससिरिपु वरस भानुरिपु जुग सम हरिरिपु कीन्हों घात ।।
नखद वेद ग्रह जोरि अरध करि सोइ बने अब खात ।।
मघपंचक लै गयौ साँवरौ तातें मन अकुलात ।
"सूर" श्याम आवन कै आसा प्रान रहे नतु जात† ।।

साहित्य-लहरी के कतिपय विषय व्रतचर्या, नायक का मान आदि संप्रदाय से पूर्णतः संबंधित हैं। नायक का मान अष्टछाप में सूर एवं परमानंद के अतिरिक्त और किसी ने नहीं गाया है। उसका आभास इस साहित्य-लहरी के कई पदों में है। इन सब कारणों से संप्रदाय के मर्मों से अपरचित व्यक्ति इसकी रचना नहीं कर सकता है। इस प्रकार काव्य की गंभीरता को देखते हुए भी यह रचना साधारण कवि की ज्ञात नहीं होती है। इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के प्रतिपादन के लिए महाभारत आदि की कथाएँ भी उपलब्ध हैं। अन्य कवि, जिसका उद्देश्य केवल शृंगार वर्णन करना हो, इस प्रकार की रचना सर्वथा नहीं कर सकता है, अतः यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी पुष्टि आंतर प्रमाणों से भी भली भाँति होती है।

अब हम इसके रचनाकाल विषयक पद पर विचार करेंगे। वह पद इस प्रकार उपलब्ध होता है—

"मुनि[७] पुनि[०] रसन के रस[६] लेख ।
दसन[१] गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख ।।
नंदनंदन मास* छय तें हीन तृतीया बार ।
नंदनंदन जनम तें हैं बान‡ सुख आगार ।।
तृतीय ऋच्छ सुकर्म जोग विचार 'सूर' नवीन ।
नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन ।।

† लहेरियासराय द्वारा प्रकाशित प्रति में पृ० २७ पर इसे पाठांतर के रूप में उपस्थित किया गया है, किंतु यह एक स्वतंत्र पद है।

* माधव मास । ‡ पाँचवाँ ।

उक्त पद की रचना-शैली भी साहित्य-लहरी के अन्य पदों की रचना-शैली के समान दृष्टिकूट वाली है, अतः इस पद में भी 'नंदनंदन मास' (माधव-वैशाख मास) और 'नंदनंदन जनम तें है बान सुख-आगार' (श्री कृष्ण के जन्म-दिन बुध से पाँचवाँ वार रवि) आदि वाक्य परोक्ष सूचक प्राप्त होते हैं। सूरदास विशिष्ट अवसर पर समय का भी अनुसंधान रखते थे, जैसा कि सारावली में 'गुरु-प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन' वाक्य दिया हुआ है। इसलिए यहाँ पर दिए हुए संवतादि समय का कथन भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही है। श्रीकृष्ण की जन्मपत्री सूचक पदों से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास ज्योतिषज्ञ भी थे, अतः यहाँ 'नक्षत्र'-'योग' आदि का कथन भी इस पद को सूरदास की रचना बतलाने में सहायक होता है।

सूरदास ने अपनी प्रायः सभी रचनाएँ किसी न किसी विशिष्ट हेतु से की हैं। जैसा कि—'सूर-पचीसी' बादशाह अकबर के लिए, 'सूर-साठी' एक बनिया के लिए, 'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो' वाला पद चतुर्भुजदास के लिए, 'आज काम काल काम' यह पद भी एक बनिया के लिए, 'मन ! तू समझ सोच विचार' यह पद चौपड़ के खेलाड़ियों को देखकर, दान-मान आदि के अनेकानेक पद श्रीनाथजी की सेवा के लिए, 'सूरसागर' महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की आज्ञानुसार और 'सूर-सारावली' उस 'सागर' की लीलाओं और वर्षोत्सव की सेवा-भावनाओं के तात्विक अनुसंधान के हेतु से रची गयी हैं। इन हेतुओं को देखते हुए यह विचार उत्पन्न होता है कि 'साहित्य-लहरी' की रचना का भी कोई विशेष प्रयोजन अवश्य रहा है। इसका उल्लेख उक्त पद के 'नंदनंदनदास हित साहित्य-लहरी कीन' वाले वाक्य में किया गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि 'नंदनंदनदास' अर्थात् कृष्ण के भक्तों के लिए यह 'लहरी' बनायी गयी, तो वह एक सामान्य प्रयोजन कहा जायगा। उस सामान्य प्रयोजन का इस प्रकार विशेष प्रयत्न पूर्वक उल्लेख करना निरर्थक सा है, क्यों कि सूरदास की सभी रचनाएँ कृष्ण-भक्तों के लिए तो हैं ही, फिर 'साहित्य-लहरी' में इस बात का पृथक् उल्लेख क्यों किया गया ? अतः यह मानना होगा कि जिस प्रकार पूर्वोक्त विशेष रचनाओं के विशिष्ट हेतु रहे हैं, उसी प्रकार इस बृहद् रचना का भी कोई विशिष्ट हेतु अवश्य रहा है।

आख्यायिका और वार्ता से इस रहस्य का उद्घाटन होता है। आख्यायिका के अनुसार नंददास का नंदनंदनदास के नाम से संबोधन सूर द्वारा किया जाना स्पष्ट होता है। अष्टछाप के सातों कवि प्रारंभ से ही कृष्ण-भक्त थे, केवल नंददास ही पहले राम-भक्त थे। जब वे वल्लभ संप्रदाय में प्रविष्ट हुए, तब सूरदास ने ही उनको 'नंदनंदनदास' कहा था। इससे भी उक्त बात का समर्थन होता है।

इस गूढ़ उद्देश्य को समझने के लिए हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। 'भावप्रकाश वाली वार्ता' से यह जाना जा सकता है कि नंददास ने जब पुष्टिमार्ग में प्रवेश किया, तब सर्व प्रथम वे सूरदास की संगति में छै मास तक चंद्रसरोवर पर रहे थे†।

'वार्ता' के इस कथन की पुष्टि नंददास की रचनाओं में सूरदास के पदों की भाषा, उनके भाव आदि के अनुसरण से हो जाती है। यहाँ पर दोनों कवियों के कतिपय ऐसे पद दिये जाते हैं—

सूर का पद—

माई री कृष्ण नाम जब त श्रवन सुन्यौ री, तब तें भूली री भवन बावरी सी भई री। भरि-भरि आवैं नैन, चित न रहत चैन, बैन नहीं सूधौ भूली मन की दसा सब और ह्वै रही री॥ कौन माता, कौन पिता, को बहिनी, कौन भ्राता, कौन ज्ञान, कौन ध्यान, मदन हई री। 'सूर' स्याम जब तें परे री मेरी दृष्टि बाम, काम, धाम, निसि-याम लोक-लाज कुल-कानि नि नई री॥

नंददास का पद—

कृष्ण नाम जब तें श्रवन सुन्यौ री, आली, भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री। भरि-भरि आवैं नैन, चित्त हू न परत चैन, मुख हू न आवैं बैन, तन की दसा कछु और भई री॥ जेतक नेम धरम ब्रत कीने री मैं बहु बिध, अंग-अंग भई हौं तो श्रवन मई री। 'नंददास' जाके श्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री॥

सूर का पद—

दौरि-दौरि आवत, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
गई तौ गई, न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री॥
सुनि राधे कैधौं मान मेरी कह्यौ, तो बिनु लालन कछु न सही री।
'सूरदास' मन हरि लीन्हों, हँसि-मुसिक्याय निकट गई री॥

नंददास का पद—

दौरि दौरि आवति, मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लई री।
अचरा पसारति, मोहि कों खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री॥
जा री, जा दूति। तू भवन आपुने, लख बातन की एक बात कही री।
'नंददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पाँयन कहा महेंदी दई री॥

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० ३४०

(मकर संक्रांति)

सूरदास का पद—

'मेष' सी अचल कहा बैठी 'बृष' भान लली, 'मिथुन' के काजैं तोहि स्याम सुधि करी है। 'करकें' सिंगार आज 'सिंह' ह्वै चलौ री आली, प्यारी 'कन्या' गिनुमान है कहा गुमान भरी है। 'तुल' रे बिरही कान, बृक्ष तरे ठाडे आन, 'धन' 'मकर' करे आली, येही सुभ घरी है।। 'कुंभ' ज्यौं मिलोगी जाय, व्याकुल कान कुंजन में, 'मीन' जैसे तलफत सुध करे घरी-घरी है। 'सूरदास' मदनमोहन सुमिरत हैं निस-दिन, द्वादस रासि रूप कृष्ण चरन जाय ढरी है।।

नंददास का पद—

'मेष' सी ह्वै रही अति 'बृषभ' गति तेरी आली, 'मिथुन' के काजैं हमारी कहौ क्यों न कीजे। 'करक' मिटाओ आछे 'सिंह' की सरनि आओ, 'कन्या' कौ सुभाव सो तौ बेग तजि दीजे।। 'तुला' तो अतुल रस 'बृश्चिक' को बिष मटि, 'धन' घनस्याम जू की सरनि गहि लीजे। 'मकर' न कीजे आछे कुंभ के गुन नेह, 'नंददास' भानमती 'मीन' गति लीजे।।

इसी प्रकार का एक पद कृष्णदास का भी प्राप्त है, जिसमें सूरदास के भावों का अनुकरण किया गया है—

कृष्णदास का पद—

'मीन' से चपल अरु 'मेष' हू न लागे पल, 'बृषभ' सी गति लिएँ डोलत भवन में। 'मिथुन' पै चलै अंक 'करक' लावै 'सिंह', 'कन्या' प्रवेस सो तौ आयौ तेरे तन में।। 'तुला' जिन करे आली बृश्चिक' व्यथा समान, 'धनुष' सी भौंह मोहैं 'मकर' तेरे मन में। 'कुंभ' जैसे कुच साज,भेंट पिय अंक आज,दंपति छबि निरख 'कृष्णदास' हरषि मन में।।

(ज्येष्ठ की दुपहरी)

सूरदास का पद—

सूर आयौ सीस पर, छाया आई पाँइन तर, पंथी सब झुक रहे देखि छाँह गहरी। धंधीजन धंध छांडि, बैठे धूपन के लिएँ,पसु-पंछी जीव-जंतु चिरैया चुप रहे री।। ब्रज के सुकुमार लोग दै दै किंवार सोए, उपवन की ब्यारि तामें सुख क्यों न लहे री। 'सूर' अलबेली चलि, काहे कों डराति बलि, माह की मध्य राति जैसे ये जेठ की दुपहरी।।

नंददास का पद—

सूर आयौ माथे पर, छाया आई पाँइन तर, उतर ढरे पथिक डगर देखि छाँह गहेरी ॥ सोग सुकुमार लोग जोरि कै किंवार द्वार, पवन सीतल घोख मोख भवन भरत गहेरी। धंधी जन धंध छाँडि जब तपत धूप डरत, पसु-पंछी जीव-जंतु छिपत तरुन सहेरी। 'नंददास' प्रभु ऐसे म गवन न कीजै कहुँ, माघ की आधी रात जैसी ये जेठ की दुपहरी ॥

इसी प्रकार नंददास के और भी अनेक पद हैं, जिनमें सूरदास के पदों के ज्यों के त्यों शब्द, भाव और उनकी रचना-शैली भी प्राप्त होती है। नंददास का भ्रमरगीत भी सूरदासके भ्रमरगीत का विस्तार और उसकी छाया रूप है।

सूरदास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो किनु कान दै।
सुंदर स्याम सुजान पठायौ मान दै॥
कोउ आयौ उत ओर जितैं नँदसुवन सिधारे।
वहै बैनु धुनि होइ मनों आये नँद-प्यारे॥
धाई सब गल गाजि कै ऊधौ देखे जाय।
लै आईं ब्रजराज मैं हो आनँद उर न समाय॥
अरघ आरती तिलक दूब दधि माथे दीन्हीं।
कंचन कलस भराय आनि 'परिकरमा' कीन्हीं॥
गोप भीर आँगन भई मिलि बैठे जादव जात।
जल झारी आगें धरी हो 'बूझत हरि कुसलात'॥
'कुसल छैम' बसुदेव 'कुसल' छैमहिं कुबजाऊ।
'कुसल' छैम अक्रूर 'कुसल' नीके बलदाऊ॥

नंददास का भ्रमरगीत—

'ऊधौ कौ उपदेस' सुनो ब्रज-नागरी।
रूप सील लावण्य सबै गुन-आगरी॥
× × × ×
ऊधौ आसन बैठाय बहुरि 'परिकरमा' कीनों।
× × × ×
बूझन सुधि नँदलाल' की बिहँसत सुख ब्रजबाल।
'नीके हैं बलबीर जू' बोलत बचन रसाल॥
'कुसल' राम अरु स्याम 'कुसल' संगी सब तिनके।
'यदुकुल' सगरे कुसल परम आनँद हैं तिनके॥

इस प्रकार सूरदास के भ्रमरगीत की पद्धति, उसके भाव और शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग नंददास ने अपने भ्रमरगीत में सर्वत्र किया है। फिर भी नंददास को सूरदास ने इसके लिए कभी टोका नहीं था। इससे निश्चित होता है कि नंददास सूरदास के काव्य-शिष्य थे और संप्रदाय की भावनाओं का ज्ञान भी उनको सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। इसी लिए नंददास ने अपने अनेक पदों में सूरदास के पदों के कई वाक्य भी ज्यों के त्यों ले लिये हैं। उनको शिष्यत्वेण उनके वाक्य, भाव और भाषा का उपयोग करने का संपूर्ण अधिकार था, अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्णदास अधिकारी को उनके पदों में प्राप्त अपने पदों की मामूली छाया को देख कर भी टोका था†, उसी प्रकार वे नंददास को भी अवश्य ही टोकते। नंददास की 'रस मंजरी' में जो नायिकाभेद का उल्लेख मिलता है, उसके मूल में भी कदाचित 'साहित्य-लहरी' की अनुकरणात्मक प्रेरणा हो सकती है।

नंददास के अंतःसाक्ष्य और सोरों की सामग्री के अनुसंधान से भी इस बात की पुष्टि होती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नंददास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर सूरदास के आदेश पर अपने गृह गये थे। वहाँ पर उन्होंने गृहस्थाश्रम का उपभोग किया था। तत्पश्चात् वि० सं० १६२० के लगभग वे विरक्त होकर पुनः स्थायी रूप से ब्रज में आकर रहने लगे थे। उक्त कथन की पुष्टि नंददास के अंतःसाक्ष्य और वार्ता के उल्लेख से होती है।

जिस पद मे नंददास का गृहस्थ होना और दूसरी बार ब्रज में आना स्पष्ट होता है, वह यह है—

प्रीति लगी श्री नंदनँदन सों, इन बिनु रह्यौ न जाय री।
सास ननँद कौ डर लागत है, जाउँगी नैंन बचाय री॥

गुरुजन, सुरजन, कुल की लाजन, करत सबहिं मन भाय री।
'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ, हम तुम लागत पाँय री॥'

जाकों सिव नारद मुनि तरसत, श्रुति पुरान गुन गाय री।
मुख देखें बिनु,घट प्रान नहिं रहि हैं 'जाउँगी पौर ब्रजराय री॥'

स्यामसुंदर मुख कमल अमृत रस, पीवत नाहिं अघाय री।
'नंददास' प्रभु जीवन धन मिले 'जनम सुफल भयौ आय री॥'

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, पृ० २०६

उक्त पद में सामान्यतः गोपीजन का वर्णन दिखायी देता है, किंतु अर्थानुसंधान से इसमें गोपी-प्रेम-भाव-भावित नंददास का वृत्तांत ही स्पष्ट होता है। इस पद का 'पुत्र कलत्र कहत जिन जाओ' वाला वर्णन श्रीमद्भागवत के रास से संबंधित है। रास के समय गोपीजनों को उनके पुत्र आदि ने वन में जाने से रोका था; किंतु इसमें "जाउँगी पौरि व्रजराय री" वाक्य उस अर्थ के विरुद्ध पड़ता है। श्रीमद्भागवत में ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है कि "व्रजराय की पौरि" अर्थात् नंदराय जी के घर जाने से किसी भी गोपी को उसके पुत्र-कलत्र आदि ने इस प्रकार विनय के साथ रोका हो। फिर इस पद के अंतिम चरण "जनम सुफल भयो आय री" भी नंददास के द्वितीय बार व्रजागमन की ही सूचना देता है; क्यों कि गोपीजनों का जन्म तो श्रीकृष्ण के जन्म और उनके नित्यप्रति के दर्शनादि के कारण प्रारंभ से ही सुफल हो चुका था, अतः उनके लिए इस प्रकार का उल्लेख प्रमाण-विरुद्ध और असंगत ज्ञात होता है। इस प्रकार मानना होगा कि नंददास गृहस्थ होने के पश्चात् घर से नाता तोड़ कर द्वितीय बार व्रज में आकर स्थिर रूप से रहे थे, जिसका समय वि० सं० १६२० के आस-पास का, वार्ता में वर्णित "जयति रुकमनि नाथ पद्मावती प्राणपति" वाले कथन से, सिद्ध हो सकता है। व्रज के विरह सूचक पदों से भी नंददास के द्वितीय बार व्रजागमन की पुष्टि होती है।

नंददास अपनी गृहस्थी को छोड़ कर व्रज में आये थे, तभी तो उनके भाई तुलसीदास को उन्हें समझाने के लिए व्रज में आना पड़ा, जिसका समय वि० सं० १६२६ गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है। इससे सूरदास और नंददास का विशिष्ट सांप्रदायिक एवं साहित्यिक संबंध भी ज्ञात हो सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि वार्ता में उनके दुबारा व्रज में आने का स्पष्ट कथन क्यों नहीं मिलता ? इसका उत्तर वार्ता की कथात्मक शैली है। इस शैली में ऐतिहासिक उल्लेखों का क्रमबद्ध विवरण न मिलना स्वाभाविक है।

अब 'साहित्य-लहरी' के रचनाकाल का निश्चय करना हमारे लिये शेष रह जाता है। उक्त पद के " मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरी-नंद को लिखि सुवल संवत पेख " से कुछ विद्वान इसकी रचना का समय वि० सं० १६०७ करते हैं। कुछ विद्वान अब १६१७ और कुछ १६२७ भी करने लगे हैं। इस भिन्नता का कारण 'रसन' शब्द के अर्थ का मतभेद है। हमारे मत से ज्योतिष के अनुसंधान एवं 'रसन' शब्द की वास्तविकता के आधार पर उसको 'एक' संख्यावाची मानना अधिक समीचीन कहा जायगा,

क्यों कि "रसन के रस" अर्थात् जिह्वा का पट रस अर्थ ही प्रामाणिक है। कुछ विद्वान "मुनि सुन रसन के रस लेख" ऐसा पाठ भी उपस्थित करते हैं। इसके आधार पर 'सुन' का अर्थ ० और 'रसन के रस' का अर्थ ६ करने से १६०७ संवत स्पष्ट होता है। यहाँ पर हम इस रचना के उपर्युक्त हेतु का ऐतिहासिक अनुसंधान करना उचित समझते हैं, जिससे उक्त रचना के निर्माण-काल पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि इसकी रचना नंददास के के हितार्थ की गयी थी। इसके लिए नंददास के वल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का समय निश्चित करना आवश्यक होगा।

नंददास के पुत्र का नाम कृष्णदास, रामपुर का नाम श्यामपुर आदि उल्लेख भी सोरों सामग्री द्वारा प्राप्त होते हैं, और उससे यह भी ज्ञात होता है कि नंददास ने वि० सं० १६१३ में अपना विवाह किया था। इस अनुसंधान से उनका व्रज में आना निश्चित होता है।

नंददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। इसकी पुष्टि गोकुलनाथ जी के प्रत्यक्ष वचनों से होती है, अतः तुलसीदास के जन्म के अनंतर ही उनका जन्मकाल माना जा सकता है। यद्यपि तुलसीदास का जन्म वि० सं० १५८९ प्रायः सभी विद्वानों ने मान लिया है, फिर भी वह किसी प्रामाणिक और प्राचीन सूत्र से पुष्ट नहीं है, अतः तुलसीदास के जन्म का निश्चित समय अभी संदिग्ध ही कहा जावेगा। यदि हम तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ मान लें, तब नंददास का जन्म उसके बाद मानना उचित होगा। सोरों-सामग्री और वार्ता के अनुसंधान से नंददास का जन्म सं० १५९० माना जा सकता है। तभी वि० सं० १६१३ में उनके विवाह वाला कथन और उससे पूर्व उनका किसी संघ के निरीक्षण में व्रज आदि स्थानों में जाना संभव हो सकता है। वार्ता से ज्ञात होता है कि नंददास किसी संघ के निरीक्षण में तुलसीदास द्वारा सर्व प्रथम यात्रा को भेजे गये थे, अतः उस समय वे शायद वयस्क नहीं थे, ऐसा ज्ञात होता है। फिर भी वे तरुण अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति का वर्णन वार्ता द्वारा प्राप्त होता है। इन सब अनुसंधानों पर विचार करते हुए प्रथम व्रजागमन के समय उनकी आयु ज्यादा से ज्यादा १८ वर्ष की मानी जा सकती है। इस अनुमान से उनका प्रथम व्रजागमन वि० सं० १६०७ के आस-पास का स्पष्ट होता है। यही समय उनका वल्लभ संप्रदाय में प्रवेश करने का है। इस कच्ची अवस्था और लौकिक आसक्ति के कारण ही गोसाईं जी ने उन्हें

सूरदास जैसे सिद्ध कोटि और विरक्त ज्ञानी भक्त के पास रखा था। अवश्य ही उस समय तक वे संस्कृत विद्या के विशेष ज्ञाता हो चुके थे, जिसकी सूचना वार्ता और उनकी रचनाओं से भी प्राप्त होती है।

सूरदास ने नंददास के मन के अनुकूल विषय को साहित्य-लहरी द्वारा उपस्थित कर उनकी श्रीमद्भागवत के प्रति निष्ठा दृढ़ की, जिसके कारण उनका मन श्रीमद्भागवत की कृष्ण-लीलाओं में क्रमशः एकाग्र होता गया। सूरदास के उपदेशानुसार ही उन्होंने गृहस्थी का भी उपभोग किया था, जिससे उनकी लौकिक आसक्ति सर्वथा निर्मूल हो गयी थी।

इस प्रकार के अनुसंधान से साहित्य-लहरी का समय वि० सं० १६०७ ज्ञात होता है। उक्त अनुसंधान के कारण यह मान लिया जाय कि नंददास के गृह जाने के अनंतर सूरदास ने समय-समय पर अन्य रस आदि के कुछ विशेष पदों की रचना कर वि० सं० १६१७ में इसकी पूर्ति की, तब भी उक्त विवरण में 'हेतु' की कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। अथवा नंददास के दूसरी बार ब्रज में आने पर उन्होंने इसकी रचना सं० १६२७ में की थी—ऐसा भी माना जाय, तब भी कोई असंगति नहीं दिखलायी देती है। इसकी रचना उपर्युक्त संवतों में से किसी भी संवत में मान ली जाय, तब भी उक्त प्रमाणों से यह निश्चित है कि साहित्य-लहरी की रचना का मूल हेतु नंददास थे।

३. सूरसागर—यह सूरदास की प्रामाणिक और सर्व प्रधान रचना है। इसके दो संस्करण अभी तक प्रकाशित हुए हैं—एक बंबई वेंकटेश्वर प्रेस से, दूसरा लखनऊ नवलकिशोर प्रेस से। पहले संस्करण में श्रीमद्भागवत के प्रथम से द्वादश स्कंध पर्यंत के पद हैं। दूसरे में केवल दशम के पूर्वार्द्ध की लीलाओं के ही पद हैं। इन दोनों में सब मिलाकर करीब ४००० पद हैं। लखनऊ वाले संस्करण के प्रारंभ में कुछ नित्य-कीर्तन के भी पद हैं, जिनमें सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएँ भी हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के अपूर्ण संस्करण में उक्त दोनों मुद्रित प्रतियों के अतिरिक्त अन्य हस्तलिखित प्रतियों से कुछ विशेष पद बढ़ाये गये हैं। उक्त सभा को प्रथम से द्वादश स्कंध वाले संस्करण की सब से ज्यादा प्राचीन प्रति सं० १७५३ की लिखी हुई काशी से प्राप्त हुई है। इसी प्रकार केवल दशम पूर्वार्द्ध वाले संस्करण की एक प्राचीन प्रति वि० सं० १६९७ की उदयपुर में है। इन दोनों प्राचीन प्रतियों से उक्त संस्करणों की प्राचीनता सिद्ध होती है।

उपलब्ध मुद्रित एवं हस्तलिखित प्रतियों के अध्ययन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह श्रीमद्भागवत का न तो अनुवाद है, न इसमें उसकी प्रथम से द्वादश स्कंध की कथाओं का पूर्ण समावेश ही हुआ है। फिर भी हमें इस विषय पर सूरसागर में सूरदास का निम्न कथन मिलता है—

व्यास कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ॥
(स्कंध १, पद २२५)

इस उल्लेख से जान पड़ता है कि सूरदास ने द्वादश स्कंध पर्यंत की कथाओं को, जो व्यास जी द्वारा कथित हुई हैं, गाया है।

इन दोनों विरोधाभास वाले कथनों का एक अविरुद्ध निष्कर्ष यह हो सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने व्यास जी की जिस समाधि भाषा को प्रमाण रूप माना है, उसी का सूरदास ने गायन किया है।

श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीमद्भागवत में त्रिविध भाषा है— लौकिकी, परमत और समाधि। लौकिकी भाषा उसे कहते हैं, जो सूत जी द्वारा ऐतिहासिक चरित्र रूप से कही गयी है। परमत भाषा उसे कहते हैं, जो अन्य ऋषि मुनियों के विभिन्न मतों के रूप में उपस्थित की गयी है। समाधि भाषा उसे कहते हैं, जो व्यास जी को समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था, उसी के वर्णन रूप में, व्यास-शुकदेव द्वारा कही हुई है। महाप्रभु जी ने इसी समाधि भाषा को प्रमाण चतुष्टय में स्वीकार किया है‡। यह भाषा भक्तिमार्ग का मूल है। इसी के आधार पर चारों भक्ति-संप्रदायों की विविध भावनाओं का विस्तार हुआ है। संभव है सूरदास ने अन्य भाषाओं की अनावश्यक कथाओं आदि पर ध्यान न दिया हो। इसी प्रकार परमत स्वरूप कर्म-ज्ञान वाले वर्णनों की भी उपेक्षा की गयी हो। भक्ति में आवश्यक ऐसे कर्म-ज्ञान का तो सूरदास ने वर्णन किया ही है, जिनके फलस्वरूप ईश्वर में प्रेम बढ़ाने वाले कर्म और ब्रह्म के माहात्म्य सूचक अनेक प्रसंग और वर्णन प्राप्त होते हैं। सूरदास का हेतु श्रीमद्भागवत वर्णन से भगवान की भक्ति और उनकी अनेक लीलाओं का कथन करना मात्र था—ऐसा ज्ञात होता है। इसीलिए सूरसागर की कथाओं में स्कंधानुक्रम होते हुए भी प्रत्येक प्रसंग या अन्य वर्णनों का भागवत-क्रम पूर्णतः अपेक्षणीय नहीं समझा गया है।

---

‡ 'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्'। (निबंध)

सूरसागर के अध्ययन से दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश स्कंध पर्यंत की प्रत्येक प्रमुख कथा को वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गाया है। उनके अंतर्गत जहाँ कहीं ईश्वर का माहात्म्य अथवा उनकी भक्ति के उल्लेखनीय वर्णन आते हैं, वहाँ सूरदास ने तद्विषयक अनेक छंदों में स्फुट पदों की रचना द्वारा प्रसंगों को ऐसा भावपूर्ण और रोचक बना दिया है, जिससे श्रोता के हृदय में भक्ति का अनायास प्रादुर्भाव होता है। इन स्थानों में सूरदास ने श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराण, महाभारत आदि का भी आश्रय लिया है। इसके लिए 'द्रौपदी सहाय' तथा इसी प्रकार के अन्य पदों को देखना चाहिए। इससे भागवत की अपेक्षा भी सूरसागर विशेष आकर्षक और उपयोगी सिद्ध होता है।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास का अभिप्राय सूरसागर की रचना द्वारा 'माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ सर्वतोऽधिक स्नेह' रूप भक्ति का वर्णन और विकास करना मात्र है, और उसमें वे पूर्णतः सफल भी हुए हैं। यह एक विकल्प है।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि जब सूरदास सूरसागर के प्रारंभ में यह स्पष्ट कहते हैं कि—

> स्याम कहे सुकदेव सों द्वादस स्कंध बनाइ।
> सूरदास सोइ कहै पद भाषा करि गाइ॥

तब संभव है उन्होंने समस्त श्रीमद्भागवत का ही अनुवाद किया हो, किंतु उसके 'सहस्रावधि' पद होने के कारण उसकी आद्योपांत प्रतिलिपि न हो सकने से उसमें से मुख्य-मुख्य अंशों को किसी ने संगृहीत कर लिया हो और उसी की फिर अनेक प्रतिलिपियाँ होती रही हों, जो आज-कल उपलब्ध हैं।

इस अनुमान की पुष्टि सूरसागर की अनेक प्रतियों के पदों का मिलान करने से भी होती है। सूरसागर की उपलब्ध प्रतियों में दशम-स्कंध के पद ही विशेष रूप से मिलते हैं, किंतु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में सं० १७९८ की एक ऐसी प्रति का विवरण दिया गया है, जिसमें दशम-स्कंध का केवल १ पद है, और द्वादश स्कंध के १७४९ पद हैं। इससे ज्ञात होता है कि अन्य स्कंधों के भी अनेक पद रचे गये होंगे, जो इस समय किसी कारणवश उपलब्ध नहीं हो रहे हैं।

जो भी हो, "सूर-सारावली" के 'सार' वाले उल्लेख से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि—

(१) सूरदास ने अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी से श्रीमद्भागवत तत्व का उपदेश प्राप्त कर उसकी अनेक विध हरि-लीलाओं को गाया था, जिनका आधार श्रीमद्भागवत और उसके अनुकूल अन्य पुराण, महाभारत, रामायण, पंचरात्र और संहितादि रहा है। ये लीलाएँ कथात्मक शैली की हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि इनको उन्होंने अपने सेवकों को उपदेशार्थ गाया था।

(२) संप्रदाय की नित्य और वर्षोत्सव की लीलाओं को प्रति वर्ष नवीन भाव, छंद और वर्णन की विभिन्नता से सूरदास ने श्रीनाथ जी के सम्मुख स्वतः उद्गार रूप से गाया था।

संभव है ये दोनों संग्रह प्रारंभ में भिन्न-भिन्न रूप में लिखे जाते हों और पीछे किसी ने उन्हें एक कर दिया हो, जो आज द्वादश स्कंधात्मक और दशम पूर्वार्द्ध के रूप में उपलब्ध होते हैं।

द्वादश स्कंधात्मक उपलब्ध संस्करण निम्न लिखित पदों के अनुसंधान से सूरदास के बाद का संकलन निश्चित होता है। सूरसागर के जो पद अप्रासंगिक हैं, उनका ज्ञान उनके अध्ययन से स्वतः हो जाता है।

उदाहरणार्थ संख्या १६ से २२३ तक के पद स्पष्टतः सूरदास के दीनता, आश्रय और विनय आदि के हैं। इनका उस स्थान की कथा से कोई संबंध ज्ञात नहीं होता है। इनमें सूरदास के व्यक्तिगत उद्गार प्रकट हुए हैं। यथा—

महा मोह में परयौ 'सूर' प्रभु काहें सुधि बिसरी ॥ पद १६ ॥
असरन सरन 'सूर' जाँचत है को अब सुरति करावै ॥ पद १७ ॥

इसी प्रकार अन्य स्थानों में प्राप्त कई पद अप्रासंगिक हैं। इनसे सूरसागर के इस संस्करण का संकलन सूर के अनंतर किसी व्यक्ति द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस मान्यता के आधार पर सूरसागर के नवीन संस्करणों में भागवत के क्रमानुसार परिवर्तन करना चाहिए। इसके स्पष्टीकरण के लिए यहाँ सूरसागर–प्रथम स्कंध के कुछ पदों पर विचार किया जाता है।

(प्रथम स्कंध)

प्रथम अध्याय—

सूरसागर के ३, ४, ५, ६, ७, ६, १०, ११, १२, १३, १४, १५ संख्या वाले पद मंगलाचरण (भागवत) के श्लोक में वर्णित निर्गुण स्वरूप की सगुण लीलाओं का बोध कराने वाले हैं। ये सब पद सूरसागर संख्या २

वाला पद—"अविगत गति कछु कहत न आवै" के अंतिम चरण वाले "तातैं सूर सगुन-पद गावै।" कथन का विस्तार रूप है। इससे भगवान का अनवगाह्य माहात्म्य, 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुंम सर्व सामर्थ्य रूप' तथाच भक्त-वत्सलता, शरणागत-वत्सलता आदि गुण भी प्रकट होते हैं।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः स्नेहो भक्तिरिति"—इस प्रकार की आचार्य प्रतिपादित भक्ति को हृदयस्थ करने के लिए प्रथम 'ईश्वर का माहात्म्य', फिर उनके दिव्य गुणों का जानना जरूरी है। इसीलिये सूर ने भागवतोक्त भगवल्लीला वर्णन के पूर्व मंगलाचरण वाले श्लोक के भक्ति-पक्ष को स्पष्ट किया है। यह कथन "सत्यं परम धीमहि" का ही भाष्य है—यदि ऐसा कहा जाय तो यथार्थ होगा।

उक्त संख्या वाले पदों में ८ वाँ पद "प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ" सूरसागर के उक्त प्रसंग से असंबद्ध है। वार्ता के अनुसार सूरदास ने इस पद का कथन अपने अंतिम समय में गो० विट्ठलनाथजी के लिए किया था। इसकी सत्यता "बदन प्रसन्न कमल सन्मुख ह्वै देखत हो हरि जैसे" इत्यादि पंक्तियों से स्पष्ट होती है। इसके प्रत्यक्षदर्शी वचन हरि के सदृश किसी अन्य व्यक्ति के लिए कहे हुए स्पष्ट प्रतिभासित हो रहे हैं।

सूरसागर के १६ से २२३ संख्या तक के स्फुट पद दीनता, आश्रय और विनय विषयक हैं, जो अप्रासंगिक हैं। सूरसागर का २२४ संख्या वाला पद भागवत के द्वितीय श्लोक में प्राप्त उसके कथा-माहात्म्य के अनुकूल है। भागवत तृतीय श्लोक "निगम कल्पतरु" के अनुसार यहाँ पर सूरसागर का 'निगम कल्पतरु' वाला पद देना आवश्यक था। इसी प्रकार सूरसागर का 'सुत व्यास सों हरिगुन सुने' वाला सं० २२८ का पद भागवत के ४-५ श्लोक के अनुसंधान से यहाँ देना आवश्यक था।

द्वितीय अध्याय—

इसके बाद "व्यास कह्यौ जो सुक सों गाय" यह शुक के जन्म की कथा वाला सं० २२६ का पद भागवत श्लोक २ के व्याख्यान रूप होने से आवश्यक है। इसमें शुकदेव का वर्णन आने से सूरदास ने अन्य पुराणों से शुक के जन्म की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय—

इसमें भगवान के अवतारों का वर्णन है। सूरदास ने इन अवतारों में व्यास का सबसे प्रथम वर्णन पद सं० २२९ में किया है। भागवत के श्लोकों

में जहाँ व्यास-जन्म का अत्यंत सूक्ष्म उल्लेख है, वहाँ सूरदास ने उसका बड़े रोचक ढंग से विस्तार के साथ वर्णन किया है। उसमें "देखो काम प्रताप अधिकाई। कियौ परासर बस रिषिराई॥ प्रबल शत्रु अहै यह मार। यातैं संतो चलौ सँभार॥' —इस प्रकार उपदेश भी दिया है। यहाँ अन्य अवतारों के उल्लेख वाला पद भी होना चाहिए था।

चौथा, पाँचवाँ, छठा अध्याय—

व्यास जी के असंतोष का विशद वर्णन—"भयौ भागवत जा परकार।' सं० २३० के पद में है। इसमें भागवत की महिमा और नारदजी के चरित्र का संकेत भी है। श्लोक २८ से ३७ तक के अंतर्गत लीला-कीर्तन का माहात्म्य है। इन्हें सूरदास ने पद सं० २३१ से २३५ तक नाम माहात्म्य के रूप में गाया है। फिर विदुर-गृह-गमन और द्रौपदी-वस्त्र-हरण के पद २३७ से २५६ तक के वर्णनों से सूरदास ने उस भक्ति की महिमा के उत्कर्ष को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया है। इन पदों में सूरदास ने अनेक प्रकार से भक्ति को प्रकट किया है। इसके अध्ययन से हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता है।

सात से पंद्रह अध्याय—

इन अध्यायों में भागवत के मुख्य अधिकारी परीक्षित के जन्म से संबंधित और पांडव के उत्तर-गमन विषयक महाभारत की कथा है। इसके वर्णन में सूरदास ने पद सं० २६० से २६१ तक पांडव-राज्याभिषेक का समय संक्षिप्त एवं रोचक ढंग से गाया है।

इनके वर्णन में सूरदास ने भागवत के अध्यायों के क्रम का अनुसरण नहीं किया है, क्यों कि ऐसा करने से कथा में रोचकता और सरलता नहीं आ सकती थी।

भीष्म के कथन के तत्वरूप से सूरदास ने २६२ से २६५ तक के स्फुट पद और गाये हैं। सं० २६६ का पद अप्रासंगिक है। सं० २६७ से २८० तक में भक्त-वत्सलता का वर्णन है। इनमें अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण-गृह-गमन, भीष्म के प्रति दुर्योधन के वचन, भीष्म-प्रतिज्ञा आदि का कथन किया गया है। पद २८२, २८३ में कुंती-स्तुति का वर्णन है, जो अध्याय ८ के अनुकूल होने के कारण पहले दिया जाना चाहिए। पद २८१ में द्वारिका-गमन का वर्णन है, जो भागवत अध्याय १० के अनुकूल है। इसी प्रकार पद सं० २८४ से २९८ तक का वर्णन भागवत क्रम के अनुकूल एवं प्रासंगिक है, किंतु सं० २९९, ३०५, ३०९ और ३२५ वाले पद अप्रासंगिक हैं।

आज कल कई विद्वानों का ध्यान सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण निकालने की ओर गया है, किंतु उनको सूरसागर का मूल स्वरूप निश्चित करने में बड़ी कठिनाई ज्ञात होती है। हमने अपने मतानुसार सूरसागर के मूल स्वरूप का निर्देश किया है। यदि इस प्रकार के परिवर्तन और संशोधन के अनुसार सूरसागर का संपादन किया जाय तो पूर्व विकल्प भी संगत हो जायगा और इससे श्रीमद्भागवत की संगति भी मिल जायगी। इस प्रकार के संपादन में विनय तथा नित्य एवं नैमित्तिक वर्षोत्सव वाले लीला-पदों को भिन्न-भिन्न रूप से परिशिष्टों में देना होगा। इनके अतिरिक्त प्रासंगिक एवं विशिष्ट स्फुट रचनाओं का संपादन उनके वृत्त के साथ स्वतंत्र रूप से करना उचित है। इस प्रकार संपादन होने पर ही हम सूरसागर के मूल रूप की वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकेंगे। संपादन के पूर्व सूरदास के पदों की विशेष खोज भी नितांत आवश्यक है।

अब यहाँ पर सूरदास की उन १४ कृतियों पर भी विचार करना है, जिनको हमने सूरसागर के अंतर्गत उनकी प्रामाणिकता रचनाएँ माना है।

भागवत भाषा, दशमस्कंध भाषा, सूरसागर-सार, सूर-रामायण— इन रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी मिलता है। इनके नाम और परिचय से ये स्पष्टतया सूरसागर की ही अंश ज्ञात होती हैं। सूर-रामायण सूरसागर के नवम स्कंध के राम-विषय पदों का संकलन है।

मानलीला और राधारसकेलिकौतुहल – ये दोनों रचनाएँ श्रीनाथजी के मंदिर में आज तक गायी जाती हैं। 'मानलीला' में मान के स्फुट पदों का संग्रह है। 'राधारसकेलिकौतुहल' का दूसरा नाम 'मान-सागर' भी है, जो मान का विस्तृत वर्णन करने वाली बड़ी रचना है। यह मंदिरों में ग्रहण आदि के समय गायी जाती है।

गोवर्धनलीला—इसमें एक सौ से भी ज्यादा पद हैं, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के विस्तृत अनुवाद रूप हैं, अतः इस रचना का समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है। इसको सरस लीला भी कहते हैं। सूरदास के गोवर्धन-लीला विषयक फुटकर गेय पद भी प्राप्त हैं, जो अन्नकूट के समय मंदिरों में गाये जाते हैं।

दान लीला—सूरदास की तीन बड़ी-बड़ी दान लीलाएँ प्राप्त हैं, जो 'व्रजनागरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मंदिरों में गायी जाती हैं। दानलीला के अन्य स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं।

भँवर गीत—यह सूरदास की प्रसिद्ध और प्रशंसनीय रचना है। इसके भी तीन बड़े-बड़े पद उपलब्ध हैं, जो श्रीमद्भागवत दशम स्कंध के विस्तृत अनुवाद हैं। इनका समावेश सूरसागर के ही अंतर्गत हो जाता है।

नाग लीला—यह भी सूरदास की प्रामाणिक रचना है और श्रीमद्-भागवत दशम स्कंध की कथा से संबंधित है। इसका समावेश भी सूरसागर के अंतर्गत हो जाता है।

ब्याहलो—इसके कई पद सूरसागर और वल्लभ संप्रदाय की कीर्तन पुस्तकों में उपलब्ध हैं। इसका एक विस्तृत पद चौपाई और गीतिका छंद में भी उपलब्ध होता है। ये सब पद संप्रदाय के मंदिरों में देव प्रबोधिनी को गाये जाते हैं। इस रचना में राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है।

प्राणप्यारी—इस रचना को सूरसागर के अंतर्गत नहीं पाने से डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसे संदिग्ध माना है, किंतु यह रचना संप्रदाय के मंदिरों में राधाष्टमी के अनंतर निश्चित समय में और निश्चित रूप से गायी जाती है। इसको श्याम-सगाई भी कहते हैं। यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है और इसका समावेश सूरसागर के अंतर्गत होना चाहिए।

दृष्टिकूट के पद और सूर-शतक—ये सूरदास के दृष्टिकूट पदों के स्फुट संग्रह हैं। संभवतः ये दोनों एक ही रचना के उभय रूप हैं। सूर-शतक में सूरदास की दृष्टिकूट शैली के १०० पदों का सूरसागर से संग्रह किया गया है। इनकी टीका भी संग्रहकार ने ही की है। सूर-शतक के निम्न लिखित मंगला-चरण से उसका परिचय इस प्रकार मिलता है—

श्री 'गोवर्धनधरन' जय करन सरन जन मोद।
बृंदारक वंदित सकल बृंदा विपिन विनोद॥
'श्रीवल्लभ' 'विट्ठल' पदन वंदित विसद विचार।
बढ़त सुविद्या बुद्धि बल विनसत विकट विकार॥
भक्तन के पद हिय धरत जिय कौ प्रियकर होत।
तम तजि उत्तमता उदित विदित जगत कौ पोत॥
यह संसार असार में हरि-कीर्तन सुखसार।
कहे करत सबहून लों बड़े उबर बिसार॥
उपकारक हे सबन कों हेतु अर्थ समुझाय।
तातें गाये भक्त जन भाषा सरल सुभाय॥

सूरदास तिनमें भए जगत जगत ज्यों सूर ।
गाये सब विधि करि सुजस हरिलीला रस पूर ॥
जिनके पद में 'गूढ़' बहु 'अर्थ भाव' को व्यंग ।
सूझि परे जेते तिने संग्रह कियौ सुसंग ॥
श्री वल्लभकुल सकल की कृपा पाय अनुक्रोस ।
'भाग नगर' दच्छिन दिसा कियौ सुमति निरदोस ॥
"बालकृष्ण" की बीनती सुनिए रसिक सुपंथ ।
लीजै सुमति सुधार कैं "सूर सतक" यह ग्रंथ ॥

यह बालकृष्ण कवि श्रीगुसांई जी के २५२ सेवकों में से थे। उनकी वार्ता "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में है। इसमें उनको भागनगर दक्षिण के रहने वाला ब्राह्मण कहा है। यह कवि श्रीगुसांई जी का सेवक होने के कारण सूरदास का भी समकालीन था। कवि की उपस्थिति का समय उसके माला-प्रसंग के इस पद से जाना जा सकता है—

वल्लभकुल में कलहंस कुल कलसा। भक्ति मर्यादा राखी, चारों वेद बदैं साखी तिलक और माल पहरे सांचे तुलसा॥ कलियुग में कीरत भई तिहूँ लोक जस गावैं नारी नर घर-घर सरसा। 'बालकृष्ण' बलिहारी कहाँ लों कहैं बिहारी गोकुलनाथ चिर जियो कोटि बरीसा॥

इस पद से कवि की स्थिति श्री गोकुलनाथ जी के माला-प्रसंग के समय अर्थात् वि० सं० १६७७ पर्यंत तो अवश्य थी—ऐसा निश्चित होता है। कवि ने 'सूर-शतक' में सूरदास के दृष्टिकूट वाले १०० पदों का अर्थ किया है। काशी नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में लिखा है—

"यह टीका तथा संग्रह श्रीवल्लभ संप्रदाय के आचार्य काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भागनगर में कियो।"

रिपोर्ट का यह उद्धरण भ्रमात्मक है। गुजरात में भागनगर नाम का कोई ग्राम नहीं है। वल्लभ संप्रदाय में मुसलमानों के नामों से संबंधित ग्राम एवं नगरों का उच्चारण नहीं होता है, इसलिए जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर कहते हैं, उसी तरह दक्षिण हैदराबाद को "भागनगर" कहते हैं। यह नाम आज तक वहाँ की जनता में भी प्रसिद्ध है। अतः जैसा पहले कहा

1 अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० १०४

जा चुका है, इसका संग्रह और इसकी टीका सूरदास के प्रायः समकालीन और श्री गुसांई जी के सेवक बालकृष्ण कवि ने की है। यह रचना भी सूरसागर का ही अंश है। इसकी अनेक प्रतियाँ संप्रदाय में सर्वत्र प्राप्त हैं। इसका मुद्रण बंबई से प्रकाशित ठाकोरदास वाली "दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता" के अंत में भी हो चुका है।

इस प्रकार सूर-सारावली, साहित्य-लहरी और सूरसागर सूरदास की प्रमुख रचनाएँ हैं। सूरदास की जिन १४ छोटी रचनाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे वास्तव में सूरसागर के ही अंतर्गत हैं। उपर्युक्त तीनों प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त सूरदास की ४ स्वतंत्र रचनाएँ और हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

४. सूरसाठी—वार्ता के अनुसार सूरदास ने इसकी रचना एक बनिया के लिए की थी, अतः यह एक स्वतंत्र रचना है। सूरसागर में जिस स्थान पर यह प्राप्त होती है, वहाँ इसकी असंगति स्पष्ट ज्ञात होती है।

५. सूर-पचीसी—वार्ता के अनुसार इसकी रचना सूरदास और अकबर की भेंट के समय हुई थी, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

६. सेवाफल—महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के संस्कृत ग्रंथ "सेवाफल" के विवरण स्वरूप सूरदास ने इसकी रचना की थी। महाप्रभु जी ने अपने 'सेवाफल विवरण' नामक संस्कृत ग्रंथ में कहा है—

"सेवाया फलत्रयं। अलौकिकसामर्थ्यं, सायुज्यं सेवोपयोगिदेहो वा वैकुण्ठादिषु।"

सूरदास रचित इस सेवाफल में भी 'वैकुण्ठादिषु' का विशेषतः स्पष्टीकरण हुआ है, अतः यह भी एक स्वतंत्र रचना है।

७. सूरदास के पद—इसमें सूरदास के स्फुट पदों का संग्रह है। सूरदास ने मंदिर में प्रार्थना आदि के रूप में तथा कतिपय व्यक्तियों को वैराग्य आदि का उपदेश देते हुए जिन छोटे-छोटे पदों की रचना की थी, उन सबका इसमें समावेश हो जाता है। सूरसागर के प्रासंगिक वैराग्यादि के पद इन पदों से भिन्न समझने चाहिए। इन दोनों प्रकार के पदों का पृथक्करण इनके अध्ययन से हो सकता है। शयन के अनंतर और मंगला-आरती के पूर्व जो दीनता, आश्रय और विनय आदि के पद मंदिरों में गाये जाते हैं, जिनमें कई स्थानों पर आत्म-चारित्रिक उल्लेख भी आ गये हैं, वही पद इस रचना के अंतर्गत हैं।

सूरदास की समस्त रचनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे स्वतंत्र और परतंत्र दो प्रकार की हैं। उनकी स्वतंत्र रचनाओं में आत्मानुभूति और भावानुभूति के सजीव वर्णन मिलते हैं, जिनके कारण वे साहित्य-गगन के सूर्य माने गये हैं। उनकी परतंत्र रचनाएँ श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों के अनुवाद रूप हैं। इनमें भी जहाँ मनोवैज्ञानिक ढंग का कथन हुआ है, वहाँ सूरदास की वर्णन-शैली के कारण वे परतंत्र होते हुए भी चमत्कृत हो गयी हैं; जैसा कि भ्रमरगीत आदि से ज्ञात होता है। जिन परतंत्र रचनाओं में केवल वर्णनात्मक कथन है, वहाँ कुछ शिथिलता भी दिखलायी देती है।

प्रामाणिकता की परीक्षा—

सूरदास नाम के कई कवि हुए हैं, अतः उनकी रचनाओं का सूरसागर में मिल जाना स्वाभाविक है। इसके लिए सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिकता की जांच करना नितांत आवश्यक है। अष्टछापी सूरदास कृत रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच उनकी रचना-शैली, भाषा-शैली, भाव, सिद्धांत और विचारों की विशिष्टता के कारण सरलता पूर्वक हो सकती है। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में परंपरागत प्रचलन और सार्थक शब्द-योजना सूरदास के प्रामाणिक पदों की मुख्य पहचान है। सार्थक शब्द-योजना की शैली सूरदास के पदों की विशिष्टता है, जो अन्य कवियों की रचनाओं में प्रायः कम मिलती है। सूरदास की सार्थक शब्द-योजना का कुछ परिचय हम गत पृष्ठों में उनके अंधत्व के संबंध में दे चुके हैं।

रचना-परिमाण—

सूर-सारावली के 'एक लक्ष पदबंद' वाले उल्लेख से अनेक विद्वानों ने अनुमान किया है कि सूरदास ने एक लाख पदों की रचना की थी। हम गत पृष्ठों में सूर-सारावली पर लिखते हुए यह स्पष्ट कर चुके हैं कि उपर्युक्त उल्लेख संख्यावाची नहीं है। फिर भी परंपरागत जनश्रुतियों और वार्ता के प्रमाण से यह ज्ञात होता है कि सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी।

अनुसंधान करने पर अब तक सूरदास कृत ८-१० हज़ार से अधिक पद प्राप्त नहीं हुए हैं, इसलिए उनके द्वारा लाख–सवालाख पद-रचना की बात अविश्वसनीय सी ज्ञात होती है। कुछ विद्वानों ने सूरदास के रचना-काल का हिसाब लगा कर यह सिद्ध किया है कि उनकी नेत्र-विहीनता और श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रति दिन एक नया पद गाने के कारण उनके द्वारा लाख–सवालाख पद-रचना की बात संभव भी ज्ञात नहीं होती।

अवश्य ही इस समय सूरदास कृत ८-१० हजार से अधिक पदों प्रसिद्ध नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भी संदेह है कि पूर्ण अनुसंधान के अनंतर भी उनके रचे हुए लाख–सवालाख पद कभी मिल सकें। फिर भी हम यह देखना चाहते हैं कि उनके द्वारा इतने अधिक पद रचने की बात संभव भी है या नहीं।

सूरदास के चरित्र-प्रकरण में लिखा जा चुका है कि वे अपनी ३१ वर्ष की आयु में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के सेवक हुए थे। इससे पूर्व वे प्रायः १८ वर्ष की आयु से ३१ वर्ष की आयु तक अपनी स्वामी अवस्था में विनय-दीनता आदि के पदों द्वारा अपने शिष्य-सेवकों को उपदेश दिया करते थे। यह अवस्था यदि १३ वर्ष तक मानी जाय, और उस समय उन्होंने प्रति दिन कम से कम एक पद की भी रचना की हो, तो वल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व वे कम से कम ४५०० पदों की रचना कर चुके थे।

श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के पश्चात् सूरदास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में रहे थे। गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि उनका श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन-सेवा में रहना वि० सं० १५६७ से प्रारंभ होता है। इससे पूर्व केवल कुंभनदास श्रीनाथ जी के यहाँ कीर्तन किया करते थे; किंतु वे गृहस्थ होने के कारण आठों दर्शनों में उपस्थित नहीं रह सकते थे। इस आवश्यकता की पूर्ति महाप्रभु जी ने सूरदास को श्रीनाथ जी के यहाँ स्थायी रूप से कीर्तन-सेवा में रख कर की थी। तब से सूरदास श्रीनाथ जी के मुख्य कीर्तनकार हुए। इस वृत्तांत के आधार पर श्रीनाथ जी के सन्मुख तब से नित्यप्रति आठों समय के कम से कम नये आठ कीर्तन भी गाये गये मान लिये जाँय, तब भी सूरदास ने प्रति वर्ष २८८० नये कीर्तनों की रचना की होगी।

यह संभव नहीं कि आशु कवि अपने बनाये हुए अमुक पदों का ही श्रीनाथ जी के सन्मुख नित्य प्रति पाठ करते हों। यह बात सूरदास जैसे प्रकृत आशु कवि के लिए तो और भी असंभव मानी जायगी। चूंकि श्रीनाथ जी सूरदास के इष्टदेव थे और सूरदास उनके सच्चे भक्त थे, इसलिए अपनी भक्ति के उद्रेक में अनेक भावों द्वारा नित्य प्रति नये पदों की रचना कर श्रीनाथ जी को सुनाना और रिझाना ही उनका मुख्य ध्येय था। फिर सूरदास के हृदय में भगवल्लीलाओं की अनेक तरंगें भी उठती रहती थीं, जिनको वे तत्काल पद-रचना द्वारा व्यक्त करते थे। इन सब बातों का विचार करने पर यह सरलता से समझा सकता है कि सूरदास जिस पद को एक बार गा लेते थे, उसको फिर नहीं गाते थे।

उक्त २८८० कीर्तनों में यदि आधे कीर्तन कुंभनदास के भी मान लिए जाँय, तब भी सूरदास प्रतिवर्ष श्रीनाथ की सेवा विषयक १४४० पद नये रचकर अवश्य गाते थे। इस संख्या का क्रम तब तक माना जायगा, जब तक परमानंददास श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में नियुक्त नहीं हुए थे।

महाप्रभु जी ने वि० सं० १५७७ में परमानंददास को सूरदास के साथ श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा करने की आज्ञा दी थी, अतः वि० सं० १५६७ से १५७७ पर्यंत के ११ वर्ष में सूरदास ने पूर्व हिसाब से कम से कम १५८४० नये पद अवश्य रचे होंगे। इस प्रकार वि० सं० १५७७ तक सब मिलाकर सूरदास २०००० से भी ऊपर पदों की रचना कर चुके थे।

परमानंददास की नियुक्ति के पश्चात् हम कीर्तन के पदों की संख्या को तीन भागों में विभाजित कर देंगे। परमानंददास वि० सं० १५७७ से श्रीनाथ जी की सेवा में नियुक्त हुए थे, अतः तब से अष्टछाप की स्थापना तक सूरदास के प्रति वर्ष लगभग ९०० पद मान लेना आवश्यक है।

महाप्रभु जी ने कृष्णदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा नहीं दी थी। शरण में लेने के बाद उनको प्रारंभ में भेंट उगाहने की सेवा दी गयी थी। इसके बाद उनको भंडारी और अंत में अधिकारी बनाया गया। इसलिए अष्टछाप की स्थापना के पूर्व हम उनको श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मान सकते हैं।

अष्टछाप के छीतस्वामी, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास को भी हम तब तक कीर्तन-सेवा का साझीदार नहीं मानेंगे, जब तक अष्टछाप की नियमित स्थापना नहीं हुई थी। हाँ ! उनको सहायक रूप में कीर्तन करने की आज्ञा अवश्य मिली होगी।

वि० सं० १६०२ में गो० विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की थी, अतः वि० सं० १५७७ से वि० सं० १६०२ पर्यंत के २५ वर्षों में प्रति वर्ष के ९०० पदों के हिसाब से सूरदास ने २२५०० पद और रचे होंगे। इस प्रकार अष्टछाप की स्थापना के समय तक सूरदास सब मिलाकर लगभग ४२५०० पदों की रचना कर चुके थे।

अष्टछाप की स्थापना के अनंतर प्रति वर्ष के २८८० पदों के ८ भाग कर देने से सूरदास द्वारा गाये हुए पदों की संख्या ३६० होती है। यह क्रम सं० १६०२ से सूरदास के अंतिम समय सं० १६४० तक चलता रहा था, अतः इस अवधि के ३९ वर्षों में सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या १४०४०

होती है। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ देने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की कुल संख्या ४६४४० हो जाती है। यह संख्या सूरदास द्वारा नित्य गाये जाने वाले श्रीनाथ जी के आठों समय के कम से कम पदों की है।

गो० विट्ठलनाथ जी ने वि० सं० १६०२ से सेवा मार्ग का जो विस्तार किया था, उसमें अनेक वर्षोत्सव बढ़ाये गये थे। इनके अनुसार डोल, दुतिया पाट, संवत्सर, गनगौर, रामजयंती, महाप्रभु का जन्मोत्सव, अक्षय तृतीया, नृसिंह जयंती, ज्येष्ठाभिषेक, षष्ठपंडग, पवित्रा एकादशी, रक्षा, वामन जयंती, साँझी, दशहरा, शरदोत्सव, धनतेरस, रूप चतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट, भैया-दोज, गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, व्रतचर्या, मकर संक्रांति, बसंत, होरी आदि उत्सवों का प्रचलन आरंभ हुआ। इनके अतिरिक्त फूलमंडली, खसखाना, हिंडोरा, रथ और श्री विट्ठलनाथ आदि के जन्मोत्सव भी इस वर्षोत्सव की सेवा में सम्मिलित हैं। रथ के उत्सव के सिवाय अन्य सब उत्सव गो० विट्ठलनाथ जी ने सं० १६०२ में आरंभ कर दिये थे।

गो० विट्ठलनाथ जी ने इन उत्सवों के दिन भी निश्चित कर दिये थे। जैसे जन्माष्टमी की बधाई श्रावण कृष्णा ४ से आरंभ होकर एक मास और चार दिन पर्यंत गायी जाती है। इस हिसाब से उक्त उत्सवों का सब मिलाकर समय प्रायः ६ मास का होता है।

९ मास पर्यंत के इन विशेष उत्सवों का यदि एक-एक पद भी सूरदास का मान लिया जाय, तब भी उनके रचे हुए वर्ष भर के २७० पद होते हैं। इस हिसाब से उनके रचे हुए ३९ वर्ष के १०५३० पद और होते हैं। इस संख्या को पूर्व संख्या में जोड़ने से सूरदास के सब मिला कर ६७०७० पद होते हैं।

अब सेवा—पद्धति के अनुसार शयनोत्तर गाये जाने वाले दीनता-आश्रय के पदों का हिसाब भी लगाना चाहिये। यह प्रणाली महाप्रभु के समय से ही रखी गयी है, अतः सूरदास कृत प्रतिदिन कम से कम एक पद भी दीनता-आश्रय का माना जाय, तो उनके ७३ वर्ष के सांप्रदायिक काल में रचे हुए २६२८० पद और होते हैं। पूर्व संख्या में इस संख्या को जोड़ने से सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या ९३३५० निश्चित होती है।

अब रह जाते हैं सूरदास के सागरोक्त लीला, सिद्धांत और अनुवादात्मक पद। उन्होंने श्री भागवत की तृणावर्त-अघासुर वध, माटी भक्षण, कालीयदमन आदि लीलाओं में से प्रत्येक के अनेक पद रचे हैं, जिनका हिसाब लगाना

भी कठिन है। यदि इन पदों को पूर्व संख्या में जोड़ा जाय तो सूरदास द्वारा रचे हुए लाख-सवालाख पदों की बात प्रमाणित हो जाती है। हमने सूरदास के पदों की जो आनुमानिक गणना की है, वह कम से कम है और प्रामाणिक आधार पर है, अतः उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं है।

अब यहाँ पर अष्टसखाओं कृत सांप्रदायिक सेवा के प्राप्त पदों की संक्षिप्त सूची दी जा रही है जिसमें सूरदास द्वारा रचित कई उत्सवों के आवश्यक पद भी नहीं मिलते हैं। कुछ के एक-दो ही पद मिलते हैं; इस लिए यह मानना होगा कि सतत खोज करने पर सूरदास के असंख्य पद और मिलने चाहिएँ। वल्लभ संप्रदाय के स्फुट कीर्तन ग्रंथों में भी अभी सूरदास के ऐसे अनेक पद उपलब्ध होते हैं, जो सांप्रदायिक मंदिरों के अतिरिक्त अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं हैं। इनका संकलन करने से भी सूरदास के प्राप्त पदों में कई हजार पद और बढ़ जावेंगे।

अष्टछाप कृत सेवा विषयक वर्षोत्सव के पद।

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों का प्रथम चरण
जन्माष्टमी —	सूरदास	व्रज भयौ महरि कें पूत
,,	कुंभनदास	नंद महरि के पूत भयौ
,,	परमानंददास	जन्म फल मानत जसोदा माय
,,	कृष्णदास	गोकुल बरषत आनंद मेहा
,,	गोविंदस्वामी	नंद महरि के आज बधाई
,,	चतुर्भुजदास	नैंन भरि देखो नंदकुमार
,,	नंददास	पुत्र भयौ है आज श्री नंदराज के
पलना —	सूरदास	दिव्य कनिक कौ बन्यौ पालनौ
,,	परमानंददास	झुलावै सुत कौं महरि पलना
,,	कृष्णदास	परम मनोहर बन्यौ है पलना
ढाढ़ी —	सूरदास	नंद जू मेरे मन आनंद भयौ
,,	कृष्णदास	नंद जू हौं ढाढ़ी वृषभान गोप कौ
,,	गोविंदस्वामी	आज नंद-गृह कौतुक सुनिकैं
,,	चतुर्भुजदास	हौं व्रजराज कौ ढाढ़िन
,,	नंददास	रंग भीनी ढाढ़नि अति रुचि सौं चारु मंगलरा गावै हौं

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
मास दिना—	सूरदास	तेल भरे भरे केस मीचे
अन्नप्राशन—	सूरदास	आज कान्ह करि हैं अन्न प्रासन
,,	परमानंददास	अन्न प्रासन दिन नंदलाल को करत यसोदा माय
कर्णछेदन —	सूरदास	कान को कर्णछेदन हाथ सुहारी भेली गुर की
,,	परमानंददास	गोपाल के वेध कर्ण को कीजे
,,	कृष्णदास	आयो कर्ण वेध दिन नीको
नामकरण—	परमानंददास	जहाँ गगन गति गर्ग कह्यो
मृतिका भक्षण —	सूरदास	मोहन ते माटी क्यों खाई
,,	परमानंददास	देखो गोपालजू की लीला ठाटी
करवट—	परमानंददास	करवट लई प्रथम नँदनंदन
ऊखल—	सूरदास	निगम साखि देखो गोकुल हरी
,,	परमानंददास	गोविंद बार-बार मुख भाखे
बाललीला—	सूरदास	आँगन स्याम नँचावहिं यसोमति रानी
,,	परमानंद	रानी तेरे लाल सों कहा कहूँ
,,	कृष्णदास	लेउ लाल मेरे लाल खिलौना
,,	गोविंददास	गोपी नाँचति गोद ले गोविंद
,,	चतुर्भुजदास	माई लोन देहु जो मेरे लालहिं भावे
,,	नंददास	माधो जू तनिक सो बदन सदन सोभा को
पूतना वध —	सूरदास	देखो यह विपरीत भई
शकटासुर वध—	सूरदास	नृपति बचन यह सबन सुनायो
तृणावर्त —	सूरदास	सोभित सुभग नंदजू की रानी
दावानल—	सूरदास	अबके राखि लेहु गोपाल
कालीयदमन—	सूर	अति कोमल तनु धरयो कन्हाई
चंद्रावली जू की बधाई—	कृष्णदास	चंद्रभान के नवनिधि आई
राधिका जी की बधाई—	सूरदास	आज बरसाने बजत बधाई
,,	कुंभनदास	प्रगटि नागरी रूप निधान
,,	परमानंद	राधा जू को जनम सुन्यो मेरी माई
,,	कृष्णदास	श्रीवृषभान रायजू के आँगन
,,	गोविंददास	सुनियत रावल होत बधाई

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
राधिका जी की बधाई—	छीतस्वामी	सकल लोक की सुंदरता वृषभान गोप कें आई
,,	चतुर्भुजदास	तू देखि सुता वृषभान की
,,	नंददास	बरसाने तें दौरी नारी एक नंद-भवन में आई
राधाजी की ढाढ़ी—	कृष्णदास	महिर जू ! याचन तुम पै आयौ
राधिका जी कौ पलना—	सूरदास	अहो मेरी लाड़िली कुँवरि
,,	परमानंददास	रसिकिनी राधा पलना झूलै
,,	कृष्णदास	लड़ेती पालने झूलैं
राधिकाजी की बाललीला	सूरदास	खेलन के मिस कुँवरि राधिका
,,	परमानंददास	एहै पीत पट कहाँ तें पायौ
नवल नागरी—	सूरदास	नवल नागरी सब गुन आगरी
दान—	सूरदास	मोहन तुम कैसे हो दानी
,,	कुंभनदास	हमारौ दान देहो गुजरेटी
,,	परमानंददास	पिछौंडी बाँहन देहो दान
,,	कृष्णदास	नीकें दान निबेरत हो
,,	गोविंदस्वामी	गोरस बेचन लैं चली
,,	छीतस्वामी	अहो बिधना तोपै अचरा पसारु
,,	चतुर्भुजदास	कहो किन कीनों दान दही को
,,	नंददास	लाल तुम परे हमारे ख्याल
बामन जी—	सूरदास	राजा मैं दानी सुनि कैं आयौ
,,	परमानंददास	बामन आये बली पै माँगन
,,	गोविंदस्वामी	प्रगटे श्री बामन अवतार
साँझी—	सूरदास	राधाप्यारी कह्यौ सखीन सों
देवी पूजन—	सूरदास	व्रत धरि देवी पूजी
,,	परमानंददास	श्री राधे कौन गौर तैं पूजी
,,	गोविंदस्वामी	पूजन चलो हो कदम बन देवी
मुरली—	सूरदास	मुरली हरि कों अपने बस कीने माय
,,	परमानंददास	यातें माई भवन छांडि बन जैये
,,	कृष्णदास	बाँसुरी बाजत मदनमोहन
,,	चतुर्भुजदास	नंदलाल बजाई बांसुरी श्री यमुना जू के तीर री

वार्तिक	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
करवा—	सूरदास	परदेसनि नारि अकेली
,,	कृष्णदास	पाँय तौ पूजि चले रघुनाथ
,,	नंददास	कपि चल्यौ सीय सुधि कों
दशहरा (जवहारा)—	परमानंददास	सरद रितु सुभ जान अनूपम
,,	गोविंदस्वामी	विजय दसमी और विजय महूरत
,,	चतुर्भुजदास	जवारे पहिरत श्री गोवर्धननाथ
रास—	सूरदास	हा हा हो हरी नृत्य करो
,,	कुंभनदास	यह गति नाँचत नाँच नई
,,	परमानंददास	बन्यौ रास मंडल में माधौ
,,	कृष्णदास	मन लाग्यौ गिरिधर गावै
,,	गोविंदस्वामी	मदनमोहन कमलनयन
,,	छीतस्वामी	लाल संग रास रंग लेत मान
,,	चतुर्भुजदास	प्यारी भुज ग्रीवा मेलि
धन तेरस—	कुंभनदास	आज माई धन धोवत नदरानी
,,	परमानददास	दूध सों स्नान करो मनमोहन
रूप चतुर्दशी—	कृष्णदास	आज न्हाओ मेरे कुँवर कन्हैया
दीपावली—	परमानंददास	आज दिवारी मंगलचार
गाय खिलायबौ—	सूरदास	आज दीपत दिव्य दीपमालिका
,,	कुंभनदास	गाय खिलावत स्याम सुजान
,,	परमानंददास	किलक हँसै गिरिधर ब्रजराय
,,	कृष्णदास	ग्वार बड़ौ करि डार री सारंग
,,	छीतस्वामी	खिरक खिलावत गायन ठाड़े
,,	चतुर्भुजदास	गाय खिलायौ चाहत
,,	नंददास	बड़े खिरक में घूमरि खेलत
हटरी—	सूरदास	सुरभी कान जगाय खरिक बल मोहन बैठे राजत हटरी
,,	परमानंददास	गिरिधर हटरी भली बनाई
,,	गोविंदस्वामी	हटरी बैठे श्री गोपाल
,,	नंददास	दीपदान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
अन्नकूट—	सूरदास	अपने-अपने टोल कहत ब्रजवासियाँ
,,	कुंभनदास	गोवर्धन पूजन चले री गोपाल
,,	परमानंददास	छैल छबीले लाल कहत नंदराय सों
,,	गोविंदस्वामी	गोवर्धन पूजा कों आये सकल ग्वाल लै संग
,,	चतुर्भुजदास	गोधन पूज सबै रँगभीने
इंद्र मान-भंग—	सूरदास	राख लेहु गोकुल के नायक
,,	कुंभनदास	आज कछु बदरन अंबर छायो
,,	परमानंददास	आवो आवो रे भैया
,,	कृष्णदास	बलिहारी गोपाल की
,,	गोविंदस्वामी	ब्रजजन लोचन हीं को तारो
,,	छीतस्वामी	सब गोकुल को जीवन गोपाल लाल प्यारो
,,	चतुर्भुजदास	वारी मेरे कान्ह प्यारे
,,	नंददास	कान्ह कुँवर के कर पल्लव पर
गोचारण—	सूरदास	आज अति आनंद ब्रजराय
,,	परमानंदस्वामी	खेलन हीं चले ब्रजराई
,,	गोविंदस्वामी	प्रथम गोचारन चले गुपाल
,,	चतुर्भुजदास	टेरत ऊँची टेर गोपाल
,,	नंददास	कैसे कैसे गाय चराइ गिरिधर
देव प्रबोधिनी—	परमानंददास	लाल को सिंगार करावत मैया
,,	कृष्णदास	प्रबोधिनी व्रत कीजे नीको
,,	गोविंदस्वामी	देव जगावत यसोदा मैया
,,	चतुर्भुजदास	बैठे कुंज मंडप में आय
ब्याह—	सूरदास	मेंहदी श्यामसुंदर कें रचि-रचि हाथन पाँय लगावै
,,	परमानंददास	मैया मोहि ऐसी दुलहनि भावै
,,	कृष्णदास	कंकन कुँवर कन्हैया के कर देखि री
,,	नंददास	एक दिन राधे कुँवरि नंद-गृह खेलन आई
मान—	सूरदास	ललन की बातन पर बल जैये
,,	परमानंददास	कुंज भवन में मंगलचार
,,	नंददास	लाड़िली न मानें लाल

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
भोगी (मकरसंक्रांति)-	परमानंददास	भोगी भोग करत सब रस कों
,,	कृष्णदास	बन ठन भोगी रस बिलसन कों भोर
,,	नंददास	भोर भये भोगी रस विलस भयो ठाड़ों
अभ्यंग स्नान —	सूरदास	कहत नंदरानी गोपाल सों तात कों बुलाय लावो बड़ो परब उत्तरायन
,,	कुंभनदास	मात जसोदा परब मनावै
फूलमंडली –	कुंभनदास	बैठे लाल फूलन के चौवारे
,,	परमानंददास	मुकुट की छाँह मनोहर किये
,,	कृष्णदास	देख सखी फूलन अठखंभा
,,	गोविंदस्वामी	फूलन की मंडली मनोहर
,,	छीतस्वामी	फूलन के भवन गिरिधरन
,,	चतुर्भुजदास	फूलन की मंडली मनोहर बैठे
,,	नंददास	फूलन कौ मुकुट बन्यौ फूलन कौ पिछौरा
गनगौर —	परमानंददास	क्यों बैठी राधे सुकुमारी
,,	कृष्णदास	ठाड़े कुंज द्वार पिय-प्यारी
,,	नंददास	छबीली राधे ! तू पूजि लै री गनगौर
रामनवमी —	सूरदास	रघुकुल में प्रगटे रघुवीर
,,	परमानंददास	नौमी के दिन नौबत बाजै
,,	गोविंदस्वामी	मेरौ रामलला कौ सोहिलो
महाप्रभु की बधाई —	कुंभनदास	बरनों श्री बल्लभ अवतार
,,	परमानंददास	श्री वल्लभलाल आँगन निधि खेलन
,,	कृष्णदास	आनँद भयौ लछमण नंदकुमार
,,	गोविंदस्वामी	बधाई सब मिलि गावो आज
,,	छीतस्वामी	श्रीबल्लभ जू के देखें जीजै
,,	नंददास	लछमण-घर बाजत आज बधाई
शृंगार —	सूरदास	पीत पिछौरी कहाँ तें मानों पाद अति झीनी
,,	कृष्णदास	सगुन मनाय रही ब्रजबाला
,,	छीतस्वामी	ये ही सुभाव सदा ब्रज बसिवो

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
ब्यारू—	नंददास	चंदन भवन मधि करत बयारू परोस भरी है कंचन थारी
चंदन—	कुंभनदास	चंदन पहिरत गिरिधरनलाल
,,	गोविंदस्वामी	चंदन पहिर आय हरि बैठे कालिंदी के कूल
,,	चतुर्भुजदास	आज बने नँदनंदन री नव चंदन कौ
नरसिंह चतुर्दशी—	सूरदास	तौलौं हौं बैकुंठ न जैहों
,,	परमानंददास	गोविंद तिहारौ स्वरूप निगम नेति-नेति गावै
नौका—	परमानंददास	बैठे घनस्याम सुंदर खेवत हैं नाव
,,	नंददास	चंदन पहिर नाव हरि बैठे
गंगा दशमी—	छीतस्वामी	जय जय श्री सूरजा कलिंद-नंदिनी
,,	नंददास	जय जय श्री यमुना आनंद-कंदिनी
स्नानयात्रा—	सूरदास	यमुना-जल गिरिधर करत विहार
,,	परमानंददास	पूरनमासी पूरन तिथि श्री गिरिधर करत स्नान मन भायौ
,,	गोविंदस्वामी	ज्येष्ठ मास सुदि पून्यौं सुभ दिन करत स्नान गोवर्धनधारी
रथयात्रा—	सूरदास	तुम देखो सखी री आज नयन भर हरि जू के रथ की सोभा
,,	कुंभनदास	रथ बैठे मदनगोपाल
,,	परमानंददास	तुम देखो सखी रथ बैठे गिरिधारी
,,	कृष्णदास	तुम देखो सखी रथ बैठे ब्रजनाथ
,,	गोविंदस्वामी	तुम देखो माई हरि जू के रथ की सोभा
,,	नंददास	देखो माई नंदनंदन रथहिं बिराजें
मल्हार—	सूरदास	बोले माई गोवर्धन पर मुरवा
,,	कुंभनदास	सखी री बूँद अचानक लागीं
,,	परमानंददास	उठत प्रात रसना रस लीजै
,,	कृष्णदास	करत कलेऊ किलकत दोउ भैया
,,	गोविंदस्वामी	स्यामहिं देख नाँचत मुदित मनमोहन
,,	छीतस्वामी	बादर झूमि-झूमि बरसन लागे
,,	चतुर्भुजदास	करत कलेऊ किलकत मोहन
,,	नंददास	घुमड़ रहे बादर सगरी निसा के अहो महरि लालें दीजै जगाय

वर्षोत्सव	रचयिता	पदों के प्रथम चरण
कसूमी छठ—	कुंभनदास	पहरें सुभग अंग कसूमी सारी
,,	परमानंददास	मोहन सिर धरें कसूमी पाग
,,	कृष्णदास	बरषत मेघ मोर-पिक बोलत
,,	चतुर्भुजदास	ठौंय-ठौंय नाँचत मोर सुन-सुन
,,	नंददास	निकसि ठाड़ी भई री चढ़ नवल
घटा (गुलाबी)—	सूरदास	रही झुकि लाल गुलाबी पाग
,, (हरी)—	,,	आज अति राजत हैं री हरे
,, (श्याम)—	,,	श्याम घन कारे-कारे बादर
,, (पीली)—	कुंभनदास	झूलें माई जुगलकिसोर हिंडोरें
,, (श्याम)—	परमानंददास	बन श्याम बिहार करें
,, ,,	कृष्णदास	देखि सखी नीलांबर को छोर
,, ,,	चतुर्भुजदास	देखो माई बसन ए रही चटक
,, (गुलाबी)—	नंददास	गुलाबी कुंजन छवि छाई
चूनरी लहरिया—	परमानंददास	देखो माई भींजत रस भरे दोऊ
,,	गोविंदस्वामी	लाल मेरी सुरंग चूनरी देउ
,,	चतुर्भुजदास	श्याम सुन तेरे आए मेह
,,	नंददास	लाल सिर पाग लहेरिया सोहै
हिंडोरा—	सूरदास	राधे जू देखिये बन सोभा
,,	कुंभनदास	हरि संग झूलत हैं ब्रजनारी
,,	परमानंददास	यह सुख सावन में बनि आवै
,,	कृष्णदास	रोप्यौ हिंडोरौ नंद-गृह
,,	गोविंदस्वामी	दंपति झूलत सुरंग हिंडोरे
,,	चतुर्भुजदास	पावस ऋतु नीकी लागत
,,	नंददास	हिंडोरे माई झूलत गिरिधरलाल
पवित्रा—	परमानंददास	पहरि पवित्रा बैठे हिंडोरे
,,	कृष्णदास	पवित्रा पहिरें नंदकुमार
कुलहे—	कुंभनदास	सुरंग कुलहे रंग अरुन पिछौरा
,,	कृष्णदास	अब ही हौं आई लाल राधे कों मनाय

वर्षोत्सव के उपर्युक्त पदों की सूची से ज्ञात होगा कि उसके कई मुख्य विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध हैं। किसी-किसी विषय पर तो उनका एक भी पद प्राप्त नहीं है। अब नित्य सेवा के पदों को देखना चाहिए। नित्य सेवा के निम्न लिखित प्रमुख विषयों पर अष्टसखाओं के अनेक पद मिलते हैं—

१. श्री यमुना आदि की स्तुति, २. जागरण, ३. कलेवा, ४. मंगला-आरती, ५. विविध शृंगार, ६. छिलग, ७. पनघट, ८. खंडिता, ९. बाल-लीला आदि, १०. राजभोग, गृह-भोजन, छाक, ब्रज-भक्तों के यहाँ का कुनवारा, छप्पनभोग, बीरी आदि, ११. राजभोग दर्शन, १२. राजभोग-आरती, १३. मान १४. उत्थापन, १५. गोवर्धन, १६. भोग का मान, १७. संध्या-आरती, १८. शृंगार बड़ा होना, १९. धैयाँ, २०. शयन-भोग, २१. शयन की बीरी, २२ शयन के दर्शन, २३. शयन-आरती, २४. पौढ़ना, २५. कहानी, २६. मान, २७. दीनता, आश्रय, विनयादि।

नित्य सेवा के उपर्युक्त विषयों पर सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा रचे हुए पदों की सूची हम स्थानाभाव के कारण यहाँ पर नहीं दे रहे हैं, किंतु वर्षोत्सव की तरह नित्य सेवा के उपलब्ध पदों में भी कई प्रमुख विषयों पर सूरदास के दो-एक पद ही उपलब्ध होते हैं, अथवा किसी-किसी विषय का एक भी पद उपलब्ध नहीं होता है। इससे सिद्ध है कि सूरदास के असंख्य पद अभी छिपे पड़े हैं, जिनको खोज निकालने की अत्यंत आवश्यकता है। अतीत की विषम परिस्थितियों ने अन्य प्राचीन कवियों की तरह सूरदास के भी अगणित पदों को अवश्य नष्ट किया होगा, किंतु परिश्रम पूर्वक अनुसंधान करने पर अब भी सूरदास के असंख्य पद प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार सिद्ध है कि जनश्रुति और वार्ता के अनुसार सूरदास के रचे हुए चाहे लाख-सवालाख पद इस समय प्राप्त न हो सकें, तब भी पूर्ण अनुसंधान होने पर उनके प्राप्त पदों की संख्या अब से कई गुना अधिक हो सकती है।

चतुर्थ परिच्छेद

सिद्धांत-निर्णय

१—सूरदास और शुद्धाद्वैत सिद्धांत

"इतिहास और अंतःसाक्ष्यों से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी एवं पुष्टिमार्गीय भक्त होना निश्चित है, तथापि सूरसागर के कतिपय पदों के कारण कुछ विद्वान प्रतिबिंबवाद और वृंदावनी संप्रदायों की भक्ति-भावना से भी सूरदास को प्रभावित मानते हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि—भक्ति के वास्तविक परिचय से उक्त मान्यता नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होती है। हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सूरदास की उपलब्ध प्रत्येक रचना शुद्धाद्वैत सिद्धांत और विशुद्ध पुष्टि—भक्ति से ही संपूर्णतः प्रभावित और संबद्ध है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने वेद और भगवान् बादरायण व्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रों से शुद्धाद्वैत सिद्धांत का दोहन किया है, इसलिए उन्होंने इस सिद्धांत के गुरु व्यासदेव को ही माना है†।

सूरदास के पदों में परब्रह्म, अक्षरब्रह्म, जगत्, जीव और माया आदि तत्वों का जो वर्णन किया गया है, वह शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार है। इन पदों के अध्ययन से सूरदास का शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुयायी होना निश्चित होता है। हम यहाँ पर उक्त तत्वों का विवेचन और तत्संबंधी सूरदास के पदों को उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने शुद्धाद्वैत सिद्धांत, पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना और सेवा-प्रणाली का किस प्रकार सफलता पूर्वक वर्णन किया है।

१. परब्रह्म

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—वेद की श्रुतियाँ "नायमात्मा प्रवचेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" आदि कह कर जिस आत्मा-तत्त्व को निर्गुण बतलाती हैं, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कहा गया है।

---

† "व्यासोऽस्माकं गुरुः।" —श्रीवल्लभाचार्यजी

यही ब्रह्म प्रकृतिजन्य धर्मों के अभाव में जिस प्रकार निर्गुण कहलाता है, उसी प्रकार यह आनंदात्मक दिव्य धर्मों वाला होने से सगुण भी है* । इसी लिए वेद की श्रुतियाँ इसे "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि" रूप में साकार सगुण भी कहती हैं† ।

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण—परब्रह्म के तीन मुख्य धर्म हैं—सत्, चित् और आनंद; अतः यह "सच्चिदानंद" अथवा "सदानंद" भी कहलाता है । सदानंद का ही पर्यायवाची शब्द 'कृष्ण' है, अतः इसको कृष्ण भी कहा गया है‡ । इस प्रकार वेदांत में जिसको ब्रह्म, हरि, यज्ञ; स्मृति में जिसको परमात्मा और भागवत में जिसको भगवान् कहा गया है, उसी को शुद्धाद्वैत सिद्धांत में परब्रह्म कृष्ण कहते हैं। । ये परब्रह्म अपनी आत्म-माया से सदा आवृत रहते हैं*, इसलिए ही उनको 'श्रीकृष्ण' कहते हैं ।

परब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व— शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण सब धर्मों के आश्रय रूप हैं, इसी लिए वे "धर्मी" कहलाते हैं । इनमें विरुद्ध धर्म भी एक साथ रहते हैं; यही इनकी विशेषता और विचित्रता है । इनके धर्म भेद सहिष्णु अभेद रूप वाले अर्थात् तादात्म्य भाव वाले होते हैं, जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रकाश की स्थिति रहती है । इनका विरुद्धधर्माश्रय इस प्रकार का है —

ये निर्धर्मक—प्राकृत धर्मों से रहित—होते हुए भी सधर्मक दिव्य आनंदात्मक धर्मों से युक्त हैं । इसी प्रकार निर्विशेष और निर्गुण होते हुए भी सविशेष और सगुण हैं । अणु से अणु हैं और महान् से महान् भी हैं । अनंत मूर्ति हैं, तथापि एक ही व्यापक हैं । कूटस्थ हैं, तथापि चल हैं ।

---

* निर्दोष पूर्णगुणविग्रह आत्मतंत्रो । निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः ।
आनंदमात्रकरपादमुखोदरादिः । सर्वत्र च त्रिविध भेद विवर्जितात्मा ॥
(निबंध)

† तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञान मयात् । अन्योन्तर आत्मानंदमयः । तेनैष पूर्णः ।
सवा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुष विधताम् ।

‡ कृषिर्भूवाचकःशब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परंब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

। परंब्रह्म तु कृष्णो हि ...... । (सि० मु०)

* "माययावृतः" । (पु० स० नाम)

अकर्तृ हैं, तथापि कर्तृ हैं। अविभक्त हैं, तथापि विभक्त हैं। अगम्य हैं, तथापि गम्य हैं। अदृश्य हैं, तथापि दृश्य हैं। ये नानाविध सृष्टिकर्त्ता हैं फिर भी विषम नहीं हैं। क्रूर कर्म कर्त्ता हैं, फिर भी निर्घृण नहीं हैं—गाढ़ घनीभूत सैंधववत बाह्याभ्यंतर सदा सर्वदा एक रस हैं।

इसी प्रकार पूर्णावतार दशा में—कृष्णावतार के समय में—वे बालक होने पर भी रसिक मूर्द्धन्य हैं। स्ववश हैं, तथापि अन्य (भक्त) वश हैं। अभीत हैं, तथापि (भक्त के निकट) भीत हैं। भक्त सापेक्ष हैं, फिर भी निरपेक्ष हैं। चतुर हैं, फिर भी (भक्त के पास) मुग्ध हैं। सर्वज्ञ हैं, तथापि (भक्त के पास) अज्ञ हैं। आत्माराम हैं, फिर भी रमण कर्त्ता हैं। पूर्ण-काम हैं, फिर भी भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये कामार्त्त हैं। अदीन हैं, तथापि भक्त के सन्मुख दीन भाषण करते हैं। स्वयंप्रकाश हैं, फिर भी (भक्त से अन्यत्र) अप्रकाश हैं। बहिःस्थ हैं तथापि अंतःस्थिति करते हैं। स्वतंत्र हैं, तथापि (भक्त के पास) अस्वतंत्र हैं, पराधीन हैं, परवश हैं, रसिक-वश हैं। अवतार दशा में वे प्रापंचिक धर्म को अंगीकार करते हैं, तथापि अच्युत हैं, च्युतिरहित हैं।

इस प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्मों के आश्रय रूप होने से* कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् सर्व भवन-समर्थ हैं। वे अपने इस रूप का भक्तों को अनुभव कराकर निःसीम माहात्म्य को जगत में प्रकट करते हैं। यही उनकी विचित्रता है। ज्यादा क्या कहें; वे अविकृत होते हुए भी कृपा द्वारा परिणाम रूप होते हैं†।

संपूर्ण वेदों का अक्षरशः प्रामाण्य मानने पर परब्रह्म का यही स्वरूप निर्धारित होता है, और तभी वेद की निर्गुण-सगुण स्वरूप प्रतिपादक श्रुतियों का मतैक्य भी हो सकता है; पौराणिक अवतार भावनाएँ भी तभी संगत हो सकती हैं। इस प्रकार समग्र वेद और शास्त्रों के मतों को एक-वाक्य करने का संपूर्ण श्रेय श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को ही प्राप्त हुआ है। इसीलिये उनके मत में आध्यात्मिक विचारों की परिपूर्णता और सुस्पष्टता दिखायी देती है। यही कारण है कि सूरदासादि महान् आत्माएँ भी इस सिद्धांत की अनुयायी हुईं।

सूरदास के पदों में परब्रह्म विषयक वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—

---

* विरुद्ध सर्व धर्माणामाश्रयो युक्त्यगोचरः। (निबंध)

† "शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रदीप"

परब्रह्म का निर्गुण-सगुणत्व—

१. करनी करुनासिंधु की कछु कहत न आवै।
कपट हेतु परसे बकी जननी गति पावै॥
वेद उपनिषद जस कहै, "निर्गुण" हि बतावै।
सोई "सगुण" होय नंद कें दाँवरी बँधावै॥

२. अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मनवानी कों अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै॥
रूप, रेख, गुण, जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत धावै।
'सब विधि अगम' बिचारहिं तातें 'सूर' 'सगुण' लीला पद गावै॥

३. अविगत, आदि, अनत, अनूपम 'अलख' पुरुष अविनासी।
'पूरनब्रह्म', 'प्रगट पुरुषोत्तम' 'नित' निज लोक बिलासी॥

४. आदि सनातन 'हरि' अविनासी।
'निर्गुण-सगुण' धरै तन दोई ...... ॥

परब्रह्म अर्थात् कृष्ण-हरि—

कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहि पावै।
'कृष्णहि तें यह जगत प्रगट है 'हरि' में लय ह्वै जावै॥
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही हरिलीला जग देखै।
तौ तिहिं सुख-दुख निकट न आवैं, 'ब्रह्म' रूप करि लेखै॥

परब्रह्म का विरुद्ध धर्माश्रयत्व—

१. बलि-बलि चरित गोकुलराय।
दावानल कौ पान कीनों पिवत दूध सिराय॥
पूतना के प्रान सोषे रहे उर लपटाय।
कहति जननि दूध डारत खीझि कछु अनखाय॥
तृणावर्त्त अकास तें गहि सिला पटक्यौ आय।
डरत लालन झुलत पलना खरे देत झुलाय॥
यमल-अर्जुन तोरि, तारे हृदय प्रेम बढ़ाय।
झटक तात पलास पल्लव देहु देत दिखाय॥

कीर पिंजरा देत अंगुरी लेत स्याम भजाय ।
बकासुर की चोंच फारी हरि अचरज लाय ॥
बिना दीपक सदन में हरि नैंकु धरत न पाय ।
अघासुर मुख पैठि निकसे बाल बच्छ जिवाय ॥
हरे बालक बच्छ नव कृत हेत दौरी माय ।
छूटि पसु जब रहत बन में दुमन ढूँढत जाय ॥
लिख्यौ द्वारे नाग कारौ देखि स्याम डराय ।
नृत्य काली-फननि ऊपर सप्त ताल बजाय ॥
धरे गिरिधर दोहनी कर धरत बाँह पिराय ।
सकट भंजन प्रसूत कछु जुग कठिन लागत पाय ॥
गोप-नारिन संग मोहन रच्यौ रास बनाय ।
कहति जननी ब्याह कौ, तब लजत बदन दुराय ॥
वृषभ भंजन, हतत केसी हन्यौ पुच्छ फिराय ।
भजत सखन सनेह मोहन देखि ब्याई गाय ॥
सेष महिमा कहि न आवै सहस रसना पाय ।
एक रसना "सूर" कहा कहे अंग अगनित भाय ॥

८. कौन सुकृत इन ब्रजबासिन कौ बदत बिरंचि-सिव-सेष ।
श्रीहरि जिनके हेत प्रगटे मानुष बेष ॥
ज्योति-स्वरूप, जगन्नाथ, जगतगुरू, जगतपिता, जगदीस ।
जोग्य जग्य, जप, तप, ब्रत तीरथ सो गृह गोकुल-ईस ॥
जाके जठर लोक-त्रय जल-थल पंचत व चोखाँन ।
सो बालक झूलत ब्रज-पलना जसुमति-भवन निधान ॥
एक एक रोम बैराट कूप सम अखिल लोक ब्रह्मंड ।
ताहि उछँग लिए मात जसोदा अपने निज भुज दंड ॥
रवि-ससि कोटि कला बिब लोचन त्रिविध तिमिर भजि जात ।
अंजन देति हेत सुत के, चखु लै कर काजर मात ॥
छितिरति त्रिपद करि करुनामय बलि छलि दियौ पातार ।
देहरि उलँघ सकत नहीं सो प्रभु खेलत नंद जू के द्वार ॥
अनुदिन श्रवत सुधारस पंचम चिंतामनि सी धेनु ।
सो तजि जसुमति कौ पय पीवत भक्तन कौं सुख देनु ॥

वेद वेदांत-उपनिषद पट रस अरपै, भुगतै नाँय।
सो हरि ग्वाल-बाल मंडल में हँसि-हँसि जूठन खाँय॥
बैकुंठ-दायक, कमला-नायक, सुख-दुख जाके हाथ।
काँधे कमरिया-लकुट, नगन पग, वत्स चरावन जात॥
करन हरन प्रभु दाता मुक्ता, विश्वंभर जा जानि।
ताहि लगाय माखन की चोरी बाँधे नँदजू की रानि॥
बकी बकासुर सकट तृणावर्त्त अघ धेनुक वृषभास।
केसी कंस कों यह गति दीनीं राखे चरनन पास॥
भक्त वत्सल प्रभु पतित-उद्धारन रहे सकल भरपूर।
मारग रोकि- पर्यौ हठि द्वारें पतित-सिरोमनि "सूर"॥

कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्—

करुनानिधि तेरी गति लखि न परै।
धर्म अधर्म, निषेध अविधिहि, करन-अकरनहिं करै॥
जय अरु विजय अकर्म कियौ कह ब्रह्म-साप दिवायौ।
असुर योनि दीनीं ता ऊपर धर्म-उच्छेद करायौ॥
मुक्ति हेतु योगी स्रम करहीं असुर विरोधी पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी "सूर" कहा कहि गावै॥

परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार पूर्वोक्त परब्रह्म एक, अखंडित, आदि, अनादि, अद्वैत तत्त्व रूप है। वह अद्वैत भी पूर्ण शुद्ध रूप वाला है। अर्थात् वह सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित है†, इसलिए वह एक रस है।

सूरदास ने परब्रह्म की शुद्ध अद्वैतता का वर्णन निम्न पदों में इस प्रकार किया है—

१. पहले हौं ही हौं एक।
'अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित' सुनि विधि विमल विवेक॥

२. राधिका-गेह हरि देह बासी। और त्रियन घर तनु प्रकासी॥
'ब्रह्म पूरन एक, द्वितीय न कोऊ'। राधिका सबै हरि सबै एऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे हि ब्रह्म घर-घर विहारी॥

† सजातीयविजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्। (निबंध)

३. ब्रज ही में धर्म आपुन ही बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष 'एक' करि जानहु बातन भेद करायौ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम' दोऊ सुख कारन उपजायौ॥

४. सदा 'एक रस' एक अखंडित, आदि अनादि अनूप॥

पुरुषोत्तम—शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार निर्गुण परब्रह्म अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपनी आत्मा में निरंतर आंतर रमण करता है, इसलिये वह 'आत्माराम' कहलाता है। उसको जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है, तब स्वांतः स्थित दिव्य आनंद धर्मों वाले अपने "आधिदैविक" रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रमण करता है। यही आनंद धर्मों वाला उसका बाह्य प्रकट रूप 'पुरुषोत्तम' कहलाता है। यह परब्रह्म का ही आधिदैविक साक्षात रूप है, अतः आचार्य श्री ने श्रुतियों में प्रतिपादित तत्व-परब्रह्म को ही पुरुषेश्वर-पुरुषोत्तम कहा है*। यह सत्यादि सहस्रों नित्य गुणों से युक्त है†, इसलिए यह परब्रह्म का ही सगुण लीला रूप है। इसमें अपरिमित आनंद है, इसीलिए यह "आनंदमय" अथवा "अगणितानंद" कहा गया है। यह काल-पुरुष अक्षरादि से भी पर-उत्तम है, अतः यह पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है‡।

इसी सूरदास ने पुरुषोत्तम का इस प्रकार वर्णन किया है—

१. अबिगत आदि अनंत अनूपम अलख पुरुष अबिनासी।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी॥

२. सोभा अमित अपार अखंडित आप आत्माराम।
पूरनब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम सब बिधि पूरन काम॥

पुरुषोत्तम की लीला—शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार परब्रह्म पुरुषोत्तम में अनंत शक्तियों की निरंतर स्थिति रहती है। ये सब शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा आधीन रहने वाली हैं। जब पुरुषोत्तम बाह्य रूपलीला करते हैं,

---

* यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः। (निबंध)

† सत्यादिगुण साहस्रैर्युक्तमौत्पत्तिकैः सदा। (निबंध)

‡ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। (गीता)

तब उनकी शक्तियाँ भी बहिःस्थिति करती हैं, और विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन अनंत शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा, और कान्त्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं। ये ही श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा और यमुना आदि आधिदैविक रूप और नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थिति करती हैं। इन द्वादश शक्तियों में से पुनः अनंत भाव प्रकट होते हैं, जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उनके साथ रहते हैं।

इन शक्तियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने में से श्रीवृंदावन, गोवर्धन, यमुना, श्रीगोकुल, पशु, पक्षी और वृक्षादिक को भी प्रकट करते हैं। ये सब पुरुषोत्तम के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनंदमय चैतन्य रूप हैं; फिर भी कृष्ण ललित लीला के लिए इन सब ने जड़ता धारण कर रखी है।

पुरुषोत्तम नित्य होने से इनके धर्म रूप में लीलाएँ भी नित्य हैं। इसीलिये ऋग्वेद, तैत्तरीय उपनिषद् तथा श्रीमद्भागवतादि में वर्त्तमान काल की क्रियाओं से इनका वर्णन हुआ है‡।

अपनी इस आनंदमयी नित्यलीला का ज्ञान अन्य को भी हो, इस प्रकार की जब पुरुषोत्तम को इच्छा हुई तब सर्वप्रथम वेद की श्रुतियों की प्रार्थना से उनको इनका दर्शन हुआ। पुनः श्रुतियों की प्रार्थना से सारस्वत कल्प में व्रज में अवतरित होकर उनको भी इस लीला का साक्षात् आनंद देने का पुरुषोत्तम ने वरदान दिया। कृपायुक्त होकर दिये हुए इस वरदान को पूर्ण करने के लिए ही पुरुषोत्तम व्रज में श्रीकृष्ण के रूप में साक्षात् आविर्भूत हुए और श्रुतियाँ व्रज-गोपियों रूप में प्रकट हुईं। पुरुषोत्तम के आविर्भाव से उनका समग्र लीलापरिकर और लीला के स्थान भी व्रज की गोपियों और गोवर्धन आदि स्थानों में अपने आधिदैविक रूप से प्रविष्ट हुए*। तभी इस भूतल की सामग्री पूर्ण पुरुषोत्तम के भोग-योग्य हुई। साक्षात् गोलोक ने श्रीमद्गोकुल में प्रवेश किया। गोवर्धन ने इस गोवर्धन

---

‡ १. ता वां वास्तून्युश्मसि ·· ···ऋग्वेद।
 २. ते ते धामान्युश्मसि ······ तैत्तरीय।
 ३. बहूनि सन्ति नामानि ······भागवत इत्यादि।

* इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए गो० श्री विट्ठलनाथजी रचित "विद्वन्मंडन' ग्रंथ देखना चाहिए।

पर्वत में प्रवेश किया और वृंदावन ने इस वृंदावन में। इस प्रकार समग्र ब्रज तद्रूप हो गया। श्रीकृष्ण-पुरुषोत्तम—और उनके धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और उनकी यह अवतार लीला को नित्यता प्राप्त हुई। इसीलिए श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन वर्तमान काल का क्रियाओं से हुआ है और बृहद् वामन पुराण में भी कहा गया है कि "स्त्रियाँ अथवा पुरुषगण भक्ति-भाव से केशव को हृदय में धारण कर श्रुति की गति को प्राप्त होते हैं।" इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक भक्त भी श्रुतिरूप गोपिकाओं के किये हुए भजन के अनुसार यदि श्रीकृष्ण का भजन करे तो वह श्रुतिरूप गोपिकाओं की गति को प्राप्त होता है। इससे भी इन गोपिकाओं की स्थिति का नित्यता सिद्ध होती है। इस प्रकार पुरुषोत्तम की मूल लीला और अवतार लीला का नित्य संबंध सिद्ध होता है।

सूरदास ने इन लीलाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

नित्य लीला का वर्णन—

जहाँ वृंदावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय-प्रियतम दोऊ निगम भृंग गुंजार॥
रतन जटित कालिंदी के तट अति पुनीत जहाँ नीर।
सारस-हंस-चकोर मोर-खग कूजत कोकिल कीर॥
जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत 'निसदिन करत बिहार॥'

× × ×

धीर समीर बहुत त्यहीं कानन बोलत मधुकर मोर।
प्रीतम-प्रिया वदन अवलोकत उठि-उठि मिलत चकोर॥
अमित एक उपमा अविलोकत जिय में परत बिचार।
नहिं प्रवेस अज-सिव-गनेस पुनि कितक बात संसार॥
'सहस रूप बहु रूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।'
कुमुद कली विगसित अंबुज मिलि मधुकर भागी सोय॥
नलिन पराग मेघ माधुरी, सो मुकुलित अंब कदंब।
मुनिमन मधुप सदारस लोभित सेवत अज-सिव-अंब॥

× × ×

सुख पर्यंक अंक ध्रुव देखियत कुसुम कंद द्रुम छाये ।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दंपति लगत सोहाये ॥
गोवर्धन गिरि रतन सिंहासन दंपति रस सुख मान ।
निबिड कुंज जहाँ कोउ न आवत रस बिलसत सुखखान ॥
निसा भोर कबहू नहिं जानत प्रेममत्त अनुराग ।
ललितादिक सींचत सुख नैनन जुरि सहचरि बड भाग ॥
यह निकुंज कौ बरनन करिकैं वेद रहे पचिहार ।
नेति-नेति कर कहऊ सहस विधि तऊ न पायौ पार ॥
दरसन दियौ कृपा करि मोहन बेग दियौ बरदान ।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्री मुख कही बखान ॥

नित्य-लीला का भूतल पर प्रागट्य वर्णन—

गोपी-पद-रज-महिमा विधि भृगु सों कही । × ×
ब्रज सुंदरी नहीं नारि, रिचा श्रुति की आहीं ।
मैं अरु सिव पुनि शेष, लक्ष्मी तिहि सम नाहीं ॥
अद्भुत है तिनकी कृपा, कहो सु मैं अवगाही ।
याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि पदहिं समाहीं ॥
प्रकृति पुरुष लै भई, जगत सब प्रकृति समाया ।
रह्यौ एक बैकुंठ लोक, जहाँ त्रिभुवन राया ॥
अक्षर, अच्युत, निराकार अविगति है जोई ।
आदि अंत नहीं जाहि, आदि अंतहिं प्रभु सोई ॥
श्रुति विनय करि कह्यौ, सब तुमहिं देवा ।
हरि निरंतर तुमहिं, जानत निज भेवा ॥
या विधि बहुरि अस्तुति करी, भई गिरा अकास ।
माँगो बर मन-भावतौ पूरौं सो तुव आस ॥
श्रुतिन कह्यौ कर जोरि सच्चिदानंद देव तुम ।
जो नारायन आदि रूप तुमरौ सु लख्यौ हम ॥
निरगुन रहत जु निज स्वरूप लख्यौ न ताकौ एव ।
मन-बानी तें अगम अगोचर, दिखरावहु सो देव ॥
वृंदावन निज धाम कृपा करि तहाँ दिखरायौ ।
सब दिन तहाँ बसंत कल्पवृक्षन सों छायौ ॥
कुंज सुभग रमनीक तहाँ बेलि सुभग रहे छाय ।
गिरि गोवर्धन धातु मय झरना झरत सुभाय ॥

कालिंदी जल अमृत प्रफुलित कमल सुहायौ ।
नगन जटित दोऊ कूल हंस सारस तहाँ छायौ ॥
क्रीडत स्यामकिसोर तहाँ लिए गोपिका साथ ।
निरखि सुछबि सब थकि रहे तब बोले जदुनाथ ॥
जो मन इच्छा होइ कहो सो मोहि कृपा कर ।
पूरन करौं सुकाम दियौ मैं यह तुम को बर ॥
श्रुतिन कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करें तुव संग ।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ .... ॥
कल्प सारस्वत ब्रह्मा जब सृष्टिहि उपावै ।
अरु तिहिं लोकनि वर्ण-आश्रम धर्म चलावै ॥
बहुरि अधर्मी होय नृप, जग अधर्म बढ़ि जाय ।
तब बिधि पृथ्वी सुर सकल बिनय करत मोहि आय ॥
मथुरा मंडल भरतखंड निज धाम हमारौ ।
धारौं मैं तहाँ गोप भेष सो तिन्हें निहारौ ॥
तब तुम ह्वै कर गोपिका करो हो मोसों नेह ।
करों केलि तुमसों सदा सत्य बचन मम एह ॥
श्रुति सुनि कैं यह बचन, भागि अपुनौ बहु मान्यौ ।
चतत्रन लागे समय दिवस जो जात न जान्यौ ॥
भार भयौ जब भूमि पर तब हरि लियौ अवतार ।
वे रिचा ह्वै गोपिका हरि सों कियौ विहार ॥
'जो कोउ भरता भाव करि हरि-पद धावै ।'
नारि पुरुष कोउ होय सोउ श्रुति-रिचा गति पावै ॥
'तिनकी पद-रज जो कोऊ वृंदावन भुव मांही' ।
'परसै सोऊ गोपिका-गति लहै संशय नांही ॥
भृगु तातें मैं चरन-रज गोपिन की चाहत ।
श्रुति-मत बार बार हृदय अपने अवगाहत ॥
बंदन विधि सों यों कह्यौ दयौ विधि ऋषिन बताय ।
व्यास कह्यौ वामन पुरान में सोई "सूर" कह्यौ गाय ॥

अवतार लीला और उसकी नित्यता का वर्णन—

सो श्रुति रूप होय ब्रज मंडल कीनो रास-विहार ।
नवल कुंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ॥

पुनि ऋषि रूप राम वर पायौ हरि से प्रीतम पाय।
चरन प्रसाद राधिका देवी उन हरि कंठ लगाय॥
वृंदावन गोवर्धन कुंजन यमुना पुलिन सुदेस।
'नित प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामास्याम सुवेस॥'

२. अक्षरब्रह्म

अक्षरब्रह्म परब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है, इसलिए यह परब्रह्म-पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं माना गया है। यह "सच्चिदानंद" रूप भी कहलाता है और इसे पुरुषोत्तम का "चरणस्थान' रूप भी माना गया है। यह ओंकार ज्योति रूप होने से परब्रह्म का धाम रूप भी है, इसीलिए यह परब्रह्म के समान आदि, सनातन, अनुपम और अविगत है; फिर भी इसमें आनंद की कुछ न्यूनता रखी गयी है, अतः यह "गणितानंद" कहलाता है। आनंद की कुछ न्यूनता के कारण ही इस ब्रह्म को अपेक्षा होती है, तब यह अपने में से जीव-जगत् आदि का निर्माण करता है।

प्रथम यह काल, कर्म, स्वभाव और अक्षर रूप होता है तथा प्रकृति, जीव और अनेक देवादि रूप होकर सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता रूप भी होता है*। प्रकृति, पुरुष, नारायण आदि सब इन्हीं के अंश रूप हैं। प्रकृति के राजस, तामस और सात्विक गुणों के अधिष्ठाता ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी इसी ब्रह्म के अंशात्मक विविध रूप हैं।

अक्षर ब्रह्म के ही सत् धर्म से जगत्, चित से जीव और आनंद से अंतर्यामी का आविर्भाव होता है।

सूरदास ने अक्षरब्रह्म विषयक वर्णन सारावली आदि में इस प्रकार किया है—

आदि, सनातन, एक अनूपम, अविगत अल्प अहार।
ॐकार आदि वेद असुरहन, निर्गुण, सगुण अपार॥१॥

---

*(१) उत्पत्तिस्थितिनाशानां जगतः कर्तृ वै बृहत्। (अणुभाष्य)
(२) व्यष्टि, समष्टिः पुरुषो जीव भेदास्त्रयो मताः।
अन्तर्याम्यक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदास्तथा परे॥
स्वभाव कर्मकालाश्च रुद्रोब्रह्माहरिस्तथा॥ (निबंध)
(३) अक्षरस्य स्वभाव कर्मकाला भेदा महादयः। (निबंध)

अंतर्यामी रूप—

(१) हरि स्वरूप सब घट पुनि जानो।
इख माँहि ज्यों रस है सानो॥
त्योंही तन रस आतम सार।
ऐसी विधि जानो संसार॥

(२) अपने आप करि प्रकट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"।
माया कियौ क्षोभ बहु विधि करि "काल पुरुष" के अंग।
राजस तामस सात्विक बहु विधि "प्रकृति-पुरुष" कौ संग॥

ब्रह्मा-रुद्र विष्णु विषयक वर्णन—

(१) हरि सौ ठाकुर और न जन को।
तिहुँ लोक भृगु ह्वै आयौ तब कह्यौ या विधि लोगन कों॥
ब्रह्मा "राजस" कौ अधिकारी, शिव "तामस" अधिकारी।
विष्णु "सत्व" केवल अधिकारी विप्र-लात उर धारी॥

(२) विष्णु रुद्र विधि एकहिं रूप। इन्हें जान मत 'भिन्न' स्वरूप॥

(३) यज्ञ प्रभु प्रगट दिखायौ।
विष्णु विधि रुद्र मम रूप ए तीनि हू,
दक्ष सों वचन यह कहि सुनायौ॥

(४) हरि-पद प्रीति करौ सुख पावैं।
उत्पत्ति, पालन, प्रलय, हेतु हरि तीन रूप धरि आवैं।
विष्णु रुद्र ब्रह्मा हरि सब प्रेरक अंतरजामी सोई॥

(५) प्रभु तुम मर्म समुझि नहीं पर्यौ।
जग सिरजत, पालत, संहारत पुनि क्यों बहुरि कर्यौ॥

३. जगत्

जगत् परब्रह्म का भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म ही अपने सत् धर्म से २८ तत्व रूप होकर इस जगत् स्वरूप हुए हैं†. इसलिए शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार यह समग्र जगत् ब्रह्मरूप है. अतः यह ब्रह्म के समान सत्य है। क्वचित् जहाँ कहीं पुराणों में जगत् को मिथ्या कहा गया है, वह केवल

† अष्टाविंशति तत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः। (निबंध)

वैराग्य सिद्धि अर्थ ही है—ऐसा आचार्यजी का मत है‡। इस सिद्धांत के अनुसार जगत और संसार दो भिन्न-भिन्न तथ्य हैं। जगत् २८ तत्त्व रूप है और संसार जीव की अविद्या से माना हुआ "मैं" और "मेरेपने" की कल्पना मात्र है, अतः आचार्यजी ने संसार को मिथ्या कहा है। ज्ञान द्वारा जीव की मुक्ति होने पर संसार की निवृत्ति होती है, किंतु जगत ज्यों का त्यों स्थित रहता ही है*। यही इस भेद को समझने के लिए प्रबल युक्ति है। इस बात को श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के अतिरिक्त किसी और ने भी नहीं समझा था। प्रलय के समय जगत् का तिरोभाव होता है, नाश नहीं। जिस प्रकार घट के भीतर का आकाश घट के टूट जाने से बृहत् आकाश में समा जाता है, उसी प्रकार जगत् प्रलय के समय में अपने मूल तत्त्व रूप से ब्रह्म में समा जाता है। इस प्रकार वस्तुतः जगत् का नाश न होने के कारण भी उसकी ब्रह्म रूपता सिद्ध होती है।

सूरदास के पदों में भी जगत् विषयक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है —

२८ तत्त्व की उत्पत्ति—

(१) खेलत खेलत चित्त में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपुन आपु करि प्रगट कियौ है हरि "पुरुष अवतार"॥
कीने तत्त्व प्रगट तेहि छन सबै "अष्ट अरु बीस"।

(२) "आदि निरंजन निराकार" कोउ हतौ न दूसर।
रचौं सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
निर्गुण तत्त्व तें महतत्त्व महतत्त्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची तातें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंचभूत सुंदर प्रगटाये।
पुनि सब कों रचि अंड आप में आप समाये॥
तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार॥

(३) कृष्ण-भक्ति करि कृष्णहिं पावै।
"कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है हरि में लय ह्वै जावै"॥

‡ मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते। (निबंध)

* संसारस्यलयो मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित्। (निबंध)

जगत का सत्यत्व—

(१) जग प्रपंच हरि रूप लहै जब दोष भाव मिटि जाही ।
"सूरदास" तब कृष्ण रूप ह्वै हरि हिय में रहै आही ॥

(२) ब्राह्मण मुख क्षत्रिय भुज कहियै वैश्य जंघनहि जान ।
शूद्र चरण यह विधि "जग हरिमय" यही ज्ञान दृढ मान ॥
दोष दृष्टि यहि विधि नहीं उपजै "आनंदमय" दरसाय ।
"सूरदास" तब हरि हिय आवै प्रेम मगन गुन गाय ॥

वैराग्यार्थ—

हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है "तउ माया कृत जानि ।"
तातें मन निकारि सब ठां ते "एक कृष्ण मन आनि ॥

संसार की निःसारता—

(१) अरे मन मूरख जनम गँवायौ ।
"यह संसार सुआ सेमर ज्यों" सुंदर देखि लुभायौ ॥
चाखन लाग्यौ रूई उडि गई "हाथ कछू नहीं आयौ ।"

(२) कहाँ तू कहाँ यह देह बिचार ।
.... "स्वप्न तुल्य यह संसार" ॥
मैं मेरी यह हरि की माया । सकल जीव जग यही नचाया ॥

निम्न पंक्तियों से सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है वह सर्वथा भ्रमात्मक है—

जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि ।
ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि ॥

प्रतिबिंबवाद में, माया में ब्रह्म का जब प्रतिबिंब पड़ता है, तब माया से जगत् की उत्पत्ति मानी गयी है । इससे माया का कर्तृत्व सिद्ध होता है । किंतु यहां तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जो हरि करै सो होई कर्ता नाम हरि" इससे हरि को ही कर्ता माना गया है ।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में पहले कहा जा चुका है कि परब्रह्म अपने आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप अक्षरब्रह्म के सत् धर्म से जगत, चित् धर्म से

† प्रपञ्चो भगवत्कार्यं स्तद्रूपोमाययाऽभवत् । (निबंध)

जीव और आनंद धर्म से अंतर्यामी रूप होते हैं। इसी बात को "ज्यों दर्पण प्रतिबिंब त्यों सब सृष्टि करि।"—इस प्रकार कहा है। यहाँ दर्पण के स्थान पर ज्योति रूप अक्षर है और उसमें स्थित ब्रह्म के साकार रूप से इस सृष्टि की रचना की गयी है। इस साकारत्व के सूचनार्थ ही प्रतिबिंब शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने साकारत्व के प्रतिबिंब रूप में इस सृष्टि की रचना की है, अन्यथा प्रतिबिंबवाद में माया को मलीन कहा गया है, इसलिए स्वच्छता के अभाव में उसमें न तो प्रतिबिंब ही पड़ सकता है, न उससे साकार सृष्टि की रचना हो सकती है।

इस पद की आगे की पंक्तियाँ उक्त बात को और भी स्पष्ट कर देती हैं—

"आदि निरंजन निराकार" कोउ हुतौ न दूसर।
रचौं सृष्टि विस्तार "भई इच्छा" इह औसर॥
"निर्गुण तत्व तें महतत्व महतत्व तें अहंकार।
मन इंद्रिय शब्दादि पंची ता तें कियौ विस्तार॥
शब्दादिक तें पंचभूत "सुंदर" प्रगटाये।
पुनि सब कौं रचि अंड "आप में आप समाये"॥
तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
"आदि पुरुष सोई भयौ जो प्रभु अगम अपार"॥

इसमें "आदि निरंजन निराकार" शब्द उस ज्योति रूप अक्षर धाम के सूचक हैं, और 'रचौं सृष्टि विस्तार भई इच्छा इह औसर' वाला कथन उस धाम में स्थित साकार ब्रह्म का निरूपण करता है। "महतत्व" आदि की जिससे उत्पत्ति कही गयी है, वह "निर्गुणतत्व" ज्योति रूप अक्षर ही है। उससे तीन लोक की रचना कर उनको अपने देह में रखा। इस कथन से पुनः ब्रह्म के साकारत्व का सूचन हुआ है। "आदि पुरुष सोई जो प्रभु अगम अपार" इस कथन में "आदि पुरुष" "अक्षरब्रह्म" की "अगम अपार" ऐसे पुरुषोत्तम परब्रह्म की अभेदता बतलायी गयी है। यह सिद्धांत शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का ही है, जिसको हम पहले लिख चुके हैं।

इस प्रकार यह समग्र पद प्रतिबिंबवाद से असम्बद्ध है। सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का जो आरोप किया जाता है, वह निःसंदेह भ्रमात्मक है।

४. जीव

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म के सदंश से जड़ और आनंदांश से अंतर्यामी हुए, उसी प्रकार उसके चिदंश से जीवों की उत्पत्ति हुई है। अग्नि के विस्फुलिंगों की तरह ब्रह्म में से जीवों की उत्पत्ति होने से ये ब्रह्म के अंश रूप कहे गये हैं*, अतः विस्फुलिंगों में जिस प्रकार अग्नि की स्थिति रहती है, इसी प्रकार इस शुद्ध अवस्था में जीवों में भी भगवदैश्वर्यादि आनंदात्मक धर्मों की स्थिति रहती है, इसलिए इस अवस्था में जीव ब्रह्म रूप होता है।

ईश्वरेच्छा से जब जीवों को माया का संबंध होता है, तब उनमें से वह ऐश्वर्यादि भगवद् धर्म तिरोहित हो जाते हैं। तब वे जीव दीन, पराधीन एवं दुःखी होते हैं, और माया में बद्ध होकर संसारी बन जाते हैं†।

पुन पंचपर्वा विद्या और भक्ति आदि से जीव जब अविद्या से निर्मुक्त हो जाता है, तब वह भगवत्कृपा से क्रमशः अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाता है। यह जीव की जीवन मुक्त अवस्था होती है।

इस प्रकार जीव की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं। प्रथम अवस्था शुद्ध, द्वितीय संसारी और तृतीय मुक्त अवस्था है। "योयदंश स तं भजेत्" श्रुति के अनुसार इन तीनों अवस्थाओं में जीव के लिए अपने अंशी परमात्मा का भजन अवश्य कर्त्तव्य माना गया है।

इन तीनों अवस्था वाले जीवों का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पदों में उपलब्ध होता है—

। (१) विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः। (निबंध)

(२) तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारस्तदिच्छया। (निबंध)

* ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता)

† अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम्।········ ··· तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्मतिरोभावः। ऐश्वर्यतिरोभावाद्दीनत्वं, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभावात् सर्वदुःखसहन ·· ···आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो, येन जीवभावः अतएव काममयः। (अणुभाष्य ३ अ०)

शुद्ध अवस्था वाले जावों का वर्णन --

जहाँ वृंदाबन आदि अजर जहँ कुंज-लता बिस्तार।
सारस-हंस-चकोर-मोर खग कूजत कोकिल कीर॥ × ×
गोपिन मंडल मध्य बिराजत निस-दिन करत बिहार।
'सहस रूप बहुरूप रूप पुनि एक रूप पुनि दोय'॥

संसारी जीवों का वर्णन --

(१) जब लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तब लौं मृगमद नाभि बिसारें फिरत सकल बन बूझत॥
अपुनौ ही मुख मलिन मंदमति देखत दर्पन माँहि।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचत पखारत छाँहि॥

(२) अपुनपौ आपुनहिं बिसरयौ॥
जैसे स्वान काँच मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूसि मरयौ।
ज्यों सपने में रंक भूप भयौ तस्कर अरि पकरयौ॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप परयौ।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दसननि आय अरयौ॥
मरकट मूठि छांडि नहीं दीनीं घर-घर द्वार फिरयौ।
"सूरदास" नलिनी कौ सूआ कहि कौनें जकरयौ॥

इस पद को आधार बनाकर कुछ लोग सूरदास पर प्रतिबिंबवाद का प्रभाव मानते हैं, किंतु पूर्व सिद्धांत के अध्ययन से उन लोगों की धारणा गलत सिद्ध होती है। जैसा कि हम उपर लिख चुके हैं शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को उसकी शुद्ध अवस्था में ब्रह्म रूप माना है, किंतु जब वह माया में भ्रमित होता है, तब वह अपने सत्य स्वरूप को भूल कर भ्रमित हो जाता है, और जिस प्रकार स्वान अपने ही प्रतिबिंब को सच्चा स्वान समझ कर भूंसता है, उसी प्रकार जीव भी अपनी कल्पना द्वारा "मैं" और "मेरेपने" के मिथ्या ज्ञान से अपने क्षण-भंगुर शरीर को ही आत्मा समझ कर दुखी होता है। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान में जीव स्वयं फँस गया है। इसका उल्लेख इसी पद की अंतिम पंक्तियों में "मरकट मूठि छांडि नहिं दीनीं" तथा "सूरदास नलिनी कौ सूआ कहि कौनें जकरयौ" इस प्रकार हुआ है। इससे यह पद शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुकूल ही स्पष्ट होता है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत में जीव को नित्य माना गया है। इसका उल्लेख सूरदास ने निम्न लिखित पद में किया है --

तनु स्थूल और दूबर होइ। परम आत्म कों एक नहिं दोइ ॥
तनु मिथ्या छन-भंगुर जानों। चेतन जीव सदा थिर मानों।
जीवकौ सुख दुख तनु संग होई। जोर विजोर तन के संग सोई ॥
देह अभिमानी जीवहिं जानें। ज्ञानी जीव अलिप्त करि मानें ॥

मुक्त अवस्थावाले जीव का वर्णन—

(१) ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन के भेद भेद नहिं मानै ॥
आत्मा सदा अजन्म अविनासी। ताकौ देह मोह बड फाँसी ॥
तातें ज्ञानी मोह न करै। तनु कुटुंब मों हित परिहरै ॥
जब लग भजै न चरन मुरारी। तब लग होइ न भव-जल पारी ॥

(२) आपुनपौ आपुन ही में पायौ।
सब्द ही सब्द भयौ उजियारौ सतगुरु भेद बतायौ ॥
ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी ढ़ूंढत फिरत भुलायौ।
फिर चेत्यौ जब चेतन ह्वै करि आपुन ही तनु छायौ ॥
राजकुमार कंठमनि भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सतजन तब तनु कौ ताप नसायौ ॥
सपने माँहि नारि कों भ्रम भयौ बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ ज्यों कौ त्यों ही है ना कहुँ गयौ न आयौ ॥
'सूरदास' समुझे की यह गति मनहिं मन मुसिकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यों गूंगौ गुड़ खायौ ॥

५. आत्ममाया

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार आत्ममाया परब्रह्म की "सर्वभवन समर्थ" रूपा शक्ति है। यह परब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहक शक्ति, सूर्य और उसकी प्रकाश शक्ति भिन्न नहीं है, इसी प्रकार परब्रह्म में ही इस माया की स्थिति निरंतर रहती है। आत्ममाया परब्रह्म के आधीन है, परब्रह्म इसके आधीन नहीं। इसलिए यह परब्रह्म के सत्य स्वरूप को कभी आच्छादित नहीं कर सकती है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में इसके दो रूप बतलाये हैं—एक "व्यामोहिका" और दूसरा "करण"। व्यामोहिका भगवान के चरण की दासी है[1], इसलिए वह

[1] इयं (माया) चरणदासी। ······ इयं मोहिका। (सु० २-७-४७)

भगवान के अनुचर के पास जाने में लज्जित होती है*। दूसरी माया को "करण" रूप से स्वीकार कर भगवान इस समग्र जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करते हैं† ।

माया संबंधी उपर्युक्त वर्णन सूरदास के पदों में इस प्रकार मिलता है—

व्यामोहिका माया —

(१) सबनें परे कृष्ण भगवान। × ×
सो माया है "हरि की दासी" निस दिन आज्ञाकारी।
काल कर्म हम सिव अरु विष्णुहिं सब के कारन हरि भारी॥
"पालन सृजन प्रलय के कर्ता माया के गुन जानो।"
मोमें रजगुन, सिव में तमगुन, विष्णुहिं सतगुन मानो॥

(२) मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया॥

(३) हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
यह माया झूठी प्रपंच लगि रतन सौ जनम गँवायौ॥

"करण रूप" योगमाया—

(१) हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ।
अरु यह जगत जद्यपि हरि रूप है तऊ 'माया कृत' जानि।

सूर के पदों में मिथ्यावाद–मायावाद का इस प्रकार खंडन मिलता है—

(१) रूप देखि जस जानि जगत 'बिनु निरवलंब कहो किन भावै ?'

(२) प्रगट ब्रह्म 'दूसरौ नहीं' तू देख नैन पसार।

(३) छांडि स्याम अमीफल अमृत 'माया विष फल' पावै।

---

* "यस्याऽभिमुखश्चकारादनुचराश्चज्ञानिनो भक्ताश्च तत्र सर्वत्रैव विलज्ज-माना। (सु० २-७-४७)

† माया सर्वभवन सामर्थ्यम्, शक्तिर्वा काचित्, अप्रयोजिका, तामपि करणत्वेन स्वीकृत्य इदं सर्वमेव जगदुत्पादयति पालयति नाशयति च।
(सु० १० ५४-१५)

२—सूरदास और पुष्टिमार्गीय भक्ति

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के निर्माण के अनंतर श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने सोचा कि मस्तिष्क प्रधान मनुष्य शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के विशुद्ध ज्ञान से शुद्ध होकर इस संसार से मुक्त हो जावेंगे, किंतु केवल हृदय प्रधान भावुक व्यक्ति किस प्रकार इस संसार से मुक्त हो सकेंगे ! इस विचार के फल स्वरूप उन्होंने प्रेम को अपनाया, क्यों कि प्रेम ही एक ऐसा अनुपम तत्त्व है, जिससे केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी प्रभावित रहते हैं। चैतन्य स्वरूप प्रत्येक जीव का हृदय इस प्रेम की ओर सदा झुका हुआ रहता है। शास्त्रों में भी प्रेम की अगणित महिमा बतलायी गयी है। यहाँ तक कि किसी भी साधन से सर्वदा अप्राप्य ऐसे परम-तत्त्व रूप श्रीकृष्ण भी प्रेम से सुलभ हो जाते हैं। प्रेम से ही भगवान् कृष्ण कृपायुक्त होकर गोपीजनों के अधीन हुए हैं, इसलिए प्रेममय श्रीकृष्ण की साक्षात् कृपा प्राप्त करने के लिए आचार्य जी ने इस प्रेम को ही अपनाया, ताकि जीव सरलता पूर्वक कृष्णासक्त होकर इस संसार से मुक्त हो जाँय।

आचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को ही शुद्ध पुष्टि कहा है।, अतएव पुष्टि भक्ति में प्रेम को अभिव्यक्त किया गया है। विशुद्ध प्रेम के दृष्टांत गोपिजन हैं, इसलिए उन्हीं को पुष्टि के गुरु मान कर आचार्य जी ने उनके प्रेमात्मक साधनों को ही पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है *।

देवादि विषयक रति-प्रेम—को भाव कहते हैं†, अतः विशुद्ध प्रेम भाव स्वरूप होता है। आचार्य श्री के मत से इस भाव को सिद्ध करने का एक मात्र साधन उसकी भावना—सस्नेह क्रियात्मक चिंतन—है‡। इसी से भाव की प्राप्ति होती है। अन्य किसी भी साधन से उस भाव-प्रेम की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। इसीलिए आचार्य जी ने भाव—भाविक परमदेव श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए गोपीजनों की प्रेम-भावना वाली सेवा को प्रगट किया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा।

। पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः। (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

* ......गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्। (सन्यास निर्णय)

† रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते।

‡ भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। (सन्यास निर्णय)

श्री गोपीजनों के त्रिभेद के साथ आचार्य जी ने उनकी प्रेमात्मक-भक्ति साधन रूप भावनाओं का इस प्रकार निरूपण किया है—

"गोपांगना सु पुष्टिः । गोपीषु मर्यादा । व्रजांगना सु प्रवाहः ॥ ...... गोपांगनास्तु मुक्तमुक्ताः भुक्तं गृहं सुखं मुक्तं याभिस्ताः किं वा नाज्ञातो लोकवेदभययुक्तो याभिस्ता भुक्ता कुटुंब मायापत्यवैभव गेहाधिपतिधनवपुः पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता याभिस्ता सर्वान धर्मान्निराकृत्यकेवलं श्रीपुरुषोत्तममेव भजंति । तस्मात्तासां पुष्टित्वम् ॥

अथ गोपीनां व्रजकुमारिणां गोपीजनवल्लभभजनेतर भजनं जातम् । किंचतद्भजनोपायेऽपि कात्यायनीभजनं कृतम् । .... अतएव तासां मर्यादा भक्तिः । ....

तथा व्रजांगनानां मातृभावेनैव संग्रहः । तासाम् ईश्वरे पुत्र भावो वर्तते । तस्मात्तासां प्रवाहत्वम् । इति त्रिविधा गोप्यः ।

(भगवत्पीठिका)

इसका तात्पर्य यह है कि ब्रज में तीन प्रकार की गोपीजन हैं— एक 'गोपांगना" दूसरी "गोपी" अर्थात् "कुमारिकाएँ" तीसरी "व्रजांगनाएँ" ॥

इन तीनों में 'गोपांगनाओं' ने लोक वेद भय से मुक्त होकर और सर्व धर्मों के त्याग पूर्वक शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही 'साक्षात्' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिपुष्टि" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में परकीय भावना वाले उत्कृष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है।

दूसरी 'गोपी' अथवा 'कुमारिकाओं' ने कात्यायनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का 'परोक्ष' भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिमर्यादा" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ स्नेह—स्वकीय की भावना वाली आसक्ति की स्थिति रहती है।

तीसरी 'ब्रजांगनाओं' ने पुरुषोत्तम का लोकवत् बाल भाव से भजन किया है, इसलिए ये "पुष्टिप्रवाह" रूप हैं। इस प्रकार के भजन में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है।

आचार्य जी ने इन तीनों भावनाओं को पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है। इसका विवेचन पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकरण में आगे किया जायगा।

इन त्रिविध भावना-साधनों से जिस कलात्मक विशुद्ध प्रेम रूप शुद्ध पुष्टि की प्राप्ति होती है, उसको श्री वल्लभाचार्य जी ने "स्वाधीना" अथवा "स्वतंत्र भक्ति" कहा है। आचार्य जी का मत है कि जब तक कृष्ण की अधीनता रहती है, तब तक 'मर्यादा' है और स्वाधीन अवस्था को 'पुष्टि' कहते हैं †।

जिस प्रकार एक सिद्ध योगी योग बल से अपने में से अनेक प्रकार के ऐश्वर्य-वैभवों-को प्रकट कर उनके आनंद का स्व-इच्छानुसार उपभोग करता है और पुनः उस ऐश्वर्य को हृदय में स्थापित कर आंतर सुख का भी अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वाधीना स्वतंत्र भाव सम्पन्न भक्त भी भाव बल से अपने में से अनेक प्रकार के लीलात्मक कृष्ण रूपों को प्रकट कर उनके विविध आनंद का अनेक रूप होकर उपभोग करता है और पुनः उनको अपने में स्थित कर आंतर प्रकार से भी उनके साथ विलास करता है। बाह्य स्थिति के समय वह भक्त पूर्ण-धर्मी-संयोग सुख का आनंद लेता है और आंतर स्थिति के समय वह पूर्ण-धर्मी-विप्रयोगात्मक सुख का आनंद भोगता है। इस प्रकार के प्रेम भक्ति योग से उस भक्त का भौतिक देह अप्राकृत हो जाता है। उसके नेत्र में, वाणी में, हृदय में, मन में, तन में और सभी स्थानों में परमानंद स्वरूप लीलामय कृष्ण की स्थिति रहती है, इस लिए वह भाव रूप हो जाता है और भाव में ही निरंतर विलास करता है। "सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इस श्रुत्योक्त फल का भोग 'स्वाधीना' भक्त ही पूर्ण रूप से कर सकता है। इसी को आचार्य जी ने शुद्ध पुष्टि अथवा विशुद्ध प्रेम की तन्मय अवस्था माना है।

यद्यपि पूर्वोक्त प्रेम की तीन भावना अवस्थाओं से इस सिद्ध भाव अवस्था को उत्तम माना गया है और इसी को परम फल भी कहा गया है, फिर भी उक्त तीन अवस्थाएँ भी अपने-अपने समय में फल रूप ही मानी गयी हैं, क्यों कि ये तीनों अवस्थाएँ भी पुष्टि के अवांतर निरोध-मोक्ष रूप ही हैं। इनमें भी जो सुख मिलता है, वह चतुर्विध मुक्ति आदि में भी नहीं है। पुष्टि भक्ति की यही विलक्षणता और पूर्णता है।

---

† कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।

सूरदास के पदों में उक्त चारों प्रकार की भावनाएं और उनके निरोध सुख का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

पुष्टि प्रवाह की स्नेह रूप बाल भावना और उसका निरोध सुख—

बनी सहज यह लूट हरि केलि गोपिन के सपुने यह कृपा कमला न पावै।
निगम निर्धार त्रिपुरारि हू विचारि रह्यौ पचरह्यौ सेष नहिं पार पावै॥
किन्नरी बहुर अरु बहुर गंधर्वनी पनगनी चितवन नहीं मांझ पावै।
देति करतार वे 'लाल गोपाल सों' पकरि ब्रजबाल कपि ज्यों नचावै॥
कोऊ कहै 'ललन' पकरावमोहि पाँवरी कोऊ कहै 'लाल' बलि लाओ पीढ़ी।
कोऊ कहै 'ललन' गहाव मोहि सोहनी कोऊ कहै 'लाल' चढ़ि जाऊँ सीढ़ी॥
कोऊ कहै 'ललन' देखो मोर कैसे नँचै कोऊ कहै भ्रमर कैसे गुँजारै।
कोऊ कहै पौरि लगि दौरि आवहु 'लाल' रीझि मोतिन के हार वारैं॥
जो कछु कहै ब्रजबधू सोई सोई करत, तोतरे बैन बोलन सुहावै।
गोय परत वस्तु जब भारी न उठे तब चूम मुख 'जननी' उरमों लगावै॥
बैन कहि लोनी मुख चाही रहत बदन हँसि स्वभुज बीच लै लै कलोलैं।
'धाम के काम ब्रजबाम सब भूलि रही, कान्ह बलराम के संग डोलैं॥
'सूर' गिरिधरन मधु चरित्र मधुपान के और अमृत कछू आन लागैं।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै 'मुक्ति हू लोन सी खारी लागैं'॥

इस पद में बाल-भावना और उनके निरोध सुख का वर्णन किया गया है। यह मातृ भाव वाली ब्रजांगनाओं की पुष्टि प्रवाह अवस्था है। इनके निरोध सुख के आगे मुक्ति भी नमक जैसी खारी लगती है। यही पुष्टि भक्ति का उत्कर्ष है।

पुष्टि मर्यादा की आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति और उसका निरोध सुख—

भजि सखी भाव-भाविक देव।
कोटि साधन करो कोऊ, तौऊ न मानै सेव॥
धूम्रकेतु कुमार माँग्यौ, कौन मारग प्रीति।
'पुरुष तें त्रिय भाव उपज्यौ' सबै उलटी रीति॥
वसन-भूषन पलटि पहरैं भाव सों संजोय।
उलटि मुद्रा दई अंकन बरन सूधे होय॥
वेद विधि कौ नेम नहीं जहाँ प्रेम की पहचान।
ब्रजबधू बस किये मोहन "सूर" चतुर सुजान॥

प्रारंभ में अग्निकुमारों ने माहात्म्य ज्ञान से श्री रामचंद्र जी का भजन किया था। इससे उनको श्री रामचंद्र जी के कंदर्प रूप के दर्शन हुए थे, जिसके फल स्वरूप उनमें पुरुष होते हुए भी स्त्री भाव उत्पन्न हुआ था। इसी लिए श्री रामचंद्र जी के वर के अनुसार वे सब कृष्णावतार में गोप-कुमारिकाएँ रूप से अवतरित हुए और व्रत-चर्या आदि से "श्री कृष्ण हमारे पति हों" यह वर प्राप्त किया। इस प्रकार की स्वकीय स्त्री भावना का सुख उनको रास-लीला द्वारा प्राप्त हुआ था और उस रमेश श्रीकृष्ण को अपने वश में कर वे निरुद्ध हुई थीं। यह पुष्टिमर्यादा अवस्था का निरोध-सुख है।

पुष्टिपुष्टि के व्यसनरूप परकीय भावना और उसका निरोध सुख—

(१) द्वै लोचन साबित नहीं तेऊ।
'बिनु देखे कल परत नहीं छिन ऐसे पर कीने यह टेऊ' ॥
'बारंबार छबि देख्यौ चाहत' साथी निमिष मिले हैं येऊ ॥

(२) पलक ओट नहीं होत कन्हाई।
'घर गुरुजन बहुतें बिधि त्रासत' लाज करावत लाज न आई ॥
नैन जहाँ दरसन हरि अटके स्रवन थके सुनि बचन सुहाई।
रसना और कछू नहीं भाषत स्याम-स्याम रट यहै लगाई ॥
चित चंचल संगहि संग डोलत 'लोक-लाज मरजाद मिटाई'।
मन हरि लियौ 'सूर' प्रभु तब ही, तन बपुरे की कहा बसाई ॥

(३) नंद के द्वार नंद गेह पूछति।
इतहिं तें जाति उतहिं तें फिरति निकट ह्वै जाति नहीं नैक सूझति ॥
भई 'बेहाल' ब्रजबाल नंदलाल हित अरपित तन-मन सबै तिन्हें दीनों।
'लोक लज्जातजि' लाज देखति भजि स्याम कों भजि कछू डर न कीनों ॥
भूलि गयौ नाम दधि कों कहति स्याम योंनांहि सुधि धाम कछू है कि नाहीं।
'सूर' प्रभु कों मिली मेटि भली अनभली चुन हरदी रली देह छाहीं ॥

(४) कहति नंद-घर मोहि बतावहु।
द्वारे मांझ बात यह पूछति बार-बार कहि कहा दिखावहु ॥
यही गाँव कैधौ और कहूँ जहाँ महरि कौ गेह।
बहुत दूरि तें मैं आई हौं कहि जस काहे न लेहु ॥
अंते ही संभ्रम भई ग्वालिनि द्वारे ही पर ठाढ़ी।
'सूरदास' स्वामी सों अटकी 'प्रीति प्रगटत अति बाढ़ी' ॥

परकीय भावना का निरोध सुख-"मान"—

रूप-रसपुंज बरनौं कहा चातुरी† ।
मान मेरौ कह्यौ चतुर चंद्रावली निरखि मुख कमल उडुराज संकात री ॥
तिलक मृगमद भाल,द्विरद की सी चाल, देखि मोहे लाल मंद मुसकात री
'सूर'नगधर केलि अंस भुज मेलि मुग्ध पद टेलि दे मदन-सिर लात री ॥

इसमें रसेश श्रीकृष्ण की स्वाधीनता के परम सुख का संक्षिप्त में वर्णन हुआ है । यह परकीय भावना वाली "पुष्टिपुष्टि" अवस्था रूप है ।

सूरदास और माधुर्य-भक्ति—सूरदास के इस प्रकार के माधुर्य भक्ति के पद को देख कर कुछ विद्वान उन पर गौडीय, हरिदासी एवं हरिवंशी संप्रदायों की भक्ति का भी प्रभाव होना मानते हैं, किंतु वास्तव में पुष्टि संप्रदाय की पूर्वोक्त भक्ति-भावना का अध्ययन करने से उक्त मान्यता भ्रमात्मक सिद्ध होती है । स्वयं श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के वचनों के आधार पर हम गत पृष्ठों में देख चुके हैं कि पुष्टि भक्ति में बाल, दाम्पत्य और परकीय कांता भाव की तीनों भावनाओं का भजन ग्राह्य है । श्री वल्लभाचार्य जी ने मधुराष्टक, परिवृढाष्टक और सुबोधिनी में माधुर्य-भक्ति का जो प्रवाह बहाया है, उससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है । आचार्य जी अपने 'परिवृढाष्टक' ग्रंथ में कहते हैं—

कलिंदोद्भूतायास्तटमनुचरंतीं पशुपजां ।
रहस्येकां दृष्ट्वा नव सुभगवक्षोजयुगलाम् ॥
दृढं नीवी प्रविश्लथयति मृगाक्ष्या हठतरं ।
रति प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ॥

इसमें श्रीराधा के साथ रहस्य लीला करने वाले परब्रह्म में मेरी सतत रति प्रादुर्भूत हो, इस प्रकार की आचार्य जी कामना करते हैं । इसी

---

† इसी की छाया रूप में अष्टछाप के कृष्णदास का भी एक पद मिलता है—

चतुर चारु चंद्रावलि सुख चकोरैं ।
अम्नु में चरनरति व्रज-जुवति भूषनी कमल लोचन नंद नृप किसोरैं ॥
मान मेरौ कह्यौ अति सील रसरीति क्यों करावति सखी बहु निहोरैं ।
मिलें किन धाय अब कुँवर चूडारत्न रसिकवर भूपाल चित्त चोरैं ॥
नवरंग कुंज महँ तव नाम हित नाथ कुणित कल मुरलिका ठाट मोरैं ।
सुनि"कृष्णदास"सुभलग्न वह धन घरी, लाल गिरिधरन सौं हाथ जोरैं ॥

प्रकार अपने इष्ट देव के स्वरूप का वर्णन करते हुए आपने "मधुराष्टक" में कहा है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

इसमें आचार्य जी अपने इष्ट को "मधुराधिपति" कह कर उनके समग्र अंग, चेष्टा आदि को भी मधुर बतलाते हैं। इससे भी उनकी मधुर भक्ति का ज्ञान हो सकता है।

श्री बल्लभाचार्य जी भक्तिमार्गीय सन्यास का पर्यवसान रासलीला में ही मानते हैं, इसलिए आप पुष्टिपुष्टि स्वरूप श्रुतिरूपा गोपांगनाओं को ही इसकी अधिकारी कहते हैं। "गायत्री भाष्य" में आचार्य जी ने लिखा है—

भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टिपुष्टिश्रुतिरूपाणां रासमंडल मंडनानाम्। स्वयमेवोक्तं "संत्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलं प्राप्ता इत्यादि चतुर्थाध्याये ताः प्रति भगवता॥

सुबोधिनी में तो आचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति के स्वरूप ज्ञान के लिए समग्र रतिशास्त्र को ही प्रकट कर दिया है। जैसा कि—

(१) "अनेन विपरीत रस उच्यते. बंध विशेषो वा तिर्यग्भेदः।"
(१०-३१-७)

(२) "अनेन सर्व एव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः।" (१०-३१-१३)

(३) "अग्रे मर्यादा भंगो रसपोषाय। तदुक्तं "शास्त्राणां विषयस्तावद् यावदमन्द रसानराः। रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रम"। (१०-३३-२६)

उपर्युक्त वचनों के अध्ययन से ज्ञात हो सकता है कि श्री वल्लभाचार्य जी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख होने पर भी हिंदी साहित्य के प्रायः सभी विद्वानों को यह भ्रम हो गया है कि श्री बल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य भक्ति का ही उपदेश किया था और पुष्टि संप्रदाय में माधुर्य-भक्ति का प्रवेश श्री बल्लभाचार्य जी के अनंतर उनके पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी द्वारा चैतन्य संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुकरण पर हुआ। हिंदी सहित्य के अनेक विद्वानों ने बल्लभ संप्रदाय

के सिद्धांतों का गंभीर अध्ययन नहीं किया है, इसलिए उनके उक्त मत पर हमको आश्चर्य नहीं होता है। हमको आश्चर्य तो तब होता है, जब हम पुष्टि संप्रदाय का गंभीर अध्ययन करने वाले डा० दीनदयाल जी गुप्त को भी इसी प्रकार का भ्रमात्मक मत प्रकट करते हुए देखते हैं। उन्होंने आधुनिक विद्वानों के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा है—

"मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेखक के विचार में आचार्य जी ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया†।"

पुष्टि संप्रदाय के इतिहास और श्री आचार्य जी रचित ग्रंथों के अध्ययन से उपर्युक्त मत नितांत भ्रमात्मक सिद्ध होता है। पुष्टि संप्रदाय के इतिहास से सिद्ध है कि अष्टछाप के कुंभनदास के अतिरिक्त पद्मनाभदास और श्रीभट्ट* आदि आचार्य जी के सेवकों ने संप्रदाय के आरंभिक काल में ही केवल मधुर-भावयुक्त निकुंज लीला के पदों का गायन किया था, यहाँ तक कि वात्सल्य भाव का तो शायद उन्होंने एक भी पद नहीं गाया। कुंभनदास आदि का काव्य-काल श्री चैतन्य महाप्रभु के गृह त्याग (सं० १५६६) से पूर्व का निश्चित है। इसी प्रकार श्री वल्लभाचार्य जी कृत माधुर्य-भक्ति पूर्ण "मधुराष्टक" और "परिवृढाष्टक" की रचना भी श्री चैतन्य के गृह त्याग से पूर्व सं० १५५० के लगभग हो चुकी थी। चैतन्य संप्रदाय के इतिहास से ज्ञात होता है कि उक्त संप्रदाय का साहित्य महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के तिरोधान (१५८७) के अनंतर लिखा गया है। ऐसी दशा में चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का प्रभाव पुष्टि संप्रदाय की भक्ति-भावना पर बतलाना असंगत कल्पना है।

इसके अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य भक्ति से वल्लभ संप्रदाय की माधुर्य-भक्ति का मौलिक मतभेद है। माधुर्य-भक्ति की मुख्य पात्र श्री राधा हैं, जिनको वल्लभ संप्रदाय में स्वकीया माना गया है, किंतु चैतन्य संप्रदाय इनको परकीया मानता है। पुष्टि संप्रदाय के मतानुसार परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना—श्री चंद्रावली हैं।

---

† अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ५२७

* यह निंबार्क संप्रदायी श्रीभट्ट से पृथक कवि हैं।

श्रीराधा-सहचरी का उल्लेख श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने ग्रंथ त्रिविध नामावली में भी किया है—"राधायै सहचरीय नमः।" इसी राधा में कृष्णावतार के रास के समय ब्रह्म की मुख्य 'राधस्' शक्ति (लक्ष्मी) का प्रवेश हुआ था, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे विशेष रूप से रमण किया था। इस बात का ज्ञान सुबोधिनी (१०-३०-१७) तथा "राधाविशेष संभोग प्राप्तदोष निवारकः" इस प्रकार "पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम" के अनुसंधान करने पर होता है।

इन सब कथनों से यह स्पष्ट है कि माधुर्य-भक्ति और राधा शब्द के प्रयोग आदि का प्रचार पुष्टि मार्ग में श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा ही श्री चैतन्य के गृह-त्याग से भी पूर्व हुआ है। इसकी पुष्टि आचार्य जी के सेवक "श्रीभट" के निम्न पद से भी होती है—

श्रीवल्लभ प्रगटत सब प्रगटी लीला स्यामघन की।

रसिकन उर अति उल्लास उद्भव भयौ,
रास विलास प्रकास प्रेम पुंज कुंज संपति वृंदावन की॥
आनंद द्रुम उरझि रह्यौ मुरझाई लई कहि,
फेरि उरझाइ दई बातें ब्रजजन की॥
और दिखाई ठौर ठौर दान मान नित प्रसंग,
त्रिभंग तीनों लोक मांझ प्रेम पन की॥
कटि तें लै ग्रीव स्याम गोपीजन भाव भूषन,
सीस मुकुट जटित आभा नील पीतन की॥
विरह बसन लसत देह यही भेष नेह गेह,
आसा सब भांति पूरी "श्रीभट" के मन की॥

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार श्रीराधा परब्रह्म की आत्म शक्ति होने से उससे सर्वथा अभिन्न मानी गयी है। इसीलिये पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथ जी के साथ भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप नहीं रखा गया है। जहां कहीं भिन्न रूप से स्वामिनी का स्वरूप पाया जाता है, वहाँ मूल आत्मशक्ति के धर्मरूप से केवल लीला अनुभवार्थ है। लीला परत्वे श्रीराधा के प्राधान्य को स्वीकार करते हुए भी शुद्धाद्वैत सिद्धांत में शक्तिवान् पुरुष का ही आधिपत्य माना गया है; क्यों कि इस मत में तत्वतः शक्ति शक्तिवान् के अधीन ही मानी गयी है। वस्तुतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार अभिन्न और एक ही रूप हैं।

गो० श्री हरिराय जी के इस विषय में निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

(१) मुख्य शक्ति स्वरूपं तु स्त्रीभावो हरिरुच्यते।

(भावस्वरूप नि०)

(२) तत्र स्त्र्यंशः 'पराशक्ति' भावांशः कृष्ण शब्दितः।

(मूल रूप संशय निराकरणम्)

इस प्रकार शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार साकार पुंभाव अंश और पराशक्ति रूप स्त्री अंश मिलकर ही परब्रह्म कृष्ण कहे गये हैं। इसके विपरीत "द्वैत" मत में तत्वतः दोनों भिन्न माने गये हैं।

सूरदास के पदों में यही शुद्ध अद्वैत सिद्धांत इस प्रकार मिलता है—

(१) ब्रज ही में बसे आपुनहिं बिसरायौ।
'प्रकृति पुरुष एक करि जानहु' बा तन भेद करायौ॥
जल-थल जहाँ रह्यौ तुम बिनु नहीं वेद-उपनिषद गायौ।
'द्वैत न जीव एक हम तुम दोउ' सुख कारन उपजायौ॥
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहीं कोई' तब मन त्रिया जनायौ।
"सूरस्याम" मुख देखि अलप हँसि आनंद पुंज बढ़ायौ॥

(२) राधिका-गेह हरि देह बासी। और त्रियन-घर तन प्रकासी।
ब्रह्म पूरन एक द्वितीय न कोऊ। राधिका सबै हरि सबै एऊ॥
दीप तें दीप जैसे उजारी। तैसे ही ब्रह्म घर-घर विहारी।
खंडितावचनहित यह उपाई। कबहुँ कहूँ जात कहूँ नहीं कन्हाई॥
नारीरस बचन श्रवन न सुनावें। जनमको फल हरी तब ही पावें।
"सूर"प्रभु अनत ही गवन कीनों। तहाँ नहीं गये जहाँ वचन दीनों॥

(३) घर पठई प्यारी अंक भरी।
कर अपने मुख परस त्रिया कों प्रेम सहित दोउ भुजहिं धरी॥
'राधा हरि आधा आधा तनु एक ह्वै ब्रज में ह्वै अवतरी।
"सूरस्याम" रस भरी उमँगि अंग यह छवि देखि रह्यौ रतिपति डरी॥

इन पदों से राधा और कृष्ण की शुद्ध अद्वैतता तथा राधा की स्वकीय भावना स्पष्ट होती है, अतः सूरदास द्वारा किया गया राधा विषयक माधुर्य भाव का वर्णन पुष्टि संप्रदाय की भावना के ही अनुकूल है। सूरदास के पदों में प्राप्त चंद्रावली जी की परकीय भावनासे इसकी और भी पुष्टि होती है।

पुष्टिमार्ग में श्री चंद्रावली जी परकीया रूप में श्री कृष्ण के दक्षिण ओर स्थित रहती हैं, जब कि श्री राधा उनके बांईं ओर रहती हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद में यह भाव स्पष्ट हुआ है—

श्रीचंद्रावली जी का वर्णन—

नंदनंदन हँसे नागरी मुख चितै हरषि 'चंद्रावलि' कंठ लाई।
बाम भुज रवनि*, दक्षिण भुजा सखी†, प्रबल कुंज बन धाम सुख कहि न जाई॥
मनो बिच दामिनी बीच नव घन सुभग, देख काम रति सहित लाजैं।
किधौं कंचन लता बीच तमाल तरु भामिनी बीच गिरिधर बिराजैं॥
गये गृह-कुंज अलि-गुंज सुमननि-पुंज देखि आनंद भरि "सूर" स्वामी।
राधिकाप्रान, चंद्रावलि रमन प्रिय, निरखि छबि होत मन काम कामी॥

विशुद्ध प्रेम की शुद्धि पुष्टि—तन्मय अवस्था रूप "स्वाधीना" भाव का स्वरूप और उसका स्वतंत्र संयोग-विप्रयोगात्मक विलास—

(भाव-प्रेम स्वरूप वर्णन)

(१) भाव बिनु माल नफा नहीं पावै।
भाव बीज भक्तन कौं सर्वस भावहि हिरदै ध्यावै॥
भाव भक्ति सेवा सुमिरन करि पुष्टि पंथ में धावै।
"सूर" भाव सब ही कौ कारन 'भाव ही में हरि आवै'॥

(२) प्रेम में निस-दिन बसत मुरारी।
प्रेम ही तन-धन, प्रेम ही जीवन, प्रेम पगे बनवारी॥
प्रेम—अहार बिहार निरंतर, प्रेम करत व्यवहारी।
"सूरस्याम" प्रभु प्रेम रँगे हैं, और नहीं अधिकारी॥

(तन्मयता का वर्णन)

(३) आँखिन में बसै, जियरे में बसै, हियरे में बसै निस-दिन प्यारौ।
मन में बसै, तन में बसै, अंग-अंग में बसत नंदवारौ॥
सुधि में बसै, बुधि ही में बसै, उरजन में बसत प्रिय प्रेम दुलारौ।
'सूरस्याम' बन हू में बसत, घरहू में बसत, संग ज्यों जलतरंग न होत न्यारौ॥

---

* श्री राधा

† श्री चंद्रावली

(२) गोरस कों निज नाम भुलायौ।
लेहु-लेहु लेहु गोपालहिं गलिन-गलिन यह सोर मचायौ ॥

स्वतंत्र भावों का विलास—

(संयोग अवस्था)

(१) लाल तेरी बंसी नैंक बजाऊं।
अपनौ भूषन पिय कों पहराऊं पिय कौ पहरि बताऊं॥
तुम वृषभान लली बनि बैठो, मैं नंदलाल कहाऊं।
तुम तौ छिपो पिय कुंज गलिन में, पकरि फेंट गहि लाऊं॥
तुम तो मान मानिनि बनि बैठो, मैं गहि चरन मनाऊं।
"सूरदास" प्रभु अचरज भारी, तुम राधे मैं माधौ कहाऊं॥

(विप्रयोग अवस्था)

(२) हरि बिन व्यथा कौन सों कहियै।
मनमथ मथत रहत तन-तन प्रति अंतरगति में दहियै॥
कानन भवन रैन अरु बासर कहुं नहिं सुख लहियै।
मोकों भई यज्ञ-पसु ज्यों यह दुःख कहाँ लों सहियै॥
कबहूँक जिय में ऐसी आवै जाय जमुन-जल बहियै।
"सूरदास" प्रभु कमल-नैंन बिनु कहु कैसे व्रज रहियै॥

इस प्रकार के भावों का स्वतंत्र विलास ही पुष्टि की सर्वोच्च मोक्ष-संन्यास अथवा निरोध अवस्था है। यह सिद्ध हो जाने पर इसी देह से नित्य लीला का परम सुख निरंतर यहाँ बैठे ही बैठे प्राप्त होता है। इसमें लोक वेद के संबंधों की तो गंध भी नहीं रहती है, कृष्ण के बाह्य स्वरूप की भी अधीनता या अपेक्षा नहीं होती। इस अवस्था का भक्त अपने भावानुकूल अनेक प्रकार के लीला स्वरूपों को क्षण-क्षण में प्रकट कर विविध प्रकारों से उनके आनंद का यथेच्छ भोग करता रहता है। कभी वह अपने में ही कृष्ण रूपता का अनुभव कर स्वयं को कृष्ण मानता है, तो कभी अपने अंतस्तल में कृष्णानंद की खोज करता है। शुद्धाद्वैत ब्रह्म-भावना के सिद्धांत का प्रेम की इस अवस्था में ही पर्यवसान हो जाता है।

३—सूरदास और पुष्टिमार्गीय सेवा

श्री वल्लभाचार्य जी ने सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध कराने के लिए जीव को कृष्ण-सेवा का उपदेश किया है† । जब तक सांसारिक दुःख की निवृत्ति और ब्रह्म का बोध नहीं होता, तब तक जीव को पूर्वोक्त दिव्य प्रेम की सिद्धि भी प्राप्त नहीं हो सकती । उस सिद्धि को प्राप्त किये बिना श्रुतियों की गति दुर्लभ है, अतः निरंतर कृष्ण-सेवा करना ही प्रेम-जिज्ञासु जीवों के लिए एक मात्र कर्तव्य कहा गया है ।

आचार्य जी ने कृष्ण-सेवा के दो भेद बतलाये हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा भावनात्मक । क्रियात्मक सेवा पुनः दो प्रकार की कही गयी है—एक तनुजा और दूसरी वित्तजा । तनुजा अर्थात् इस शरीर और उसकी एकादश इंद्रियों एवं स्त्री, पुत्र, कुटुंब आदि द्वारा की जाने वाली सेवा और वित्तजा अर्थात् द्रव्य और उससे संबंधित पदार्थों द्वारा की जाने वाली सेवा । भावनात्मक सेवा को आचार्य जी ने मानसी कहा है । उसका स्वरूप चित्त का श्रीहरि में संपूर्ण रूपेण प्रवण होना है । इसकी सिद्धि तनुजा-वित्तजा प्रकार वाली सेवा से ही हो सकती है*, इसलिए क्रियात्मक सेवा करना ही जीव का सर्व प्रथम कर्तव्य है । इस सेवा में ब्रह्म-भावना पूर्वक पूर्वोक्त बाल-भावना, स्वकीय स्त्री-भावना और परकीय भावनाओं से स्नेहात्मक चिंतवन करना है । इस प्रकार से मानसी सेवा सिद्ध हो सकती है । इससे जीव परागति को प्राप्त होता है‡ । क्रियात्मक सेवा में इस प्रकार के चिंतवन बिना न तो एकादश इंद्रियाँ- विशेषतः मन का ही विनियोग हो सकता है, न उससे चित्त की पूर्ण प्रवणता रूप मानसी सेवा ही सिद्ध हो सकती है ।

तनुजा-वित्तजा रूप क्रियात्मक सेवा के स्वरूप को तादृश करने के लिए आचार्य जी ने पुष्टिमार्गीय सेवा का इस प्रकार निर्माण किया है—

---

† (१) ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम । (सिद्धांत मुक्तावली)
(२) कृष्ण सेवा सदा कार्या ....। (सिद्धांत मुक्तावली)

* चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनु वित्तजा । (सिद्धांत मुक्तावली)

‡ युवां मां पुत्र भावेन ब्रह्म भावेन चासकृत ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौयास्येथे मद्गतिं पराम् । (भागवत १०, अ० ४)

गुरु का आश्रय—कृष्ण-सेवा के जिज्ञासु जीव को सर्व प्रथम कृष्ण का माहात्म्य और उनके स्वरूप का ज्ञान आवश्यक रूप से होना चाहिए। इसके बिना उससे कृष्ण की कृपा को प्राप्त कराने वाली सेवा सांगोपांग रूप से नहीं हो सकती है। अतएव इस प्रकार की ज्ञान-प्राप्ति के लिए कृष्ण-सेवा में परम-वीदग्ध, दंभादि रहित और श्रीभागवत-तत्त्व को जानने वाले पुरुष को गुरु करना आवश्यक है और श्रद्धा एवं जिज्ञासा पूर्वक 'सर्वात्मभाव' से इस गुरु का भजन-आश्रय करना इस जीव के लिये नितांत आवश्यक होता है*। जब तक जिज्ञासु जीव में गुरु और ईश्वर के बीच इस प्रकार की अभेद बुद्धि नहीं स्थापित होती, तब तक उसको शास्त्रों के ज्ञान–निष्कर्ष स्वरूप कृष्ण-माहात्म्य का विशुद्ध बोध भी नहीं हो सकता है। उपनिषद् के निम्न श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यै ते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

सूरदास के पदों में सर्वात्म भाव से गुरु के भजन का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

(१) श्री बल्लभ अबकी बेर उबारौ।
सब पतितन में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारौ॥
और पतित नहीं मेरे सम, अजामिल कौन बिचारौ।
भाज्यौ नरक नाम सुन मेरौ, जम ने दियौ हरतारौ॥
कृपासिंधु करुनानिधि केसव, अब न करोगे उधारौ।
"सूर" अधम कों कहूँ ठौर नहीं,'बिना एक सरन तुम्हारौ'॥

(२) श्री बल्लभ भले–बुरे तोऊ तेरे।
तुमहिं हमारी लाज बडाई, बिनती सुन प्रभु मेरे॥
अन्य देव सब रंक-भिखारी, देखे बहुत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भये सब 'चेरे'॥
सब त्यजि तुम सरनागति आये, दृढ़ करि चरन गहेरे।
"सूरदास" प्रभु तिहारे मिले तें, पाये सुख जु घनेरे॥

(३) भरोसौ दृढ़ इन चरननि केरौ।
श्री बल्लभ नख-चंद्र छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरौ॥

---

* कृष्णसेवा परंवीदग्ध्यं दम्भादिरहितं नरम्।
श्रीभागवत तत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात्॥ (निबंध)

साधन और नहीं या कलि में जासों होत निवेरौ।
"सूर" कहा कहै द्विविध आँधरौ बिना मौल कौ 'चेरौ'॥
(४) हरि-हरि-हरि सुमिरन करो। हरि-चरनारविंद उर धरो॥
श्रीमद्वल्लभ प्रभु के चरन। तिनके गहो सुदृढ करि सरन॥
विट्ठलनाथ कृष्ण सुत जाके। सरन गहे दुख नासहिं ताके॥
तिनके पद-मकरंदहिं पाऊं। "सूर" कहै हरि के गुन गाऊं॥

पूर्वोक्त शास्त्रीय आधारों से इस सेवा-मार्ग में सर्व प्रथम गुरु का आश्रय कर्त्तव्य रूप कहा गया है। जब जीव गुरु का आश्रय करता है, तब गुरु भगवान् श्रीकृष्ण से उसका विस्मृत हुआ चिरकालीन अंशात्मक संबंध का ज्ञान कराते हुए उसका कृष्ण के चरणों में आत्म-निवेदन कराता है। इससे जीव कृष्ण का दास बनकर कृष्ण-सेवा का अधिकारी होता है। जिस मंत्र से आचार्य जी ने जीव का श्रीकृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण कराया है, उसका अक्षरशः अनुवाद इस प्रकार है—

"श्रीकृष्ण मेरा आश्रय (शरण) है। सहस्र परिवत्सर जितना काल व्यतीत हुआ, श्रीकृष्ण से मेरा वियोग हुआ है। उस वियोग-जन्य तापक्लेशानंद का मेरे में से तिरोभाव हुआ है, अतः भगवान कृष्ण को देह, प्राण, इंद्रियाँ, अतःकरण उसके धर्म, दारागार, पुत्र, आप्त-वित्त, इहलोक-परलोक और आत्मा सहित (मैं) समर्पित करता हूँ। मैं दास हूँ। कृष्ण मैं तुम्हारा हूँ।"

कृष्ण के स्वरूप (मूर्ति) के समक्ष बाह्याभ्यंतर शुद्ध प्रकार से आचार्य जी जीव को तुलसी की साक्षी से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करवाते हैं। इसी को आत्म-निवेदन कहा जाता है।

---

१ अग्निरूपो द्विजाचार्यो भविष्यामीह भूतले।
वल्लभोऽग्निरूपः स्याद्विट्ठलः पुरुषोत्तमः॥
(अग्नि पुराण का भविष्योत्तर खंड)

वल्लभोनाममेवास्य भुविसर्वे वदन्तिहि।
यत्सूनु विट्ठलेशस्तु यशोदा नंदनंदनः॥
(नारद पंचरात्र के तृतीय रात्र)

अग्निसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, गौरी-तन्त्र, ब्रह्मयामल इत्यादि में भी इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं।

श्रीमद्भागवत एकादशस्कंध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये दारागार पुत्राप्त प्राणान् वित्त मिमं परं।
हित्वा मां शरणं यातः कथं तां स्त्यक्तुमुत्सहे॥

अर्थात्—जो व्यक्ति दारागार पुत्राप्त प्राण और वित्त आदि सहित मेरी शरण में आता है, उसको मैं हे उद्धव ! किस प्रकार त्याग कर सकता हूँ ?

इस प्रकार के कृष्ण-वाक्यों को प्रमाण मान कर ही आचार्यजी ने इस आत्म-निवेदन प्रणाली को प्रकट किया है और इसी से जीव अपने अंशी कृष्ण से अंगीकृत होकर साक्षात् दासत्व का अधिकारी हो जाता है, इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्"—इस भगवद्गीता का कृष्ण-वाक्य भी इस विश्वास की पुष्टि करता है, अतः अविश्वास न करने की आज्ञा करते हुए* आचार्यजी ने इस अधिकार को प्रत्यक्ष करने के लिए वाचिक रूप से जो प्रतिज्ञा की है, उसका क्रिया और मन से अनुसरण करने को कहा है। इसी लिये सेवामार्ग प्रकट किया गया है। सेवामार्ग द्वारा जीव मनसा-वाचा-कर्मणा भगवद्दास्यत्व को सिद्ध कर कृष्णानुगृहीत होता है। इससे वह परमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार के आत्म-निवेदन और उसके क्रियात्मक रूप का वर्णन सूरदास के निम्न लिखित पद मे मिलता है—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ।
नंदनंदन करि घर कौ ठाकुर आपुन ह्वै रहु चेरौ॥
भली भई जो संपति बाढी बहुत कियौ घर घेरौ।
कहुँ हरि-सेवा, कहुँ हरि-कथा, कहुँ भक्तन कौ डेरौ॥
जुवती-जूथ बहुत संकेले, वैभव बढ्यौ घनेरौ।
सबै समर्पन "सूर" 'स्याम कौं' यहै साँचौ मत मेरौ॥

जो लोग "तन मन धन गुसांईजी को अर्पन' इस कहावत के कारण पुष्टिमार्ग को बदनाम करने की धृष्टता करते हैं, उनको पूर्वोक्त आत्मनिवेदन के मंत्र के अक्षरार्थ तथा सूरदास के इस पद पर ध्यान देना चाहिए। इन दोनों में गुरु को समर्पण करने का कहीं उल्लेख नहीं है, श्रीकृष्ण को ही सब कुछ समर्पण करने को कहा गया है।

---

* अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः। (विवेक धैर्याश्रय)

नित्य की सेवाविधि—श्रीवल्लभाचार्य जी का उपदेश है कि शरणस्थ जीवों को गुरु की बतलाई हुई प्रणाली के अनुसार सेवा की कृति करनी चाहिए*, इसीलिए आचार्यजी ने स्वमार्ग की सेवा-विधि का निर्माण किया है, जिससे पुष्टिस्थ जीव इस विधि के अनुसार सेवा की कृति कर सकें।

आचार्यजी ने सेवा-विधि में दो क्रम रखे हैं—एक प्रातःकाल से शयन पर्यंत की नित्य विधि का और दूसरा वर्षोत्सव का।

हम पहले लिख चुके हैं कि आचार्यजी ने पुष्टि के गुरु स्वरूप गोपीजनों के भावना-साधनों को ही इस पुष्टिमार्ग के मुख्य साधन माने हैं, इसलिए आचार्य जी ने पूर्वोक्त व्रजांगनाएँ, गोपी और गोपांगनाओं की विविध साधन रूप प्रेमात्मक भावनाओं के अनुसार ही इस सेवा-विधि का निर्माण किया है†।

मातृभाव स्वरूप व्रजांगनाओं ने भगवान कृष्ण के प्रति बाल-भाव की भावना से प्रेरित होकर उनकी प्रातःकाल से शयन पर्यंत वात्सल्यता पूर्वक सेवा की है; इसलिए आचार्यजी ने इस नित्य की सेवा-विधि में उन्हीं की भावना को फलित किया है। इस भावना के अनुसार आचार्य जी ने कृष्ण की सेवा के मुख्य आठ समय रखे हैं। इनका नाम और परिचय इस प्रकार है—

१. मंगला, २. शृंगार, ३. ग्वाल, ४. राजभोग, ५. उत्थापन, ६. भोग, ७. संध्याआरती, ८. शयन।

१. मंगला—श्री गुरु का स्मरण और उनकी वंदना कर भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप को प्रातः जगाया जाता है। फिर उनको कलेऊ कराया जाता है, जिसको मंगल भोग कहते हैं। समयानुसार भोग कराकर मंगला-आरती होती है। ये सब प्रक्रियाएँ वात्सल्य बाल-भाव से मातृ-चरण श्री यसोदाजी की भाव-भावना से भावित होकर की जाती हैं। इसमें ऋतु अनुसार वस्त्र, सामग्री आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है।

२. शृंगार—मंगला-आरती के अनंतर श्रीकृष्ण के स्वरूप का उष्ण जल से स्नान कराया जाता है और तेल-फुलेल लगाकर वस्त्र, आभरण आदि धराये जाते हैं।

---

* सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा (नवरत्न)

† सेवा-रीति प्रीति व्रज जन की जन हित जग प्रगटाई। (बधाई)

३ ग्वाल—शृंगार के अनतर शृंगार-भोग आता है। फिर ग्वाल के भाव से 'घैया§' अरोगाई जाती है।

४ राजभोग—शीतकाल में ठंड के कारण भगवान् कृष्ण नंदादिक के साथ घर में भोजन करते हैं और उष्णकाल में धूप शीघ्र होने से माता यशोदा अपने पुत्र को शीघ्र गायों के साथ बन में भेज देती है और पीछे से भोजन सामग्री सखियों के द्वारा भेजती है। इसे 'छाक' कहते हैं। फिर राजभोग आरती होकर 'अनोसर' होता है।

५ उत्थापन—छै घड़ी दिन रहे पुनः प्रभु को जगाया जाता है।

६ भोग—जगाने के अनंतर फल-फूलादि का भोग आता है। फिर दर्शन होते हैं।

७ संध्या-आरती—बन से गायों को लेकर श्री कृष्ण घर आते हैं. उस समय घर में आरती की जाती है।

८ शयन—ब्यारू-शयन भोग आता है, फिर दर्शन आरती होती हैं। इसके पश्चात श्रीकृष्ण के स्वरूप को पौढाया जाता है।

इस प्रकार की दैनिक प्रक्रियाओं को नित्य की सेवा-विधि कहते हैं। इसमें मातृचरण श्री यशोदा जी की वात्सल्य-भावना की ही प्रधानता रहती है।

सूरदास ने उक्त नित्य की सेवा-विधि का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया है—

भजो गोपाल भूलि जिनि जावो। मनुष देह कौ यहि है ल्हावो॥
'गुरु सेवा' करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन में आई॥
यही देह सों सुमरो देवा†। देह धारि करिए यह सेवा॥
सुनो संत सेवा की 'रीति'। करै कृपा 'मन राखै प्रीति'॥
उठिकैं प्रात गुरन सिर नावें। प्रात समैं श्रीकृष्ण ही ध्यावें॥
जोई फल माँगे सोई फल पावें। हरि-चरनन में जो चित लावें॥
जिन ठाकुर कौ दरसन कियौ। जीवन जन्म सुफल करि लियौ॥

§ दूध के फेन का पदार्थ।

† एको देवो देवकी पुत्रएव।……कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा।

(निबंध)

जो ठाकुर की आरति करें* । तीन लोक वाके पाँयन परें ॥
जो ठाकुर कों करे प्रनाम । विष्णु लोक तिनकौ निज धाम‡ ॥
जो हरि आगे वाद्य बजावें । तीन लोक रजधानी पावें ॥
जो जन हरि कों ध्यान करावें । गरभ वास में कबहू न आवें ॥
जो हरि कौ नित करें सिंगार। । ताकौ पूरन है अंगीकार ॥
जो दरपन ठाकुरहिं दिखावें । चंद सूर्य ताको सिर नावें ॥
जो ठाकुरहिं सु तुलसी चढावें। । ताकी महिमा कहत न आवें ॥
जो कीर्तन ठाकुर ही सुनावें । ताकों ठाकुर निकट बुलावें ॥
हरि-मंदिर में दीपक धरें । अंध-कूप में कबहू न परें ॥
जो ठाकुर की सेज बिछावें । निज पद पाय, दास सो कहावें ॥
पलना जो ठाकुरहिं भुलावें । वैकुंठ-सुख अपने घर लावें ॥
जो ठाकुरहिं झूलावें डोल । नित लीला में करें कलोल ॥
उत्सव करि मन आरती करें‖ । ता आधीन रहें श्रीहरें ॥
जो ठाकुर को भोग धरावें । सदा परम नित आनंद पावें ॥
जो पद दीन्ह जसोदा मात¶ । ता सुख कौ कछू कही न जात ॥
ग्वालन सहित गोपाल जिमावें§ । सो ठाकुर के सखा कहावें ॥
जो ठाकुर कों स्वाद करावें । सो ताकौ फल तब ही पावें ॥
गोवर्धन की लीला गावें । चरन-कमल-रज तब ही पावें ॥
श्री जमुना जल करें जो पान । सो ठाकुर के रहें सन्निधान ॥
जहाँ समाज वैष्णवी होवै । ताकी संगति नित-प्रति जोवै ॥

---

* मंगला-आरती ।

‡ सेवायाः फल त्रयम । अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्यं, सेवोपयिक देहो वा वैकुंठादिषु । (सेवाफल विवरणम)

। शृंगार का समय ।

। शृंगार अनंतर ग्वाल के समय में तुलसी समर्पण करने का गान है । इसमें ग्वाल का संकेत है ।

‖ राजभोग आरती का संकेत है ।

उत्थापन भोग ।

¶ बाल-भावना का संकेत है ।

। संध्या-आरती का संकेत है ।

§ शयन भोग ।

श्री भागवत सुनै आनंद करि । ताके हृदै बसें नितही श्रीहरि ।।
जो ठाकुर कों देह समर्पै । उत्तम श्रेष्ठ जानि कैं अरपे ।।
जिनि हरि की गागर भरि आनी । तिन बैकुंठ अपनी स्थिति ठानी ।।
जो ठाकुर कौ मंदिर लेपे । माया ताकों कबहू न लेपे ।।
जो ठाकुर कौ सीधौ बीनें । जितने तीरथ तितने कीनें ।।
जो ठाकुर की माला पोवै । सोई परम भक्त नित होवै ।।
जो ठाकुर को चंदन लावै । त्रिविध ताप संताप मिटावै ।।
जो ठाकुर के पात्रन धोवै । सदा-सर्वदा निरमल होवै ।।
जो हरि-कीर्तन सुख सों करै । मुक्ति चारि हू पाँयन परै ।।
सेवा में जो आलस करै । कूकर ह्वै कै फिरि-फिर मरै ।
"मनसा जो सेवा आचरै । तब ही सेवा पूरी परै ।।"
सेवा कौ आश्रय करि रहै । दुख सुख बचन सबन के सहै ।।
जो सेवा में आलस लावै । सो जड़ जनम प्रेत कौ पावै ।।
वेद पुरानन में यों भाख्यौ । 'सेवारस ब्रज गोपिन‡ चाख्यौ' ।।
सेवा की यह अद्भुत रीति । श्री विट्ठलेश सों राखो प्रीति ।।
श्री आचार्य महाप्रभु प्रगट बनाई । कृपा भई तब मन में आई ।।
सेवा कौ फल कह्यौ न जाई । मुख सुमरे श्री बल्लभ राई ।।
सेवा को फल सेवा पावै । "सूरदास" प्रभु हृदै समावै ।।

सूरदास के निम्न पदों में आठों समय की बाल-भावनाओं का इस प्रकार वर्णन किया गया है —

मंगला

जगाने का —

लालै नाहि जगाय सकत, सुन सो बात सजनी ।
अपने जान अजहू कान्ह, मानत सुख रजनी ।।
जब-जब हौं निकट जाऊँ, रहत लागि लोभा ।
तन की सुधि बिसरि गई, देखत मुख-सोभा ।।
बचनन कों जिय बहुत करत, सोचत मन ठाढ़ी ।
नयनन नयन बिचारि परे, निरखत रुचि बाढ़ी ।।
यह बिधि बदनारविंद, यसुमति जिय भावै ।
"सूरदास" सुख की रासि, कहत न बनि आवै ।।

---

‡ वीथिन

कलेऊ का—

(१) दोऊ भैया माँगत मैया पै, देरी मैया दधि माखन रोटी।
सुनि जसुमति यह बात सुतन की, झूठे ही धामके काम अंगोटी॥
बलभद्र गह्यौ नासा कौ मोती, कान्ह कुंवर गही दृढ़ करि चोटी।
मानो हंस मोर भख लीने, कहा बरनों उपमा मति छोटी॥
यह देखत नंद आनंदे, प्रेम-मगन भये लोटा-पोटी।
"सूरदास" प्रभु मुदित यसोदा, भाग्य बड़े, करमन की मोटी॥

(२) अबही जसोदा माखन लाई।
मैं मथिकैं अब ही जू निकार्यौ तुम कारन मेरे कुँवर कन्हाई।
माँगि लेहु ऐसे ही मोपैं मेरे हीं आगें खाहु।
और कहूँ जिन खैहों मोहन, दीठ लगेगी काहु॥
तनक-तनक ही खाउ लाल मेरे, ज्यों बढ़ि आवै देह।
"सूर" स्याम कछु होउ बड़े से, बैरिन के मुख खेह॥

आरती का—

ब्रज मंगल की मंगल आरती।
रतन जटित कनक थार लै ता मधि चित्र कपूर लै बारती॥
लेति बलाइ करति न्यौछावरि तन-मन-प्रान वारनै वारती।
"सूरदास" भरी हैं जसोदा मगन भई तन-मन न सँवारती॥

श्रृंगार

न्हवायवे का—

यसोपति जब ही कह्यौ न्हवावन, रोय गये हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगें धरि, लाल ही चोटी पोतत री॥
मैं बलि जाऊं इन मोहन की, कित रोवत बिन काजै।
पाछें धरि राख्यौ चुराय कैं, उबटनौ तेल समाजै॥
महेरि बहुरि बिनती करि राखत, मानत नहीं कन्हाई।
"सूर" स्याम अति ही बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पाई॥

श्रृंगार का—

करति श्रृंगार मैया मन भावत।
सीतल जल उष्ण करि राख्यौ+ लै लालन कों बैठि न्हवावत॥

+ केवल पुष्टि संप्रदाय में ही भगवत्स्वरूप उष्ण जल से बारहों मास न्हवाये जाते हैं। अन्य संप्रदायों मे बारहों मास ठंडे जल से ही न्हवाये जाते है।

देखो मेरे लाल और सब बालक घर-घर तें कैसे बनि आवत ॥
पहरौ लाल झगा अति सुंदर, आँख आँजि कैं तिलक बनावति ।
"सूरदास" प्रभु खेलत आंगन, लेति बलैया मोद बढ़ावति ॥

ग्वाल

गैया का—

दै मैयारी दोहिनी, दुहि लाऊं गैया ।
माखन खाय बल भयौ तोहि नंद दुहैया ॥
सेंदुर-काजर धूमर-धौरी मेरी ये गैया ।
दुहि लाऊं तुरतहिं तब मोहि करि दे घैया ॥
ग्वालन के संग दूहत हों बूझहु बलभैया ।
"सूर" निरखि जननी हँसी तब लेति बलैया ॥

राजभोग

प्रातकाल भोजन का –

जेंवत कान्ह नंद जू की कनियाँ ।
कछुक खात, कछु धरनि गिरावत, छवि निरखति नंदरनियाँ ॥
बरी-बरा बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन विविध अँगनियाँ ।
आपन खात नंदमुख लावत, यह सुख कहत न बनियाँ ॥
आपुन खात खवावत ग्वालन, कर माखन दधि दुनियाँ ।
मद माखन मिश्री मिश्रित करि, मुख नावत छवि धनियाँ ॥
जो सुख महरि-यसोदा विलसत, सो नहिं तीन भवनियाँ ।
भोजन करि अचवन जब कीनों, माँगत "सूर" जुठनियाँ ॥

मध्या काल छाक का—

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।
टेरि-टेरि हौं भई बावरी, दोऊ भैया तुम रहे लुकाई ॥
जे सब ग्वाल गये घर घर कों, तिनसों कहि तुम छाक मँगाई ।
लोंनी दधि मिष्टान्न जोरिकैं, यसुमति मेरे हाथ पठाई ॥
ऐसी भूख मांझ तू लाई, तेरी वहि विधि करों बड़ाई ।
"सूर" स्याम सब सखन पुकारत, आवत क्यों न छाक ही आई ॥

राजभोग सन्मुख का—

चक्र के धरनहार, गरुड़ के असवार,
नंद के कुमार मेरौ संकट निवारौ ।

यमला-अर्जुन तारयौ, गज ग्राह तें उबारयौ,
नाग कौ नाथन हार मेरौ प्रान प्यारौ ।।
गिरिवर कर धारयौ, इंद्र हू कौ गर्व गारयौ,
ब्रज के रक्षन हार बिरद बिचारौ ।
द्रुपद सुता की बेर, नैंक हू ना कीनीं बेर,
अब क्यों अबेर "सूर" सेवक तिहारौ ।।

उत्थापन

नट—

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ ।
जब तें आजु नंदनंदन छबि, बार-बार करि पेख्यौ ।।
नख, अंगुरी, पग, जानु, जंघ, कटि, रचि कीन्हों निरमान ।
हृदय, बाहु, कर, हस्त, अंग-अँग, मुख अति सुंदर बान ।।
अधर, दसन, रसना, रस बानी, स्रवन, नैंन अरु भाल ।
"सूर" रोम प्रति लोचन देतौ देखत बनै गोपाल ।।

संध्या-आरती

गौरी

(१) वह देखो नंद कौ नंदन आवत ।
बृंदावन तें गाय चराय कै कर धर बैनु बजावत ।।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन जसोदा के जिय भावत ।
कारी, धौरी, धुमरी, पियरी, लै-लै नाम बुलावत ।।
बाल-गोपाल सखा संग लीने, पतुवन दूध पिवावत ।
"सूरदास" प्रभु बेग धरत पग, जुवती प्रेम बढ़ावत ।।

(२) जसोदा मैया काहे न मंगल गावै ।
पूरन ब्रह्म सकल अबिनासी, ताकौ गोद खिलावै ।।
कोटि-कोटि ब्रह्मांड कौ कर्त्ता, मुनि जन जाकों धावै ।
ना जानों यह कौन पुन्य ते, तेरी धैनु चरावै ।।
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, जप-तप ध्यान न आवै ।
सेष-सहसमुख रटत निरंतर, हरि कौ पार न पावै ।।
सुंदर बदन कमल-दल लोचन, गोधन के सँग धावै ।
करत आरती मात जसोदा, "सूरदास" बलि जावै ।।

शयन

ब्यारू का—

माखन रोटी लेउ कान्ह बारे ।
ताती रुचि उपजावत त्रिभुवन के उजियारे ।।
और लेउ पकवान मिठाई मेवा बहु विधि सारे ।
औंट्यौ दूध सद्य घृत मधुर रुचि सों खाउ मेरे प्यारे ।।
तब हरि उठिकैं करी ब्यारू भक्तन प्रान पियारे ।
"सूरदास" प्रभु भोजन करिकैं सुचि जल सों बदन पखारे ।।

शयन के दर्शन का—

कुंडल मंडित कपोल, अति लोल डोलनि, बड़े नैन चारु सरस सजल भरे । नासा सुकवर सुढार, अधर बिंब बिच प्रवाल, हसन दसन लसनि मानों फूल भरे ।। कंबु कंठ मुक्त-माल, नगन जटित पदक लाल, कंठ बाँह भुज मृनाल, सखा अंस धरे । नाभि नलिन कीर चीर, पाइन ज्वलत चटक-मटक, चरन कमल चित्त दै "सूर" बिनती करे ।।

पौढ़ने का—

(१) गिरिधर सैन कीजै आय ।
चाँदनी यह घटत नाहीं कहत जसोदा माय ।।
खेल सोई खेलियै बलि जो हमहीं सुहाय ।
जो खेल में तेरें चोट लागै सो खेल देहु बहाय ।।
खेलि मदन गोपाल आये जननी लेति बलाय ।
पियौ पय तुम धौरी धेनु कौ सुख कर हू माखन खाय ।।
स्वच्छ सेज सुगंध बहु विधि लाल पौढ़ आय ।
मदन मोहन लाल के "सूर" चरन चांपत माय ।।

(२) सोवत नींद आय गई स्यामहिं ।
महरि उठी पौढाय दुहन कों, आपन लगी गृह कामहिं ।।
बरजति है घर के लोगन कों, हरुवे लै-लै नामहिं ।
गाढ़ बोल न पावत कोऊ डर मोहन बलरामहिं ।।
सिव-सनकादिक अंत नहिं पावत ध्यावत हैं दिन-यामहिं ।
"सूरदास" प्रभु ब्रह्म सनातन सो सोवत नंद-धामहिं ।।

---

† यह सांप्रदायिक परिपाटी आज भी श्रीनाथजी प्रभृति के यहाँ प्रचलित है ।

वर्षोत्सव विधि—नित्य-सेवा विधि के अतिरिक्त आचार्य जी ने सेवा-मार्ग में वर्षोत्सव विधि का भी समावेश किया है। श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओं के वर्ष भर के उत्सव तथा षट् ऋतुओं के उत्सवों का इसमें प्राधान्य है। इन्हीं उत्सवों के साथ यह समग्र जगत ईश्वर कृत होने से सत्य है। इस सिद्धांत के आधार पर लोक-त्यौहारों को भी स्थान दिया गया है। इसी प्रकार ब्रह्म-भावना के माहात्म्य-ज्ञान को स्पष्ट करने के लिए वैदिक पर्व तथा भक्ति प्राधान्य कृष्ण के अन्य अवतारों की जयंती आदि को भी इस सेवा मार्ग में स्वीकार किया गया है। इन सब का परिचय इस प्रकार है—

नित्य एवं अवतार लीलाओं के उत्सव—संवत्सर, गनगौर, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, पवित्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दान, सांझी, नवरात्रि, रास अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।

षट् ऋतुओं के उत्सव—वसंत ऋतु का उत्सव डोल, ग्रीष्म ऋतु का उत्सव फूल-मंडली, वर्षा ऋतु का उत्सव हिंडोरा, शरद ऋतु का उत्सव रास (द्वितीय दिन का), हेमंत ऋतु का उत्सव देवप्रबोधिनी का जागरण, शिशिर ऋतु का उत्सव होली।

लोक त्यौहार—रक्षा बंधन (ब्राह्मणों का) दशहरा (क्षत्रियों का) दिवाली (वैश्यों की) होली (शूद्रों की) इत्यादि।

वैदिक पर्व—मकर संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि

अन्य अवतारों की जयन्तियाँ—राम जयंती, नृसिंह जयंती, वामन जयंती।

इन उत्सवों में आसक्ति रूप स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति तथा व्यसन रूप परकीय भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। त्यौहार और वैदिक पर्वों में लोक-भावना और वेद की ब्रह्म-भावना का आधार लिया गया है। लोक-भावना वाले त्यौहारों का समावेश बाल-भावना में तथा ब्रह्म-भावना वाले पर्वों का समावेश माहात्म्य ज्ञान से संबंधित स्वकीय स्त्री भावना वाली भक्ति में हो जाता है।

इन उत्सवों की भावनाएँ सूरदास के निम्न लिखित पदों से जानी जा सकती हैं—

१. संवत्सर—(चैत्र शु० १) "चक्र के धरन हार गरुड के असवार" यह माहात्म्य ज्ञान वाला पूर्वोक्त पद उपलब्ध है। भक्ति का हेतु माहात्म्य ज्ञान

होने से इसका गान नये वर्ष के प्रारंभ में होता है। इसमें भक्ति रूप "संवत्सर की सरस लीला" में जीव का अधिकार प्राप्त होता है।

२. गनगौर— (चैत्र शु० ३) यह ब्रज की कन्याओं का त्यौहार है। श्रीराधिका प्रभृति ने जिस प्रकार "नंद-सुत हमारे पति हों' इस मनोर्थ की सिद्धि के लिये मार्गशीर्ष और पौष में ब्रतचर्या कात्यायनी और भद्रकाल का आराधन किया था, इसी प्रकार चैत्र में गनगौर के रूप में ब्रज की आध्यात्मिक शक्ति रूपा 'गौरां" को पूजा है। "कौन गौर तें पूजी राधा" आदि अष्टछाप के परमानंददास के कई पद इस विषय के उपलब्ध हैं। सूरदास का पद इस विषय का उपलब्ध नहीं होता है। फिर भी निम्न लिखित पद से उक्त बात की पुष्टि होती है—

सिव सों विनय करति कुमारि।
सीत भीतर जोरि कर मुख स्तुति करत त्रिपुरारि॥
व्रत संयम करति सुंदरि कृस भई सुकुमारि।
"छहौं ऋतु तप करति नीके," गृह कौ नेह बिसारि॥
ध्यान धरि कर जोरि, लोचन मूंदिक यक-यक याम।
विनय अंचल छोरि रवि सों करति हैं सब बाम॥
हमहिं होउ कृपालु दिनमनि, तुम विदित संसार।
काम अति तनु दहत, दीजै "सूर" स्याम भरतार॥

इसमें 'छहौ ऋतु तप करति नीके" वाले कथन में चैत-बसंत ऋतु की गनगौर-आराधना का भी समावेश हो जाता है।

३. अक्षय तृतीया-(वैशाख शु० ३) नित्य लीला का उत्सव है-

(१) आजु बने नंदनंदन री नव चंदन अंग अरगजा लाये।
लरकत हार सुढार जलज मनि, गुंजत अलि अलकन समुदाये।
पीत बसन तन बन्यौ पिछौरा, टेढ़ी पाग तोर लटकाये।
अक्षय तृतीया, अक्षय लीला, अक्षय "सूरदास" सुख पाये॥

(२) कैसे कैसे आये हो पिय, ऐसी दुपहरी तपन में।
भवन बिराजो बिजना दुराऊं, स्रम झलकन सगरी देह मे॥
स्रम निवारिऐ, अरगजा धारिऐ, जिय तें टारिऐ और संदेह।
चतुर सिरोमनि याही तें कहियत "सूर" सुफल करो नेह॥

४. रथयात्रा—(आषाढ़ शु० २) इस उत्सव का प्रचलन संप्रदाय में गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने किया था। इसका प्रधान संबंध श्री कृष्ण का द्वारिका-लीला से है। फिर भी इस में ब्रज की बाल तथा किशोर भावनाओं को भी इस प्रकार स्थापित किया गया है-

बाल-भावना से—

देखो माई रथ बैठे हरि आजु।
आगें 'ब्रजजन सखा स्यामघन' सबै मनोहर साजु॥
हाटक कलसा, धुजा-पताका, छत्र-चँवर सिरताज।
चपल अस्व चालहिं अति चलिहैं, देखि पवन मन लाज॥
आषाढ सुदी दुतिया 'नक्षत्र पुष्य' अचल नंदसुत राज।
"सूरदास" हरषत ब्रजबासी, रह्यो घोष सिरताज॥

*किशोर भावना से —

देखो माई रथ बैठे गिरधारी।
छतरी अनुपम हाटक-जराय की, झूमक-लर मुक्तारी॥
गादी सुरंग ताफता सुंदर, [illegible]र बाज छवि न्यारी।
डोरी दिव्य पाट पचरंग की, कर गहे 'कुंज विहारी'॥
चपल अस्व वर चलत हंस गति, बुधि नहिं परति बिचारी।
लाल पाग सिर लाल छबिकर, जुही-माल गरें भारी॥
नीलमनी तन, कमल नैन कों सोहै पीत पट धारी।
बिहरत ब्रज-बीथिन वृंदावन, 'गोपीजन' मनुहारी॥
देखि-देखि फूले ब्रजबासी, सुख की रासि अपारी।
कुसुमावलि बरषत इंद्रादिक, "सूरदास" बलिहारी॥

द्वारिका लीला के भाव से—

वा पट पीत की फहरानि।
कर गहि चक्र चरन की धावनि, नहि बिसरत वह बानि।
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच-रज की लपटानि।
मानों सिंधु सैल तें निकस्यौ, महा मत्त गज जानि॥
'जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कानि'।
'सोई अब "सूर" सहाय हमारे निकट भए प्रभु आनि'॥

* मर्यादा के उल्लंघन को ही पुष्टि[illegible]र्य कहा गया है, इसलिए यहां पुष्ट पुरुषोत्तम का वर्णन है।

५. पवित्रा--(श्रा० शु० ११)यह नित्य लीला तथा वल्लभ-अवतार लीला का उत्सव है। श्रा० शु०११ को अर्धरात्रि को साक्षात पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी-गोविंद घाट पर श्री वल्लभाचार्य जी को ब्रह्मसंबंध का उपदेश दिया था¶। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के संबंध से उन पुरुषोत्तम को पवित्रा धराया था। तब से यह उत्सव प्रति वर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है।

सूरदास के निम्न लिखित पद में उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

पवित्रा पहेरन कौ दिन आयौ।
केसर कुमकुम रंग रस बागौ, फूँदना हार बनायौ॥
जै-जैकार होत वसुधा पर सुर-मुनि मंगल गायौ।
पहरि पवित्रा लिएं नंद-सुत "सूरदास" जस गायौ॥

६. जन्माष्टमी--(भाद्र० कृ० ८) यह कृष्णावतार लीला का उत्सव है। सूरदास ने अनेक पदों में अनेक प्रकार से इसका वर्णन किया है। इस विषय का एक पद यहाँ दिया जाता है---

आज गृह नंद-महिर कें बधाई।
प्रात समैं मोहन मुख निरखत, कोटि चंद छबि छाई॥
मिलि ब्रजनारी मंगल गावति, नंद-भवन में आई।
देति असीस जियौ जसुमति सुत, कोटि बरीस कन्हाई॥
नित्य आनंद बढत वृंदावन, उपमा कही न जाई।
"सूरदास" धन्य धन्य नँदरानी, देखत नैंन सिराई॥

७. राधाष्टमी--(भाद्र० शु० ८) यह राधिकावतार लीला का उत्सव है।

सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है--

आज वृषभान कें आनंद।
बदन प्रभा ऐसी लागत मानों प्रगटयौ पूरन चंद॥
एक जूथ बधावत गावत एक सुनावत हेल।
सुनि सब नारि बधाई आई अपुने-अपुने मेल॥

¶ श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ (सि० र०)

जो आवत सो करत न्यौछावरि, तन तोरत बलि जात।
परम भाग दंपति कहियत हैं, फूली अंग न समात॥
अपुने-अपुने मन कौ भायौ भयौ, कहत सब लोग।
"सूरदास" प्रगटी भुव ऊपर, भक्तन के हित जोग॥

८. दान--(भाद्र० शु० ११) यह नित्य लीला और कृष्णावतार लीला का उत्सव है। इस लीला के सूरदास के असंख्य पद मिलते हैं। उनमे से एक पद यहाँ दिया जाता है—

गढ़ तें ग्वालिनि उतरी हो सीस मही कौ माट।
आड़ौ कन्हैया ह्वै रह्यौ सोतौ रोकत ब्रजबधू बाट॥ मोहन जान दे॥टेक
कहाँ की हो तुम ग्वालिनी हो,कहा तिहारौ नाम।
बरसाने की ग्वालिनी सोतौ, चंद्रावलि मेरौ नाम॥ मोहन०
वृंदाबन की कुंज मे हो, अचरा पकरयौ दौरि।
नाम दान कौ लेत हो, लाल चाहत हो कछु औरि॥ मोहन०
मेरे संग की दूरि गई हो, तुम रोकी बन मांझ।
घर तौ दारुन सास है सोतौ, होन लगी है सांझ॥ मोहन०
तुम एकेले हम अकेली हो, बात नहीं कछु जोग।
तुम तौ चतुर प्रवीन हो, लाल कहा कहेंगे लोग॥ मोहन०
तुम ओढ़ी है चूनरी हो, हम पहरयौ है चीर
उमड़ घुमड़ आई बादरी अब कहा बरषावत नीर॥ मोहन०
लै मटुकी आगें धरी हो, परी है स्याम के पाँय।
मन भावै सो लीजिये, लाल बचै सो बेचन जाँय॥ मोहन०
प्रेम मगन भई ग्वालिनी हो,हरि कौ दरसन पाय।
मुख सों बचन न आवही, सो तौ रही ठगौरी लाय॥ मोहन०
सुख बाढ्यौ आनंद भयौ हो,रही स्याम-गुन गाय।
सुंदर सोभा देखिकैं "सूरदास" बलि जाय॥ मोहन जान दे॥

९. सांझी--(भाद्र शु० १५ से) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है।

सूरदास के एक पद में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है--

---

† स्वकीय भावना

सखियन संग राधिका खेलत, सुमनन बन मांह ।
सांझी पूजन कों आतुर ही, ठाड़े कदंब की छांह ॥
सखी भेष दै मोहन कों, लै चली आपुने गेह ।
पूछी कीरति, यह को सुंदरि ?, तब कह्यौ मेरी सनेह ॥
सांझी खेल बिदा करि सब कों, दोउ पौढ़े सेज मँझार ।
सगरी राति "सूर" के स्वामी, बसि सुख कियौ अपार ॥

१०. नवरात्रि देवी पूजन (आश्विन शु० १ से ९ तक) यह अवतार लीला का उत्सव है। सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

व्रत धरि देवी पूजी । जाके मन अभिलाष न दूजी ॥
कीजै नंद-पुत्र पति मेरे । पैहों जो अनुग्रह तेरे ॥

छंद—कर अनुग्रह वर दियौ जब बरस भर लों तप कियौ ।
त्रैलोक सुंदर पुरुष भूषन रूप गुन नाहिंन बियौ ॥
इत उबटि सोलह सिंगार सखियनि कुंवरि चौरी जहाँ बनी।
जा हित के व्रत नेम संयम सो घरी बिधिना ठनी ॥

मुकुट रचि मोर बनायौ । माथें धरि हरि वर आयौ ।
तन सांवल पीत दुकूले । देखत ही घन दामिनि भूले ॥

छंद—दामिनी घन कोटि वारों जब निहारों मुख छबि ।
कुंडल बिराजत गंड मंडल नहीं सोभा ससि रवि ॥
और कौन समान त्रिभुवन सकल गुन जा माँहि हैं ।
मानों मौर नाँचत, संग डोलत मुकुट की परछांहि हैं ॥

गोपी सब न्यौते आईं । मुरली धुनि पठै बुलाईं ।
जहाँ सब मिलि मंगल गाये । नव फूलन के मंडप छाये ॥

छंद—छाये जु फूलन कुंज-मंडप पुलिन में वेदी रची ।
बैठे जु स्यामा-स्याम वर त्रैलोक की सोभा सची ॥
उत कोकिला गन करें कुलाहल इत सबै ब्रज-नारियाँ ।
आईं जु न्यौतें दुहू दिस तें देत आनंद गारियाँ ॥

रास मंडल भुज जोरी । स्याम सांवरे श्री राधा गोरी ।
पानिग्रहन-विधि कीनीं तब मंडप भ्रम भाँवर दीनीं ॥

छंद—दीनीं जु भाँवर कुंज मंडप प्रीति गांठ हृदय परी ।
सरद निस पून्यौ बिमल ससि निकट वृंदा सुभ घरी ॥

गावें जु गीत पुनीत सखियन वेद-रुचि मंगल ध्वनी।
नंद सुत वृषभान-तनया रास में जोरी बनी॥
जहाँ मन्मथ सेन बराती। तहाँ द्रुम फूले नाना भाँती।
सुर बंदीजन यश गायें। तहाँ मघवा बाजित्र बजायें॥

छंद—बाजित्र बाजे सब्द नभ सुर पुष्प अंजलि बरष ही।
देव व्योम विमान बैठे जय सब्द करकें हरष ही॥
"सूरदास" हि भयौ आनंद पूजी मन की साधिका।
मदनमोहन लाल दूल्हे, दुलहनी श्रीराधिका॥

११. रास--(आश्विन शु० १५) यह नित्य और अवतार लीला का उत्सव है। सूरदास के पदों में इसका इस प्रकार वर्णन हुआ है—

हा हा हो हरि नृत्य करो।
जैसे कै मैं तुमहि रिझाऊं त्यों मेरो मन तुम हू हरो॥
तुम जैसे स्रम बाहु करत हो तैसे मैं हू डुलाऊंगी।
मैं स्रम देखि तिहारे उर कों भुज भरि कंठ लगाऊंगी॥
मैं हारी त्योंही तुम हारे चरन चाँपि स्रम मेटोंगी।
'सूर'स्याम ज्यों उछंग लेहु मोहि,त्योंहि हँसि मैं भेटोंगी॥

घोष-नागरी मंडल मध्य नाँचत गिरिधारी लाल,
लेत गति अनेक भाँति चरन पटकनी।
गिडगिडता गिडगिडता ताता तत तततत थेई थेई,
बीच बीच अधर मधुर मुरलिका मटकनी।
भुज सों भुज जोरि-जोरि लेत तान नव किशोर,
गावत श्रीराग मिलि ग्रीव लटकनी।
"सूरदास" प्रभु सुजान नंदनंदन कुंवर कान्ह,
मदनमोहन छबि निरखि काम सटकनी॥

१२. अन्नकूट--(का० शु० १) यह उत्सव श्रीकृष्ण की अवतार लीला का है। सूरदास ने इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है—

अपने अपने टोल कहत ब्रजबासियाँ॥ टेक॥
सरद कुहू निस जानि दीपमालिका जो आई।
गोपन मन आनंद फिरत उन मद अधिकाई॥

एपन थापे दीजिये घर-घर मंगल-चार।
सात बरस कौ सांवरौ हो खेलत नंद दुवार॥ कहत०
बैठ नंद-उपनंद बोलि वृषभान पठाये।
सुरपति पूजा जानि तहाँ चलि गोविंद आये॥
बारबार हा हा करें कहो बाबा यह बात।
घर घर गोरस संचिए कौन देव की जात॥ कहत०
कान्ह तुम्हारी कुसल जानि यह मंत्र उपेहैं।
खटरस व्यंजन साज भोग सुरपति कों देहैं॥
नंद कह्यौ चुमकार कैं जा दामोदर सोय।
बरस द्यौस कौ द्यौस है महा महोत्सव होय॥ कहत०
तब हँसि बोले लाल मंत्र वहोर्यौ फिर कीनों।
आदि पुरुष निज जानि रैन सुपनौ मोहि दीनो॥
सब देवन कौ देवता गिरि गोबर्धन राज।
ताहि भोग किनि दीजिए सुरपति कौ कहा काज॥ कहत०
बाढ़ै गोधन वृंद दूध दधि कौ कहा लेखो।
यह परचौ विद्यमान नयन अपने किन देखो।
तुम देखत बलि खायगौ मोहीं माँग्यौ फल देय।
गोप कुसल जो चाहिए तो गिरि गोबर्धन सेय॥ कहत०
गोपन कियौ बिचारि सबन मिलि सकट जो साजे।
बहु विधि कर पकवान चले जहाँ बाजत बाजे॥
एक बनही बन कों चले एक नंदी सुर भीर।
एकन पैंडो पावही फूले फिरत अहीर॥ कहत०
एक उबट ह्वै चले एक वनहिं बन छाये।
एक गावें गुन गोविंद प्रेम उमँगे न समाये॥
गोपन कौ सागर भयौ गिरि भयौ मंदरा चार।
रत्न भई सब गोपिका कान्ह विलोवन हार॥ कहत०
व्रज चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।
तंबे चौवन कोस जहाँ व्रज-बास बसेरा॥
सबहिन के मन सांवरौ देखियत सबन मंझार।
कौतुक भूले देवता आये लोक बिसार॥ कहत०

लीने विप्र बुलाय यज्ञ आरंभन कीनों।
सुरपति पूजा मेटि राज गोवर्धन दीनों॥
देव दिवारी स्यामही सब मिलि पूजन जाय।
नंद प्रतीत जो चाहिए तौ तुम देखत बलि-खाय॥ कहत०

प्रथमहिं दूध न्हवाय, बहुरि गंगाजल डार्यौ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ बिचार्यौ॥
जैसे हैं गिरिराज जू, तैसे अन्न कौ कोट।
मगन भए पूजा करें, नर-नारी बड़-छोट॥ कहत०

सहस्र भुजा उर धरे, करे भोजन अधिकाई।
नख-सिख लौं अनुहार, मानों दूसरौ कन्हाई॥
ललिता राधा सों कहे, तेरे हूजै समाय।
गहे अंगुरिया नंद की, सो ढोटा पूजा खाय॥ कहत०

पीत 'दुमालौ' बन्यौ, कंठ मोतिन की माला।
सुंदर सुभग सरीर, झलमले नयन बिसाला॥
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम।
जैसौ परवत भात कौ, ढिंग भैया बलराम॥ कहत०

व्यंजन बहुत बनाय, कहां लौं नाम बखानों।
भयौ भात कौ कोट, ओट गिरिराज छिपानों॥
बरा बिराजै भात पै, चंदा पटतर सोय।
यज्ञ-पुरुष भोजन करे, सो सब देवन सुख होय॥ कहत०

जैसी कंचनपुरी दिव्य रतनन सों छाई।
बलि दीनी है प्रात, छांह चलि पूरब आई॥
चंद्रावला बृषभान की, रही बिलोवत हार।
ताकी बलि उन देवता, लीनीं भुजा पसार॥ कहत०

सब सामग्री अरपि, गोप-गोपिन कर जोरे।
अगनित कीने स्वाद, दास बरने कहा थोरे॥
यह बिधि पूजा कीजिए, कह्यौ सबन समझाय।
स्याम कह्यौ "सूरदास" सों मेरी लीला सरस बनाय। कहत०

१३-गोपाष्टमी (का० शु० ८) यह उत्सव कृष्ण की अवतार-लीला का है-

आज हौं गाय चरावन जैहों।
वृंदावन के भांति-भांति फल अपने कर मैं खैहों ॥
ऐसी अबहिं कहौ जिनि बारे! देखो अपनी भाँति।
तनक तनक पां चलि हौ कैसे, आवत ह्वै है राति ॥
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत है सांझ।
तुम्हरौ बदन कमल कुम्हलैहै रेंगत घामहिं मांझ ॥
तेरी सौं मोहि घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
"सूरदास" प्रभु कह्यौ न मानत, परे आपनी टेक ॥

१४-व्रतचर्या—(मार्गशीर्ष कृ० ११ से) यह उत्सव कृष्ण की अवतार लीला का है—

ब्रज-वनिता रवि कौं कर जोरैं।
सीत भीत नहिं करति छहौं ऋतु, त्रिविध काल यमुना जल खोरैं ॥
गौरी-पति पूजति, तप साधति, करति रहति नित नेम।
भोग रहित निसि जागि चतुर्दसि यसुमति सुत के प्रेम ॥
हम कौं देहु कृष्ण पति ईश्वर, और नहीं मन आन।
मनसा-वाचा-कर्मणा हमरे, "सूर" स्याम कौ ध्यान ॥

१८ ऋतुओं के उत्सव—भिन्न भिन्न ऋतुओं के उत्सवों का गायन सूरदास ने अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१-डोल—(फा० शु० १) यह वसंत ऋतु का उत्सव है—

गोकुल नाथ बिराजत डोल।
संग लिए वृषभान नंदिनी पहरे नील निचोल ॥
कंचन खचित लाल-मनि-मोती, हीरा जटित अमोल।
झुलवत यूथ मिलि ब्रज सुंदरी, हरषत करत कलोल ॥
खेलत हँसत परस्पर गावत, हो-हो बोलत बोल।
"सूरदास" स्वामी पिय प्यारी, झूलत झुलवत झोल ॥

२-फूल मंडली—यह ग्रीष्म ऋतु का उत्सव है--

फूलन कौ महल, फूलन की सिज्या, फूले कुंज बिहारी, फूली राधा प्यारी।
फूले वे दंपति नवल मगन फूले, करैं केलि न्यारी-न्यारी।

फूली लता-बेलि, बिबिध सुमन गन फूले, आनन दोऊ हैं सुखकारी।
"सूरदास" प्रभु प्यारी पै वारत, फूले फूल चंपक-बेलि निवारी ॥

३-हिंडोरा—(श्रा० कृ० १ से) यह वर्षा ऋतु का उत्सव है—

झूलें माई गिरिधर सुरंग हिंडोरें।

रतन जटित पटुली पर बैठे, नागर नंद किसोरे ॥
पीत बसन घनस्याम मनोहर, सारी सुरंग ही बोरें।
अंसन बाहु परस्पर जोरें, मंद हसन पिय ओरें ॥
गोप-नारि मिलि गावें चहुँ दिस, झुलवति थोरे-थोरे।
"सूर" प्रभु गिरिधरन लाल छवि ब्रज जुवतिन चित्त चोरे ॥

४-रास—(आश्विन शु० १५) यह शरद् ऋतु का उत्सव है।

(१) रिझवति पिय ही बारंबार।

निरखि नयन लजात पिय के, नहीं सोभा पार ॥
चाल स्वल्प, गज-हंस मोहत, कोक-कला प्रवीन।
हँसि परस्पर तान गावत, करत पिय आधीन ॥
सुनत बन-मृग होत व्याकुल, रहत चित्रित आय।
"सूर"प्रभुबस किए नागर सहा जानि सिरोमन राय ॥

(२) रीझे परसपर नर-नारि।

कंठ भुज भुज धरे दोऊ, सकत नहि निरवारि ॥
गौर-स्याम कपोल सोभा, अधर अमृत धार।
परसपर दोउ पीय-प्यारी, रीझि लेत उगार ॥
'प्रान एक द्वै देह कीनी, भक्ति-प्रीति प्रकास।
"सूर" स्वामी-स्वामिनी मिलि, करत रंग विलास ॥

जागरण व्याह—(कार्तिक शु०११) यह हेमंत ऋतु का उत्सव है—

अहो मेरी प्रानपियारी। भोर ही खेलन कहाँ सिधारी ॥
कुमकुम भाल तिलक किन कीनों। किन मृगमद कौ बेंदा दीनों ॥

बेंदा जू मृगमद दियौ मस्तक, निरखि ससि संसय परयौ।
सरद निसा कौ कला पूरन, मैन नृप कौ मद हरयौ ॥
बिहँसि के मुख कहति जननी, अलप बैनी किन गुही।
"सूर" के प्रभु मोहिबे को, रची मनमथ हौ तुही ॥

नंदमहरि की तरुनीय मोहैं । मेरौ बदन फिरि-फिर करि जोहैं ॥
खेलत डोलत ढिंग बैठारी । कछु मन में आनँद कियौ भारी ॥

आनंद मन में कियौ भारी, निरख सुत विह्वल भई ।
बाबाजू कौ नाम लै-लै, तोहि हँसि गारी दई ॥
पाटी जु पाग, सँवार भूषन, गोद में मेवा भरी ।
"सूर" के प्रभु निरखि मन में, बिधना सों बिनती करी ॥

सुनि यह बात कीरति मुसिकानी । मैं ब्रजरानी के जिय की जानी ॥
मेरी सुता है रूप की रासी । वेतौ कान्ह बनबासी उपासी ॥

कान्ह बनबासी उपासी, रंग-ढंग ये क्यों बनें ।
मेरे ढिंग तौ रत्न अमोलक, काँच कंचन क्यों सनें ॥
ललिता-विसाखा सों कह्यौ, तुम लली त्यजि कित हू गई ।
"सूर" के प्रभु भवन बाहिर जान दीजो मति कहीं ॥

दिन दस-पाँच अटक जब कीनीं । सुंदर स्याम दिखाई दीनी ॥
मुरझि परी तब सुधि न संवारे । प्यारी डसी भुजंगम कारे ॥

कारे भुजंगम डसी प्यारी, गारुड़ी हारे सबै ।
नंदनदन मंत्र बिन सखि, यह विष क्यों हू ना दबै ॥
मनुहार करि मोहन कों लाई, सकल विष देखत हनें ।
"सूर" के प्रभु जोरि अविचल, जीवो जुग-जुग दोउ जनें ॥

उठि बैठी तब बदन संभारे । कछु मोहन तन हँसत निहारे ।
सुर बैठी मन भयौ हुलासा । कीर्ति गई पति अपने जू पासा ॥

अपने जु पति पैं गई कीर्ति, प्रीत की रीति बिचार ही ।
मंत्र कीयौ ब्याह कौ सब सखी मंगल गावही ॥
वृंदा जु बन में रच्यौ स्वयंवर, पुष्प मंडप छाइयो ।
"सूर" के प्रभु स्याम दूल्हे, श्री राधिका वर पाइयो ॥

बिधिना विधि सब कीनीं । मंडप करिकैं भाँवर दीनीं ।
विविध कुसुम बरसाये । तहाँ मानिनी मंगल गाये ॥

गावें जु भामिनी मिलि कैं मंगल कहत कंकन छोरियो ।
नहीं होय यह गिरि उचकलेगो लाल हँसि मुख मोरियो ।
छोरयौ न छूटै डोरना यह, प्रीति-रीति ग्रंथी कही ।
"सूर" के प्रभु युवति-जन मिलि, गारी मन भामति दई ॥

६ होरी- (फाल्गुन शु० १५) यह शिशिर ऋतु का उत्सव है।

स्यामाजू होरी खेलन आई।

ललिता चंद्रभागा चंद्रावलि, सखी अनेक सुहाई॥
जब यह बात सुनी जसोदा जू, अरघ पाँमड़े दीने।
लाल भाँमती जोरी लखि, मन मांझ बधाई कीने॥
फूली-फूली फिरत सखी सब, पकरन मदन गोपालें।
फिरि-फिरि कहति रोहिनी अब जिन,भरो नंद के लालें॥
यह सुनि ललिता और चंद्रावलि, बलदाऊ गहि लीने।
मृगमद-आड़ सँवार मांड मुख, भृ पर बिंदा दीने॥
भीजी नाना बिधि के रंगन, बोलत हो-हो होरी।
अब गहि लेहु चलो मोहन कों,यों दुर कहति किसोरी॥
चली दौरि चहूँ दिस ते सुंदरि,चढि गईं अटा अटारी।
बैठे हुते जहाँ मनमोहन, कर लिए चित्रसारी॥
पकरयौ प्यारौ प्यारी छल करि, भेष सखी कौ कीनों।
आंख आँजि केसर मुख मांड्यौ, मृगमद बेंदा दीनों॥
एक सखी कुसुमन सों कबरी, नाना बिधि जु सँवारी।
सिंदुर मांग भरी ता ऊपर, मोतिन की लर न्यारी॥
नीलांबर पहरायौ रीझि, पहराई मनि-माला।
स्यामा याकौ नाम धर्यौ है,यों कहति मुदित ब्रजबाला॥
सब सहचरि मिलि लाई ताकों, नंदरानी के पास
यह सुंदरि हम लाई हैं जू, घनस्याम मिलन की आस॥
देखि रूप ललचाय जसोदा, करति बहुत मनुहारी।
बार-बार न्यौछावरि करिकें, पीवत है जलवारी॥
जब यह भाव लख्यौ सबही मिलि,सखी भेष यह कीनों।
नाना बिधि पट वारि और मन मान्यौ फगुवा दीनों॥
भए दुहुन के भाये मन के, पिय-प्यारी रस भीने।
जे-जे हुती कामना मन में, जैसी बिधि सुख दीने॥
छाय रह्यौ अनुराग परस्पर, कहा बरनें, कवि कौन।
देव बिमानन फूलन बरषत, सोभित है नंद-भौन॥
चतुर सखा श्रीदामा तब एक, भेष सखी कौ लायौ।
सखी यूथ में आय मिल्यौ, यह भेद न काहू पायौ॥

मिली दौरि चंद्रावलि तासों भट्टू-भट्टू कहि टेरी।
आलिंगन दै ढिग बैठारी, मुदित बदन तन हेरी॥
जानि गई सब भेष कपट कौ, सकुच रही मन ही में।
बिहँसि मिली प्यारी प्रीतम सों, ज्यों दामिनि घन ही में॥
स्यामा-स्याम दोऊ सुख बिलसत, प्रेम बुद्धि अनुमाने।
"सूरदास" ब्रजबासिन के बस, और कछू नहीं जाने॥

लोक-त्यौहार—सूरदास ने लोक-त्यौहारों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. रक्षाबंधन—(श्रावण शु० १५) यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों का त्यौहार माना जाता है।

राखी बंधावत मगन भए।
दछिना बहुत द्विजन कों दीनीं, गोप हँकार लए॥
कुंज-निकुंज श्रीवृंदावन के, बिहरत अनंत ठए।
नाँचत, गावत, करत कुलाहल, उपजत मोद नए॥
यह कौतिक देखत सुर-नर-मुनि, बरषत कुसुम छए।
"सूरदास" राधा-ललितादिक, देखत ओट दए॥

२. दशहरा—(आश्विन शु १०) यह मुख्य रूप से क्षत्रियों का त्यौहार माना जाता है।

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु पार।
सिव के सीस लागे, कमठ पीठ पर धसे गिरिवर सबै तासु भार।
सोच लाग्यौ करन कहाँयों जानकी, कोउ या ठौर नहिं मोहि चिन्हार।
लंक गढ मांहि आकास मारग गयौ, चहुं दिस बज्र लागे किंवार॥
पौरि सब देखि, असोक बन में गयौ, निरखि सीता छिप्यौ वृक्ष-डार।
"सूर" तहाँ आकास-बानी भई, तहाँ है इहाँ जानकी करि जुहार॥

३. दीपावली—(कार्तिक कृ० १५) यह मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना जाता है।

आज दिपत दिव्य दीप-मालिका।
मानों कोटि रवि, कोटि चंद छबि बिमल भई निसि कालिका॥
गज-मोतिन के चौक पुराये, बिच-बिच बज्र प्रवालिका।
गोकुल सकल चित्र-मनि मंडित, सोभित झाल झमालिका॥
पहिरि सिंगार बनी राधा जू, संग लिएँ ब्रज-बालिका।

झलमल दीप समीप, सोंज भर कर लिएँ कंचन-थालिका ॥
पाये निकट मदन मोहन पिय, मानों कमल अलि-मालिका ।
आपुन हँसत, हँसावत ग्वालन, पटक-पटक दै तालिका ॥
नंद भवन आनंद बढ्यौ अति, देखत परम रसालिका ।
" सूरदास " कुसुमन सुर बरसत, कर अंजुलि पूरि मालिका ॥

४ हटरी—

सुरभी कान्ह जगाय खरिक, बल-मोहन बैठे राजत हटरी ।
पिस्ता, दाख, बदाम, छुहारे, खुरमा, खाजा, गुंजा, मठरी ॥
घर-घर तें नर-नारि मुदित मन, गोपी-ग्वाल जुरे बहु ठठरी ।
टेर-टेर लै देत सबन कों, लै-लै नाम बुलाय निकट री ॥
देति असीस सकल गोपीजन, यसोमति देति हरपि बहु पट री ।
"सूर" रसिक गिरिधर चिरजीवो, नंद-महरि कौ नागर नट री ॥

होली—(फाल्गुन शु० १५) यह मुख्य रूप से शूद्रों का त्योहार माना जाता है ।

सब दिन तुम ब्रज में रहो हरि, होरी है, कबहूँ न मथुरा जाउ ।
पर्व करो घर आपने हरि, होरी है, कुसल केलि निबाहउ ॥ हरि०

परवा पिय चलिए नहीं हरि० । सब सुख कौ फल फाग । अहो०
प्रगट करो अब आपुनौ हरि० । अंतर कौ अनुराग ॥ अहो०
मानों द्विज दिन सोधि के हरि० । भूपति कीयौ काम । अहो०
ससि रेखा सिर तिलक दै हरि० । सब कोउ करै प्रनाम ॥ अहो०
कनक सिंहासन बैठि है हरि० । युवतिन के उर आन । अहो०
अलक चमर अंचल ध्वजा हरि० । घूंघट आन पतान ॥ अहो०
फागुन मदन महीपति हरि० । इहि विधि करि हैरान । अहो०
'पंद्रह तिथि भर' करन हौं हरि० । सादर क्रिया समाज ॥ अहो०
तीज तिहूँ पुर प्रगट्यौ हरि० । अपनी आन नरेस । अहो०
सुन मग-मग डफ दुंदुभी हरि० । सोई करिए सब देस ॥ अहो०
चौथ चहूँ दिस चालिए हरि० । यह अपनी इक रीति । अहो०
मेरे गुन कहे निर्लज्ज ह्वै हरि० । छाँड़ि सकुच कुल नीति ॥अहो०
पांचैं परमित परिहरो हरि० । चलहु सकल इक चाल । अहो०
नारि-पुरुष एकत्र करो हरि० । बचन प्रीति प्रतिपाल ॥ अहो०

छट्ठ छै राग छै रागिनी हरि० । ताल तान बंधान । अहो०
चटुल चरित रतिनाथ के हरि० । सिखयो अति अभिधान ॥ अहो०
सातैं सुन सब सज चले हरि० । राजा की रुचि जान । अहो०
करत क्रिया तैसी सबै हरि० । आयुप माथे मान ॥ अहो०
आठैं डर उन मान कैं हरि० । सबन मतो मत्यौ एक । अहो०
नृप जु कहै सोई कीजिए हरि० । क्यों राखिए विवेक ॥ अहो०
नवमीं नवमन साजि कैं हरि० । कर सुगंध उपहार । अहो०
मानों चले मिलि भेटकैं हरि० । मनसिज भवन जुहार ॥ अहो०
दसैं दसों दिसि सोधि कैं हरि० । बोले राजा राग । अहो०
जग जीत्यौ बल आपुने हरि० । ज्ञान वैराग्य छुड़ाय ॥ अहो०
सुन आई एकादसी हरि० । बोले सब सिर नाय । अहो०
ढोल भेरि डफ बांसुरी हरि० । पटह निसान बजाय ॥ अहो०
देख भले भट्ट आपने हरि० । द्वादशी सौंस विचारि । अहो०
काज करौ रुचि आपने हरि० । ह्वै निसंक नर-नारि ॥ अहो०
रथ रावक पावक सजे हरि० । खरन भये असवार । अहो०
धूर धातु घट रंग भरे हरि० । कसम यंत्र हथियार ॥ अहो०
जहाँ तहाँ सेना चली हरि० । मुक्त कच्छ सिर केस । अहो०
आप आप सूझै नहीं हरि० । राजा रंक आवेस ॥ अहो०
जहाँ सुनत तपी संयमी हरि० । धर्म धीर आचार । अहो०
छिरकें जाय निसंक ह्वै हरि० । तोरे पकरि किवार ॥ अहो०
जे कबहू देखी नहीं हरि० । कबहू सुनी नहिं कान । अहो०
तिन कुल-बधू नागीन के हरि० । लागे पुरुष पगान ॥ अहो०
धाय धरे बल कुल-बधू हरि० । पर-पुरुष नहीं पहचान । अहो०
मात पिता पति बंधु की हरि० । छूटि गई सब कान ॥ अहो०
भस्म भरें अंजन करें हरि० । छिरकत चंदन वार । अहो०
मर्यादा राखें नहीं हरि० । कटि पट लेहिं उतार ॥ अहो०
तेरस चौदस मास में हरि० । जग जीत्यौ डर डार । अहो०
सठ पंडित वेस्या बधू हरि० । सबै भए इकसार ॥ अहो०
पून्यौ प्रगट प्रताप ते हरि० । दुरे मिले पाँ लाग । अहो०
जहाँ तहाँ होरी लगी हरि० । मानों मवासिन आग ॥ अहो०
सब नाँचें, गावें सबै हरि० । सबहिं उड़ावें छार । अहो०
साधु-असाधुन पेख ही हरि० । बोलें बचन बिकार ॥ अहो०

अति अतीति मति देखिकें हरि० । परिवा प्रगटी आन । अहो०
विमल बसन ज्यों स्याम कों हरि० । मर्यादा की कान ॥ अहो०
आवत ही विनती करी हरि० । उठि जोर हँसि हाथ । अहो०
वर्न धर्म सब राखिए हरि० । कृपा काहू रतिनाथ ॥ अहो०
आज्ञा दई रतिनाथ ने हरि० । नृप समुझो मन माह । अहो०
जाय धर्म अपुने चलो हरि० । बसो हमारी वांह ॥ अहो०
"सूर" कहाँ लगि बरनिए हरि० । मनसिज के गुन ग्राम । अहो०
सुनो स्याम यह मास में हरि० । कियो जु कारन काम ॥ अहो०
कान्ह कृपा करि घर रहे हरि० । बरजे मथुरा जान । अहो०
सरस रसिक मनि राधिका हरि० । कही कृष्ण सों बात ॥ अहो०

वैदिक पर्व—सूरदास ने वैदिक पर्वों का वर्णन अपने काव्य में इस प्रकार किया है—

१. **मकर संक्रांति**- (गेंद के भाव का)

ग्वालिन तैं मेरी गेंद चुराई ।
खेलत आन परी पलका बिच, अँगिया मांझ दुराई ॥
भुज पकरत मेरी अँगिया टटोवत, छुवत छतियाँ पराई ।
"सूरदास" मोहि यही अचंभो, एक गई द्वै पाई ॥

२. **ज्येष्ठाभिषेक--स्नान यात्रा** – (जलविहार के भाव का)

यमुना जल गिरिधर करत विहार ।
आसपास युवती मिलि छिरकति हँसति, कमल मुख चारु ॥
काहू की कंचुकी बंद टूटे, काहू के टूटे हार ॥
काहू के बसन पलटे मनमोहन, काहू अंग न संवार ॥
काहू की खूभी, काहू की नकबेसर, काहू के बिथुरे बार ।
"सूरदास" प्रभु कहाँ लों बरनौं, लीला अगम अपार ॥

अन्य अवतारों की जयंतियाँ—भगवान् श्री कृष्ण के मुख्य २४ अवतार माने गये हैं । इनमें भक्तिमार्ग से संबंधित केवल चार अवतार प्रधान हैं—राम, नृसिंह वामन और कृष्ण । इन चारों ने भक्तों के उद्धार के कई पुष्टि-कार्य किये हैं; इसलिए इन चारों की जयंतियाँ पुष्टि-मार्ग में भी मानी जाती हैं ।

सूरदास ने इन जयंतियों का वर्णन अपने पदों में इस प्रकार किया है—

१. राम जयंती—(चैत्र शु० ६)

आज दसरथ के आनंद भीर।
आए भुव-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम सरीर॥
फूले फिरत अयोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनंद नैननि नीर॥
त्रिदश नृपति ऋषि ब्यौम विमाननि, देखत रहे न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै हरी सबन की पीर॥
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल "सूर" सब याचक, जे याचे रघुबीर॥

२. नृसिंह जयंती—(वैशाख शु० १४)

तौलों हौं बैकुंठ न जैहों।
सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जौलौं तो सिर छत्र न दैहों॥
मन कर्म बचन मान जिय अपने, जहीं जहीं जानें तहीं तहीं लैहों।
निर्गुन सगुन हरि सब देखे, तो सौ भक्त मैं कबहू न पैहों॥
मो देखत मेरो दास दुखित भयौ, यह कलंक अब ही जु चुकैहों।
हृदय कठिन पाषान है मेरो, अब ही दीन-दयाल कहैहों॥
गहि तन हिरनकस्यपु को चीरों, उदर फारि नख रुधिर बहैहों।
यह सुनि बात तात अब "सूरज", यह कृत को फल तुरत चखैहों॥

३. वामन जयंती--

द्वारें ठाढ़े हैं द्विज बामन।
सुनत बचन हिरदै सुख उपज्यौ, भयौ कहाँतें आवन॥
चरन धोइ चरनोदक लीनों, कह्यो विप्र मन भावन।
तीन पैंड़ धरती हौं मांगों, परम कुटी एक छावन॥
अहो विप्र! कहा तुम मांग्यौ, बहुत रत्न देहुं गाँवन।
"सूर" सुबल हरि सर्वस्व लीनों, दियौ पीठ पग पावन॥

४. कृष्ण जयंती—(भाद्रपद कृ० ८)

देखो अद्भुत अविगत की गति कैसौ रूप धरयौ है।
तीन लोक जाके उदर बसत हैं, सो सूप के कोन परयौ है॥

नारदादि-ब्रह्मादिक सब जाकों, सकल विश्व सब माँधे ॥
ताकों नार छेदन ब्रज-जुवती, बाँटि तगा मों बाँधे ॥
जा मुख को सनकादिक लोचन, सकल चातुरी ठानैं ।
सोइ मुख निरखति महरि जसोदा, दूध लार लपटानैं ॥
जिन स्रवनन सुनि गज की आपदा, गरुड़ासन बिसराए ।
तिन स्रवनन के निकट जसोदा गाए अरु हुलराए ॥
जिन भुजन प्रहलाद उबार्‌यो, हिरनाकुस उर फारे ।
तेई भुज पकरि कहति ब्रज गोपी, नाँचो नेंक पियारे ॥
अखिल लोक जाकी आस करत हैं, सो माखन देखि अरे हैं ।
सोई अद्भुत गिरिवरहु तें भारे, पलना मांझ परे हैं ॥
सुर-नर-मुनि जाको ध्यान धरत हैं, संभु समाधि न टारी ।
सोई प्रभु "सूरदास" को ठाकुर, गोकुल गोप बिहारी ॥

सेवा के विविध अंग – पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रधान अंग तीन हैं—भोग, राग और शृंगार । प्रत्येक मनुष्य का जीवन इन तीन विषयों से सदा-सर्वदा येन केन प्रकारेण संबंधित रहता ही है, इसलिए श्रीवल्लभाचार्य जी ने इन तीनों विषयों को भगवान की सेवा में लगा कर इनको भी भगवद्रूप कर दिया है । श्रीकृष्ण से संबंधित इन विषयों के कारण प्रत्येक व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी जीवनमुक्त हो सकता है । श्रीमद्भागवत में कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौविदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ (१०-२९-१५)

अर्थात् —काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृद्भाव इनमें से कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय, तो वह लौकिक रूप छोड़ कर ईश्वर मय होजाता है । इसी आधार पर आचार्य जी ने काम स्वरूप उक्त भोग, राग और शृंगार को श्री कृष्ण की सेवा में लगाकर उन्हें इस प्रकार से भगवद्रूप कर दिया है । यहाँ पर इन तीनों का कुछ परिचय दिया जाता है—

१. भोग—खान-पानादि के उत्तमोत्तम पदार्थों को सुंदर प्रकार और शुद्ध रूप से तैयार कर बाल-किशोर भावनानुसार इन्हें विधि पूर्वक श्रीकृष्ण को समर्पित करना 'भोग' कहलता है । समर्पित होजाने के अनंतर इसे 'प्रसाद'

कहते हैं। इसमें भक्त अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। इस प्रकार के निर्वाह मात्र से वह सहज में इस दुर्जय माया को भी पार कर जाता है। उद्धव जी श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कंध में श्रीकृष्ण के प्रति कहते हैं कि—

"उच्छिष्ट भोजिनोदासास्तव मायां जयेमहि।"

इस आधार पर आचार्यजी ने सेवा में भोग को प्राधान्य दिया है।

सूरदास के पद में भोग की विविध सामग्रियों के नाम तथा उनकी विधि इस प्रकार उपलब्ध होती है—

भोजन भयौ भाँवते मोहन। तातो ही जेंय जाहुगे गोहन॥
खीर खांड़ खीचरी सँवारी। मधुर महेरि गोपन कों प्यारी॥
'रायभोग' लीनों भात पसाय। मूंग ढरहरी हींगु लगाय॥
सद माखन तुलसी दै छायौ। घृत सुवास कचौरिन नायौ॥
पापर बरी अचार परम सुचि। अद्रक अरु निबुआनि ह्वै है रुचि॥
सूरन करि तरि सरिस तोरई। सेम सांगरी छमकि भोरई॥
भरता भटा खटाई दीनी। भाजी भली भाँति दस दीनी॥
साग चना सरसा चौराई। सोवा अरु सरसों सरसाई॥
बथुवा भली भाँति रचि राँध्यो। हींग लगाय ल्याय दधि सोंध्यो॥
पोई परवर साग फरी चनि। टेंटी ढेडस छौंकि लए पुनि॥
कंदुरी और कंकोरा कोरे। कचरी चारि चचेंड़ा सारे॥
बने बनाय करेला कीने। लोंन लगाय तुरत तरि लीने॥
फूले फूल सहेंजना छौंके। मन रुचि होय नाज के औंके॥
फूल करील कली पाकरि नम। फरी अगस्त करी अमृत सम॥
अरु यह आमली दई खटाई। जेंवत कटुरस जात लटाई॥
पैठा बहुत प्रकारन कीने। तिनतो सबै स्वाद हरि लीने॥
खीरा रामतुरैया तामें। अरु बिन रुचि अंकुर जिय जामें॥
सुंदर रूप रतालू रानो। तरि है लीनो अबही तानो॥
ककरी,ककरा अरु कचनारयौ। सरस निमोननि स्वाद सँवारयौ॥
केइक भाँति केरा करि लीनो। दै करि उब हरदी रंगभीनो॥
बरी बरिल अरु बरा बहुत बिधि। खारे खाटे मीठे पय निधि॥
पानी नारायतौ पकौरी। डभकौरी मुगछी सुठि सौरी॥
अमृत इंदरह रहे रस सागर। बेसन सालम अधिकौ नागर॥

खाटी कढ़ी विचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि आई॥
रोटी रुचिर कनिक बेसन करी। अजवाइन सैंधो मिलि घी भरी॥
अब ही अँगाकरी तुरत बनाई। जे भजि-भजि ग्वालन सँग खाई॥
मांडो मांड़ दूनेरे चारी। बहु घृत पाइ आपहीं उपारी॥
पूरी सपूरि कचौरी कोरी। सदल सु उज्ज्वल सुंदर सोरी॥
लुचई ललित लापसी सोहै। स्वाद सुवास सहज मन मोहै॥
मालपुआ माखन मथि कीने। ग्रह ग्रथित रचि सासर लीने॥
लावन लाडू लागत नीके। सेव सुहारी घेवर घी के॥
गूझा गूंदे गाल मसूरी। मेवा मिले कपूरन पूरी॥
ससि सम सुंदर सजल इंदरसौ। उपर कनी अजनु जनु बरसौ॥
बहुत जलेब-जलेबी बोरी। नाहिन घटत सुधा सौं थोरी॥
देखत हरषत होत हैं सबी। मनहुँ वृंद वृंदा उपजे अमी।
फेनी मिली घृरि पय संगा। मिश्री मिश्रित भई एक रंगा॥
सजौ दही अधिक सुखदाई। ता ऊपर पुनि मधुर मलाई॥
खाटा खांड़ औंटि हूँ राख्यौ। सोहै मधुर मीठो रस चाख्यौ॥
छाछ छबीली छबि धुंगारी। झर है उठत झार की न्यारी॥
इतने यतन यसोदा कीने। तब मोहन बालक सँग लीने॥
बैठे आय हँसत दोऊ भैया। प्रेम मुदित परसति है मैया॥
थार कटोरा जटित रतन के। भरि सब सालन विविध यतन के॥
पहिले पनवारो परुसायौ। तब आपुन कर कौर उठायौ॥
जेंवत रुचि अधिको अधिकैया। भोजन बहुत बिसरत नहीं गैया॥
सीतल जल कपूर रस रच्यौ। सो मोहन निज कर रुचि अचयौ॥
महरि मुदित मन लाड़ लड़ावै। ये सुख कहाँ देवकी पावै॥
धरि तष्टि गडुवा जल लाई। भर्यौ चुरू खरिका लै आई॥
पीरे पान पुराने बीरा। खात भई दुति दाँतन हीरा॥
मृग मद कन कपूर कर लीनो। बाँटि बाँटि ग्वालन कों दीनो॥
चंदन और अरगजा आन्यौ। आपुने कर बल के अंग बान्यौ॥
ता पाछे आपुन हू लायौ। उबर्यौ बहुत सखन पुनि पायौ॥
"सूरदास" द्यौ गिरिधारी। बालि दई हँसि जूठन थारी॥

२. राग — यह कीर्तन-भक्ति का मुख्य अंग है। भगवान् का कीर्तन राग में करने से मन की शीघ्र एकाग्रता होती है, इसलिए यह निरोध का साधक

है। इससे जो सुख मिलता है, वह जप, तप, तीर्थ आदि से भी प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य जी ने निरोध के उद्देश्य वाली पुष्टिमार्गीय सेवा की कीर्तन-प्रणाली में राग का प्राधान्य रखा है। नाना प्रकार के वाद्य-यंत्रों द्वारा विविध रागों में श्री कृष्ण का गुणानुवाद गाना ही कीर्तन कहलाता है। सूरदास ने कीर्तन की महिमा को इस पद में इस प्रकार गाया है—

जो सुख होत गोपालहिं गाये।
सो नहिं होत जप-तप-व्रत संयम, कोटिक तीरथ न्हाये॥
दिये लेत नहीं चार पदारथ, चरन कमल चित लाये।
तीन लोक तृन सम करि लेखत, नंदनंदन उर आये॥
बंसीबट वृंदावन यमुना, तजि बैकुंठ को जाये।
"सूरदास" हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि आये॥

सूरदास ने प्रायः प्रत्येक राग में हरि-यश वर्णन किया है। उन्होंने कीर्तन में विविध शैलियों और छंदों का भी उपयोग किया है। 'सूरसारावली' में निम्नलिखित रागों के नाम मिलते हैं—

ललिता ललित[1] बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पंचम[2], षट[3], मालकोस[4] रसभीने॥
सुर हिंडोल[5], मेघमालव[6] पुनि, सारंग[7], सुर नट[8] जान।
सुर सांवन[9], भूपाली[10], ईमन[11] करत कान्हरौ[12] गान॥
ऊंचे अडाने[13] के सुर सुनियत, निपट नायकी[14] लीन।
करत बिहागरे[15]*, मधुर केदारौ[16], सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ[17], गौड मलार[18] सोहावन, भैरव[19] ललित[20] बजायौ।
मधुर विभास[21], सुनत बेलावल[22]‡ दंपति अति सुख पायौ॥
देवगिरी[23], देशाक[24], देव[25]†, पुनि गौरी[26], श्री[27] सुखवास।
जैतश्री[28] अरु पुर्वी[29], टोडी[30], आसावरी[31] सुखरास॥
रामकली[32], गुनकली[33], केतकी[34] सुर सुघराई[35] गाये।
जैजैवंती[36], जगत मोहनी, सुर सों बीन बजाये॥
सूहा[37] सरस, मिलत प्रीतम, सुखसिंधु वीर-रस मान्यौ।
जान प्रभात प्रभाती[38] गायौ, भोर भयौ दोउ जान्यौ॥

---

* बिहाग ‡ बिलावल † देवगंधार।

३. शृंगार— श्री वल्लभाचार्यजी ने सेवा में शृंगार को भी स्थान दिया है। विविध अलंकारों से भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप को सुंदर प्रकार से अलंकृत करने से चित्त का आकर्षण होता है। इससे उस स्वरूप में चित्त निरुद्ध हो जाता है। आचार्यजी कहते हैं—

श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः।
यथा सुंदरतां याति वस्त्राभरणैरपि।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम तथा स्थान पुरःसरम्॥ (निबंध)

अर्थात्—यथालब्ध द्रव्य से उपचारों द्वारा श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। वस्त्रों और आभरणों से भी जिस प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूप का सुंदर दर्शन हो उस प्रकार अंगों के स्थान पुरःसर अलंकारादि शृंगार सप्रेम करना चाहिए।

बाल भाव और किशोर भाव को प्रकट करने के लिए संप्रदाय में विविध शृंगार की व्यवस्था की गयी है। इनमें मुख्य आठ हैं, जिनके नाम ये हैं—

१ मुकुट, २ सेहरा, ३ टिपारा, ४ कुल्हे ५ पाग, ६ दुमाला, ७ फेंटा और ८ पगा (ग्वालापगा)। ये आठ शृंगार भगवान के श्रीमस्तक के हैं।

इन आठ शृंगारों के अंतर्गत क्रीट, खूंप, चंद्रिका, तुर्रा, कतरा आदि और भी शृंगार श्रीमस्तक पर धराये जाते हैं। इसी प्रकार भगवान के कंठ, हस्त, कटि, चरण और मुख आदि के भी शृंगार हैं, जिनके नाम ये हैं—

कंठ के—कंठश्री, दुलरी, तिलरी, हमेल, हाँस, बघनखा, पचलरा हार, सतलरा हार, नौसर हार, चौकी, पदक आदि।

हस्त के—बाजू, पहोंची, कंकन, मुद्रिका, हस्त फूल आदि।

कटि के—क्षुद्र घंटिका, कटिपेच आदि।

चरण के—पायल, नूपुर, जेहर, बिछिया, पग पान, अनवट आदि।

मुख के—नकबेसर (नासिका में) चिबुक (ठोड़ी पर) मकराकृत आदि कुंडल, ताटंक, सासफूल आदि।

वस्त्रों के नाम—आड़बंद, परदनी, मल्लकाछ, काछनी, पीतांबर, तनिया, पिछोरा, चाकदार, घेरदार, खुलेबंद, चोली आदि।

सूरदास ने शृंगार संबंधी अनेक पदों की रचना की है। इनमें से कुछ पद यहाँ पर दिये जाते हैं—

१. मुकुट का—

(१) मोर-मुकुट कटि काछनी, जननी पहरावै।
स्याम अंग भूषन सजे, बिन्दुका जु बनावै॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर बेनु गहावै।
मुसकान में मन हरि लियौ, सिसुताई जनावै॥
ब्रज-बनिता आई तहाँ, दरसन दरसावै।
भोग अरु बीरा दिए, सुख "सूर" बढ़ावै॥

(२) मोर-मुकुट मकराकृत कुंडल, नैन बिसाल कमल तें आछे।
मुरली अधर धरें सोभित हैं, बनमाला पीतांबर काछे॥

(बाट)

(३) सुंदर बदन देख्यौ आज।
कीट-मुकुट सुहावनौ, मन भावनौ ब्रजराज॥
लियौ मन आकर्ष, मुरली गहि अधर पर गाज।
पलक ओट न चाहि चित,लखि महा मनोहर साज॥
गोपीजन तन-प्रान वारति, रह्यो मनमथ लाज।
"सूर"सुत यह नंदकौ,श्री बल्लभ-कुल† सिरताज॥

२. सेहरा का—

(१) ललित लाल कौ सेहरौ, जगमग रह्यौ मेरी माई।
हरषि-हरषि गोपी गावहीं, यह सुख देखो री माई॥
अलकैं ललकैं बदन पर, मनों मुख ही बनाई।
सोभा सीमा हुलसि कैं, उमगी सुंदरताई॥
कुमकुम बेंदी भाल पर, सभी उद्योत सुहाई।
मुक्ता आछे तन जलद में, उडुगन देत दिखाई॥
भ्रकुटी कुटिल मन मोहिनी, मोहन है सुखदाई।
बागे सीरे अति बने, छबि सों चतुराई ठाई॥
जननी नौछावरि करैं, बाजे बजत बधाई।
सुर-बनिता विथकित भईं, रस-मूरति है पाई॥

---

† श्री वल्लभ-कुल से यहाँ पर गोप-कुल का अभिप्राय है।

धनि जसोमति-सुत सांवरौ, दूलह कुँवर कन्हाई।
राजकुमारी प्यारी राधिका, नव दूलह हो वर पाई॥
यह जस गावै सारदा, जिनके भाग बड़ाई।
यह आनंद जिनके हिए "सूरदास" बलि जाई॥

(सेहरा का भाव)

(२) आज बने गिरिधारी दूल्हे, चंदन कौ तन लेप किए।
सकल सिंगार बने मोतिन के विविध कुसुम की माल हिए।
खासा कौ कटि बन्यौ है पिछौरा, मोतिन सेहरौ सीस धरें।
राते नैन बंक अनियारे, चंचल खंजन मान हरें॥
ठाढ़े कमल फिरावत गावत, कुंडल स्रम-कन बिंदु परें।
"सूरदास" मदन मोहन मिलि, राधा सों रति-केलि करें॥

३. कुल्हे का—

बलि-बलि मदन गोपाल।
रंग महल में आज विराजत, सीस कुल्हे सोहै लाल॥
प्यारी सँग बतियाँ रतियाँ की, करत हँसावत बाल।
"सूरदास" प्रभु आतुर बिलसत, पहिरत अंक उरमाल॥

४. फैंटा का—

(१) लाल कौ फैंटा ऐंटा अमैंटा बन्यौ,
भ्रकुटी भाल पर नवल नंदलाल के।
आवत बनतें बने सांझ सरभीन मांझ,
अटक लटकन रही हगन व्रजबाल के॥
चलत गजगति चाल, मन हरत,
बाहु अंस धरें सखा प्रिय ग्वाल के।
"सूर" गोपीजन-जूथ, जुरि द्वार-द्वार खरीं,
निरखि नंदलाल जुवती-जन जाल के॥

(२) धर्यौ सिर फेंटा आज पचरंगी।
एक ओर दच्छिन सिर सोभित, ता पर कतरा कलंगी॥
बागे गाढ़े प्रेम रंग बाढ़े, आवत गोधन संगी।
"सूरदास" प्रभु गोकुल जीवन, मोहन लाल त्रिभंगी॥

(३) मोहन निरखि सिराई अँखियाँ।
फेंटा सीस सुरंग लाल के, छवि न जात मन लखियाँ ॥
कुंजन द्रुम-द्रुम मुरवा नाँचें, करि-करि ऊंची पँखियाँ।
"सूरदास" प्रभु सघन घटा में, तन-मन वारत सखियाँ ॥

५. पगा का—

सुंदर स्याम सलौनौ ढोटा, डारि गयौ मोपै मदन ठगोरी।
नितत आवत. बैनु बजावत, संग सखा हलधर की जोरी ॥
कबहुँक गेंदन मार मचावत, ग्वाल भजावत हैं चहुँ ओरी।
चंचल नैन नचावत आवत. कबहुँक आय होत एक रोरी ॥
कुंडल लोल कोल लोचन छवि,सीस पगा ओढ़ें पीत पिछोरी।
"सूरदास" प्रभु मोहन नागर,कहा री कीनीं चित्त की चोरी ॥

६. सामूहिक शृंगार का—

एक हार मोहि कहा दिखावति।
नख-सिख तें अँग संग निहारों, ए सब कतहिं दुरावति ॥
मोतिन माल जराय कोटि कौ, करनफूल, नकबेसरि।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी, तर और हार एक नौसरि ॥
सुभग हमेल जराय की अँगिया, नगनि जरित की चौकी।
बहु ठांकर कंकन, बाजूबंद, एते पर हैं तौकी ॥
छुद्रघंटिका, नूपुर, जेहरि, बिछुवा, पग सब लेखो।
सहज अंग सोभा सब न्यारी, कहत "सूर" लै देखो ॥

सेवामार्ग का शरणतत्त्व—श्रीवल्लभाचार्य जी ने मानसी सेवा की सिद्धि के लिए जिस प्रकार श्रीमद्भागवत से गोपीजनों की पूर्वोक्त भक्ति भावनाओं को सेवामार्ग में स्वीकार किया है, उसी प्रकार तनुजा वित्तजा सेवा की सिद्धि के लिए उन्होंने गीता के शरण-तत्त्व को भी अपनाया है।

"सर्व कर्माण्यपि सदा" से "सर्वधर्मान् परित्यज्य" पर्यंत गीता में द्वैविध्य शरण का निरूपण हुआ है। प्रारंभ में कर्म-ज्ञान के अंगवाला साधन रूप शरण है। उसमें निष्काम भक्ति-भाव से सब कर्मों को भगवान् श्री कृष्ण के अर्पण करने को कहा गया है। अंत में सब धर्मों के त्याग पूर्वक अनन्य भाव से एक मात्र श्रीकृष्ण के शरण में जाने का स्पष्ट निर्देश किया है। प्रथम का निष्काम कर्मयोग वाला शरण धर्मात्मक होने से साधन रूप

है। द्वितीय पर धर्मों के त्याग वाला शरण केवल धर्मी-भाव को ही प्रकट करने से फलात्मक है। आचार्यजी ने इस फलात्मक शरण की अनन्य भावना का प्राधान्य दे कर निष्काम कर्मयोग की प्रक्रियाओं से तनुजा-वित्तजा सेवा की सिद्धि की है।

भगवान् कृष्ण में अनन्य भक्ति स्थापित करने से ही भक्त पर उनकी कृपा होती है। आचार्यजी का दृढ़ मंतव्य है कि शरणस्थों पर ही भगवान् श्री कृष्ण कृपा करते हैं*। और श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होने पर ही मानसी प्रक्रिया रूप पूर्वोक्त प्रकार की प्रेम-भावनाओं की सिद्धि होती है। इसी लिए आचार्यजी ने इस प्रकार के शरण-तत्व को सेवा-मार्ग में स्वीकार किया और उससे पराभक्ति रूप मानसी सेवा को सुलभ बनाया।

इस शरण-तत्व के मुख्य दो अंग माने गये हैं। एक सर्व समर्पण, दूसरा अनन्य भाव। आचार्य जी कहते हैं—

"सर्वं सपर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव"। (अं० प्र०)

अर्थात्—भगवान् कृष्ण को सर्व समर्पण करने से ही भक्त कृतार्थ और सुखी होता है।

अनन्य भाव के संबंध में आचार्यजी का मत है—

"अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्य मात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥" (वि० धै० आ०)

इसका तात्पर्य यह है कि अन्य देवादि का भजन, वहाँ का गमन तथा प्रार्थना कार्य आदि भी श्रीकृष्ण-भक्तों के लिए विवर्जित है। आचार्यजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सिवाय सभी देव प्रकृति धर्म वाले हैं, अक्षरब्रह्म भी गणितानंद है, एक श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद हरि स्वरूप हैं, इसलिए श्रीकृष्ण ही एकमात्र आश्रय हैं †।

इस प्रकार के सर्व समर्पण और अनन्यभाव पतिव्रत धर्म रूप हैं, अतः इस देह आदि का यदि उसके स्वामी श्रीकृष्ण में इस प्रकार से विनियोग नहीं

* शरणागतस्त्वैविक्लष्टः, तदा तत्र कृपा भवति। .... भगवान्स्वकृपां शरणागतेष्वेवार्पितवान् बृहत्। (२–२१–३८ सु० बो०)

† प्राकृताः सकला देवा गणितानंदकं बृहत्।
पूर्णानंदो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम। (श्रीकृष्णाश्रय)

कराया जाय, तो जिस प्रकार वयस्क कन्या को अपने पति के पास स्नेह वश न भेजने से उसका पति उस पर असंतुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस भक्त पर भी श्रीकृष्ण असंतुष्ट होते हैं *। इसलिए पतिव्रत धर्म के सदृश सर्व समर्पण वाली अनन्य भक्ति से भक्त को श्रीकृष्ण की तनुजा-वित्तजा सेवा करनी चाहिए, तभी श्रीकृष्ण की उस भक्त पर कृपा होती है। आचार्य जी का मत है कि इस प्रकार की सेवा में कृष्ण से विमुख करने वालों का त्याग इस मार्ग में दूषण रूप नहीं है†, अतः पिता, पुत्र, पति आदि जो भी कोई इसमें अंतराय रूप होता हो, उसका त्याग कर देना चाहिए। सदा-सर्वदा और सर्व-भाव से जीव का एकमात्र कर्तव्य श्रीकृष्ण-सेवा ही होना चाहिए। इससे आत्म निवेदन के समय वाचिक रूप से किया हुआ समर्पण स्पष्ट और पुष्ट होता है और श्रीकृष्ण की दुर्लभ कृपा को प्राप्त करने वाले शरण की सिद्धि होती है। श्री कृष्ण की इच्छा के अधीन रहते हुए श्रीकृष्ण के चरण को ही दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करना इस शरण का परम लक्ष्य है।

सूरदास के पदों में शरण के अंग रूप सर्वसमर्पण और अनन्य भाव का इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है—

१. सर्वसमर्पण—

यामैं कहा घटैगौ तेरौ।
सर्वे समर्पन "सूर" स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ॥

२. अनन्य भाव—

(१) श्रीवल्लभ भले-बुरे तोऊ तेरे।
अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे॥
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे।
सब त्यजि तुम सरनागत आए, दृढ करि चरन गहे रे॥

(२) बिनती जन कासौं करै गुसांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव-मुनि, सब फीकी ठकुराई॥
अपने से कर, चरन, नैन, मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-करम बस फिरत सकल प्रभु, ते हमरी सी नांई॥

---

* प्रौढापि दुहिता यद्वत्स्वामिने न प्रेष्यते वरे।
तथा देहे न कर्त्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा। (अंतःकरण प्रबोध)

† "तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः। (पंचश्लोकी)

परार्धीन, पर-बदन निहारत, मानत मोह बड़ाई।
हँसे हँसे बिलखे दुख बिनु दुख, ज्यों जल दर्पन झाँई॥
लिए दियौ चाहे तें कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई।
'देव सकल व्यापार परस्पर' ज्यों पसु दूध चराई।
तुम बिनु और कोऊ न कृपानिधि, पावै पीर पराई।
"सूरदास" के त्रास हरन कों, कृष्ण 'नाथ' प्रभु आई॥

(३) हरि के जन सब तें अधिकारी।
ब्रह्मा महादेव तें को बड़, तासों सेवा कछु न सुधारी।
जाचक पै जाचक कहा जाचें, जो जाचै तो रसना हारी।
गनिका-पूत सोभा नहीं पावत,जिनके कुल में कोउ न पिता री॥

(४) अब क्यों दूजे हाथ बिकाऊँ।
"सूरदास" प्रभु सिंधु चरन तजि नदी सरन कत जाऊँ।

(५) गोविंद से पति पाय,कहा मन अनत ही लावै।
पति को व्रत जो धरे त्रिय तौ सोभा पावै॥

(६) यह विधि स्याम लग्यौ मन मोर।
ज्यों पतिव्रता नारि अपने मन, पिय को सर्वस्व देह।

(७) जाको मन लाग्यो नंदलाल सों, ताहि और नहीं भावै हो।
लै करि मीन दूध में राखो, जल बिन नहीं सचुपावै हो।

कृष्ण-विमुखों के त्याग करने का उल्लेख—

(१) त्यजो मन हरि-विमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥

(२) जाके हृदै हरि-धर्म नाहीं!।
ताके तजे को दोष नाहीं, बसिए नहीं उन माँहीं॥
मात, पिता, गुरू, बंधुन, तजि संग न पानी पीजै।
जाके हृदै हरि-धर्म नाहीं, ताको कह्यौ न कीजै॥
जन प्रहलाद पिता-पन मेट्यौ,बलि गुरू कह्यौ न कीनों।
भरत बचन परिहरत मात के, राज त्याग तप कीनों॥

! "तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः।" (श्रीवल्लभाचार्य)

अति ही दुष्ट देखि हरि-द्रोही, तज्यौ विभीषन भाई।
छत्र-चँमर ढुराय सीस पर, कियौ लंक कौ राई॥
वेद मर्याद मेंटि ब्रज-बनिता, पति तजि हरि पैं आई।
"सूर" पुनीत भईं वे गोपी, वासुदेव विमल जस गाई॥

कृष्णाधीनता और चरणाश्रय का वर्णन--

(१) राखौं तैसें रहौं जैसे, तुम राखौं तैसे रहौं।
जानत हो सब जन के सुख-दुख मुख करि कहा कहौं†॥
कबहुँक भोजन देहु कृपा करि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक तुरंग-हय-गज असवारी, कबहुक भार बहौं॥
कमलनयन घनश्याम मनोहर, अनुचर भयौ रहौं।
"सूरदास" प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं॥

सेवा मार्ग का आचार-तत्त्व—सेवा मार्ग में आचार्यजी ने आचार तत्व को भी स्थान दिया है। इसमें सदाचार और भक्त्याचार का समावेश हुआ है। सदाचार से मन पवित्र होता है और भक्ति के आचार भक्ति-प्रेम-को बढ़ाते हैं।

(१) सदाचार—सदाचार में बहिरंग और अंतरंग दो भेद रखे गये हैं। सदाचार के बहिरंग भेद में वर्णाश्रमानुसार शौचादि कर्मों द्वारा स्नानादिक से पवित्र होकर जीव को परम पवित्र, निर्दोष और शुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने की व्यवस्था है। इसको संप्रदाय की भाषा में "अस्पर्शता" (अपरस) कहते हैं। इसमें बाह्य पवित्रता की सीमा परिस्थिति अनुसार मानसिक पवित्र और निष्काम वृत्ति से अंकित की जाती है। इसमें अति-आचार भी निषिद्ध हैं। जिस आचार से भगवान् श्रीकृष्ण की तत्सुखात्मक सेवा में किसी भी प्रकार से विक्षेप होता हो, उसका त्याग पुष्टिमार्ग में अभीष्ट है। इसलिए सूरदासादि भक्तों ने अति-आचार की निंदा भी की है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें स्वेच्छाचार स्थापित किया जाय। कूवा का शुद्ध जल, शुद्ध पात्र और शुद्ध वस्त्र आदि सदाचार के मुख्य आधार हैं। "आचारः प्रथमो धर्म"—यह स्मृति-वाक्य इस सदाचार का मुख्य सूत्र है। सदाचार

---

† विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति।
प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्स्वाम्यभिप्राय संशयात्। (वि० धै० आ०)

और शुद्ध आचार से ही मन पवित्र होता है, इसलिए साधन अवस्था में इस पर विशेष बल दिया जाता है। इसी प्रकार अंतरंग आचारों की भी नितांत आवश्यकता मानी गयी है। अंतरंग आचारों में सत्य, दया, अहिंसा आदि स्मृत्योक्त धर्मों का समावेश होता है। इन अंतरंग आचारों से ही बहिरंग सदाचार शोभास्पद और सफल होते हैं। अंतरंग आचारों के बिना केवल बहिरंग आचार पाखंड की वृद्धि करने वाला होने से निंदनीय हो जाता है।

सूरदास ने अंतरंग आचार रहित बहिरंग आचार करने वाले पाखंडियों की इस प्रकार निंदा की है—

(१) कथा सुनि तजी मसूर की दाल।
काम न बिसर्यौ,क्रोध न बिसर्यौ,न बिसर्यौ मोह जजाल॥
अभ्यागत कोऊ द्वारे आवत, ताकूं बतावत काल
घर में जाय बड़ाई करत हैं, कैसे दियौ निकाल॥
'लकड़ी धोय चौका में धरत हैं, चलत देत मानों फाल।'
"सूरदास" ऐसे कपटी कों, कैसे मिलेंगे गोपाल॥

(२) हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं। × ×
जानत को 'पुष्टि-पथ मोसों', कहि-कहि जस प्रगटाऊं।
मद-अभिमान भर्यौ तन मेरे, साधु-संग छिटकाऊं॥
'मारग रीति' उदर के काजें, सीख सकल भरमाऊं।
'अति आचार''चारु सेवा रचि'नीके करि-करि पंच रिझाऊं॥

(२) भक्त्याचार—जिस प्रकार मर्यादा-भक्ति के आचार यज्ञादि हैं, उसी प्रकार पुष्टि-भक्ति के आचार वैराग्य, संतोष, सत्संग, दीनता, आश्रय, गुरु-भक्ति और निरंतर कृष्ण का स्मरण आदि हैं। इनसे प्रेमात्मक पुष्टि-भक्ति की वृद्धि एवं दृढ़ता होती है।

१. वैराग्य संतोष—आचार्य जी वैराग्य-संतोष के लिए इस प्रकार कथन करते हैं—

(१)"अत्र (भागवते) हि यथा यथा विरक्तस्तथातथाऽधिकारी।"
(सु० १-२-२)

अर्थात्—इस भागवत स्वरूप भगवत्मार्ग मे जैसे जैसे वैराग्यशील होता है, वैसे-वैसे ही इसका अधिकारी होता है।

(२) वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत। (सर्व निर्णय)

अर्थात—वैराग्य और परितोष का सर्वथा परित्याग न करना चाहिए। सूरदास ने इन दोनों का इस प्रकार वर्णन किया है--

(१) कहा चाकरी अटकी जन की।
वैश्यन के द्वारे पर भटकत, जात जन्म आसा करि धन की ॥
जाय धरम, धन आवै न आवै, छाया है रवि-पीठ करन की।
दिनकर पुनः फिरत सर साँझै, बाँधि कमर नित्य चाह तरन की॥
'आयुष नैम नहीं या कलि में, छन भंगुर जानों या तन की'।
तजौ बड़ाई तिरलोकी की, सोज करो भवसिंधु तरन की ॥
'कहा परतीति सक्ति संपति की, करो पालना गर्भ बचन की'।
ऐसो समय बहुरि नहीं पैहै, यह सिरियाँ नहीं नाद करन की ॥

(२) मन रे त वृच्छन कौ मत लै।
काटै ता पर क्रोध न कीजै, 'सींचे करैं न सनेह'। × ×

(३) जब संतोष हाकिम आवै, तब काया नगर सुख पावै।
ज्ञान-वैराग्य की चढ़ि गई फौजा, अज्ञान कूं मार भजावै॥
छमा कोतवाल बैठो चौतरा, कुबुद्धि कहाँ तें आवै।
साँच ढिंढोरा फिरत नगर में, झूंठ चोर भजि जावै॥
धर्म कौ झंडा गड्यौ खेत में, निर्भय राज कमावै।
"सूरदास" अज्ञानी हाकिम, बांधे जमपुर जावै॥

(४) जो दस-बीस पचास मिलै, सत होय हजार, तौ लाख मँगैगी।
कोटि अरब औ खरब मिलै तो धरापति होन की चाह चढ़ैगी॥
स्वर्ग-पताल कौ राज मिलै, तृष्णा अधिक-अति आग लगैगी।
"सूरदास" 'संतोष बिना' सठ, तेरी तौ भूख कबहू न भगैगी॥

२. सत्संग—श्री वल्लभाचार्य जी का सत्संग के विषय में यह मत है—

"निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।" (नवरत्न)

अर्थात्—निवेदन का स्मरण तादृशीजनों से सर्वदा करना चाहिए। सूरदास ने भी सत्संग के लिए इस प्रकार कहा है--

(१) मन तू समझ सोच विचार।
भक्ति बिना भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकार॥
साधु-संगत डारि पासा, फेर रसना सार। × ×

(१) 'करो मन हरि-भक्तन कौ संग ।'
जाके संग तें सुबुद्धि उपजत, बढ़त भजन में रंग ॥ × ×
(२) 'हरिजन संग छिनक जो होई । × ×

३. दीनता—निःसाधन पुष्टि-भक्ति में दीनता की परम आवश्यकता है। आचार्यजी ने कहा है—

"दैन्यं ततोप साधनम् ।" (निबंध)

अर्थात्—दीनता ही हरि को संतुष्ट करने का एक मात्र साधन है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में दीनता का कथन किया है। निम्न लिखित पद में उन्होंने दीनता का विस्तृत वर्णन कर पाखंड के विरुद्ध मत प्रगट किया है।

हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं ।
तुम जानत अंतर की बातें, जो-जो उर उपजाऊं ॥
द्वादस तिलक लगाइ अंग में, फिरि-फिर सबै दिखाऊं ।
करि उपदेस सबन के आगें, अपुनौ पेट भराऊं ॥
हरि-सेवा मांडी प्रभुता कों, कीरति बहुत बढ़ाऊं ।
निंदा करों और की मुख सों, आपुन भलौ कहाऊं ॥
जो कोऊ करत आय अपुनौ जस, फूल्यौ अंग न समाऊं ।
दुष्ट भाव भरपूर रह्यौ उर, औरहिं कथा सुनाऊं ॥
भाँति-भाँति के पाक जुगति सों, रुचि-रुचि हाथ बनाऊं ।
जो कोउ संग आय मिल बैठें, तासों दूर लुकाऊं ॥
भाव-भक्ति करि सब के आगें, नैननि नीर बहाऊं ।
आसा सबै एक लेबे की, काहू नांहि लखाऊं ॥
विषै रह्यौ लपटाय अंग सों, करि पाखंड छिपाऊं ।
बातें करूं बनाय प्रेम सों, सगरौ अंग नचाऊं ॥
भूख-प्यास, दुख-सुख सब व्यापत, त्यागी बहुत कहाऊं ।
माया-धारी देखि हरषि मन, भजन भाव उपजाऊं ॥
सब के बीच बैठि लोगन में, हरि-जस स्वाँग धराऊं ।
लै-लै कहत सुनाइ सबन कों, पर हथ धर्म बिकाऊं ॥
विषय-वासना पर्‌यौ पेट बस, तन-मन सबै लड़ाऊं ।
धन के हेत सदा जग डोलत, छिनु-छिनु पाप बढ़ाऊं ॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ कों, पलक नाँहिं बिसराऊं ।
उत्कर्ष दृग देखि औरन कौ, अंतर बहुत जराऊं ॥

अति छल भर्यौ, कुटिलता तन में, दंभ अधिक बिसराऊं।
सेवा नाम भाव-भक्तिन कों, कबहू न मन परसाऊं॥
हरष, सोक, इतरता तन में, नैंक न तिन बिछुराऊं।
रसना-स्वाद सरस रस भोगी, पलक नाँहिं बिसराऊं॥
अति अभिमान जानि जीय अपुने, औरन मन नहिं लाऊं।
करूं दीनता मधुर बोलिकैं, अंतर सीस नवाऊं॥
सुनि पुरान बातन कों छीलूं, लोगन सकल हराऊं।
इन बातन तें दूर रहत हरि, सदा.............कराऊं॥
धारि स्वाँग साधुन कौ लोक में, गूढ़ बात मुख गाऊं।
आपुन बाट चलों अधरम की, औरन धर्म सिखाऊं॥
करि मुख मौन बैठि औरन में, बन-केलि हू बचवाऊं।
दंभ देखि मत्सरता भीनी, कबहू नांहिं टराऊं॥
बसन डार, कर लई तूमरी, बन-बन मांझ फिराऊं।
नाँहिंन मिटी बासना उर की, प्रभुता प्रगट जनाऊं॥
तजूं खान, पय पान करूं मुख, लै सिर बार रखाऊं।
जा-जा भाँति होय जस जग में, सोई करि कृत्य दिखाऊं॥
छाँड़ि भवन सुख-संपति सगरौ, चित बन-बास बसाऊं।
निश्चै एक बासना उर में, सब तें अधिक कहाऊं॥
सब संग छांड़ि फिरों तीरथ में, अंग भभूत लगाऊं।
नांहीं गई मत्सरता मन की, दिन-दिन अधिक पगाऊं॥
काम, लोभ, मद, मोह जरायौ, मो काहू तें न जनाऊं।
देखूं जबै आपु तें ऊँचौ, सहज सकल दुख छाऊं॥
अनपरकास सबन के आगें, करि-करि जुगत बनाऊं।
को जानत भीतर की बातें, तुम बिनु जगत खिलाऊं॥
सदा रहों निर्लेप जगत सों, सब ही दूर फिराऊं।
अंतर रह्यौ बिगरि सब बिधि सों, परम कुटी नहिं छाऊं॥
बैठत नहीं कहूँ लोगन में, काहू न मन अटकाऊं।
ऊँचे पद के हेत भक्ति करि, सब जगत में भटकाऊं॥
पूछत भेद सकल प्रभुजन कौ, परमुख सुनत हसाऊं।
साँची बात कहत कोऊ अपनी, जातें नाँहिं सिखाऊं॥
खोटी बात बसत मुख मेरे, कहि-कहि सबन दुखाऊं।
देखत फिरों छिद्र हरिजन के, सुनत सदा सुख पाऊं॥

सुनि-सुनि सीख बताई उनकी, बहु बिधि तरक उठाऊं।
करि-करि अधिक कल्पना मन की, पंडित जनहिं भुठाऊं॥
आपुन कृत्य करूँ सो साँचौ, अंतर अति हरषाऊं।
मो सम जानत कौन सकल बिधि, औरन दोष लगाऊं॥
मानों आप अपनकों ऊँचौ, तातें जग समजाऊं।
यहै सब सोंज भरी है उर में, मुख तें कहत लजाऊं॥
पास बैठि करि करत बड़ाई, तासों मन परचाऊं।
सुनि कीरति कानन सुख उपजत, फूल्यौ रंग रचाऊं॥
पढ़ि पुरान बांचों सब आगें, कोटिक तरक मिलाऊं।
जोरि मंडली बैठि बीच में, अपुनौ पंथ चलाऊं॥
अस्तुति करत आप अपनी जब, अति मन हरष बढाऊं।
सगरी बात एक प्रभुता हित, मन चित्त सकल नमाऊं॥
जानत को पुष्टि-पथ मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊं।
मद अभिमान भर्यो तन मेरे, साधु संग छिटकाऊं॥
'मारग-रीति' उदर के काजें, सीख सकल भरमाऊं।
'अतिआचार' चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊं॥
कथा, वारता, कीरंतन करि, करि सुर ताल बजाऊं।
बदों नहीं काहू उर अपुने, उमँगि-उमँगि कै गाऊं॥
इत-उत की बात करि वासर, रजनी वृथा गमाऊं।
मन चित करि हरि उर नहिं आने, दुरमत कथूं, कथाऊं॥
सब सिद्धांत एक धन जानों, करि पाखंड मँगाऊं।
नाना भाव, चाव चित कौ करि, गानहिं खरज सुनाऊं॥
दौरत फिरों लोभ के काजें, भजन करत अलसाऊं।
प्रगट प्रमाद असुरता उर में, देखत कुल हुलसाऊं॥
पर-नारी, पर-धन, पर-निंदा, करत न हरत दुराऊं।
अपने दोष सबै गुन मानों, पर-गुन दोष मिलाऊं॥
सेवा के हित जाय भूप सों, कहि बंधान बँधाऊं।
इंद्री-भोग भगत कौ बानों, आपुन साध सधाऊं॥
जो कछु कृपा करों सब ऊपर, भीतर मन न छुवाऊं।
कोऊ लखत नाँहिं चतुराई, निपट कपट बरताऊं॥
ताल, मृदंग, झाँझ लै कर में, ऊधम बहुत मचाऊं।
राग रंग ऊपर की बातें, करि-करि रंग रचाऊं॥

बहु धन जोरि कियौ एक ठौरै, घरनी सुतहिं लड़ाऊं।
विषय रच्यौ मन लपट रैन-दिन, दिन-दिन अधिक बढाऊं।।
ना हरि-हेत लगाऊं पैसा, ना जन-हित खरचाऊं।
बात बनाइ कहूँ कछु मीठी, वृथा बेल परचाऊं।।
तब घर काज होइ उनमत ज्यों, खरचत नाँहिं लजाऊं।
हरि-मंदिर में रंच भोग धरि, बहुरि न संत खवाऊं।।
जब कोऊ माँगत आवै हरिजन, गृह-दुख ताहि जताऊं।
साक-पात करि दिवस बितायौ, बातें बहुत बनाऊं।।
इतनी सब संपति है मेरे, तिनकों नित बिलछाऊं।
ऐसौ नहीं और त्रिभुवन में, मो सम काहू कछाऊं।।
जिभ्या झूठ असत मुख भाखों, अगनित कहा गिनाऊं।
दोष-रासि साधन बल नांही, कहाँ लों तुम्हें सुनाऊं।।
बाहर कहूं आज उच्छव है, करि पकवान अघाऊं।
रसना स्वाद मूंदि घर अपुनौ, बैठि अकेलौ खाऊं।।
करों बीनती 'नाथ' सुनो अब, कब लगि बकों बकाऊं।
यह मांगों दीजे करुनानिधि,नितप्रति तुम पद धाऊं।।
चरन सरन राखो करि अपनी, चिंता कलह बहाऊं।
श्री बल्लभ की कानि मानि कै, लै भैया बलदाऊ।।
उभै लोक के साधन मेरे, तुम तजि कापै जाऊं।
कृपा-दृष्टि कस हरी दयानिधि,अब जिय अति अकुलाऊं।।
पतित-सिरोमनि, सब कौ नायक, निर्भै फिरों फिराऊं।
अधम भूप सैना सब मेरी, दोष न करत अघाऊं।।
जो इच्छा सो करहु कृपानिधि, कहाँ लौं ज्ञान बचाऊं।
मेरौ बल बस नाँहि नेक हू, मैं तुम हाथ बिकाऊं।।
यह अभिलाष आस पूरन करि, 'दासन-दास' कहाऊं।
स्वर्ग-नरक की नाँहि अपेक्षा, तुव पद सरन रहाऊं।।
सदा सरन दृढ़ एक आसरौ, रसना नाम रटाऊं।
अपुनौ बिरद बिचारि दीजिए, यातें कहा घटाऊं।।
पर्यौ हों दरबार देखि तुव, तन-मन-धन बारनैं जाऊं।
जाचों जाय कौन पैं तुम बिनु, कापै नाम कढ़ाऊं।।
दीजो मोहि कृपा करि माधौ, चरन कमल चितलाऊं।
"सूरदास" कों भक्ति-दान दै, श्री बल्लभ गुन गाऊं।।

इस पद के अतिरिक्त और भी अनेक पदों में दीनता प्रकट की गयी है। ऐसे कुछ पदों की प्रारंभिक टेक इस प्रकार है--

(१) हरि ! मैं सब पतितन कौ नायक।
(२) मैं तौ महा पतित उरगानौ ।
(३) हरि जू ! मो सों पतित न आन।
(४) माधौ ! हौं पतित सिरोमनि ।
(५) हरि ! हौं सब पतितन कौ राजा।
(६) हौं पतितन में परधान ।
(७) मो सों पतित न और गुसांई।
(८) प्रभु मेरे ! मो सौ पतित उधारो।

भक्ति-मार्ग में भक्ति से विमुख होना ही पतित कहलाता है। जब जीव तनिक भी ईश्वर को भूलता है, तब वह पतित होता है। श्री कृष्ण के संबंध बिना किसी अन्य की मन से भी कामना करने वाला कामी कहलाता है। इसी प्रकार कृष्ण से संबंधित किये बिना सब कार्य क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर रूप हो जाते हैं। सूरदास ने इसी दृष्टि से अपने को कामी, कुटिल आदि कहा है।

भक्त जन दीनता की सिद्धि के लिए जगत के सभी दृश्यमान दोषों की भी अपने में सत्य भाव से कल्पना करता है, जिसके कारण दूसरे में हीनत्व बुद्धि नहीं होती है और अपने में अभिमान नहीं होता है। सूरदास के पदों में प्राप्त अतिशय दीनता का यही रहस्य है। निम्न पद से भी उक्त बात की पुष्टि होती है—

सो कहा जू मैं न कियौ, जोपै तुम सोई सोई चित्त धरि हौ।
पतित पावन बिरद, कौन भांति करि हौ ॥
जब तें जग जनम पाए, जीव नाम कहायौ।
तब तें सब औगुन करि, गुन ना कहि आयौ ॥
सुकृति सुचि सेवक जन, काहै न जिय भावै।
प्रभु की प्रभुताई यहै, दीन सरन पावै ॥
स्वाद-लंपट, संत-निंदक, कपटी, गुरु-द्रोही।
"जेते कछु अपराध कहियत, लागे सब मोही" ॥
स्यामसुंदर, कमल-नयन, सकल अंतर्यामी।
बिनती कहा करै "सूर", कूर कुटिल कामी ॥

४. आश्रय—भक्ति का अनन्य भाव ही आश्रय कहलाता है। इसका वर्णन गत पृष्ठों में हो चुका है। सूरदास ने श्री कृष्ण के अतिरिक्त इतर देव और मनुष्य आदि की अनन्य भक्ति के प्रति सर्वथा उपेक्षा की है। श्री कृष्ण के समक्ष वे सभी देव आदि को गौण समझते थे। उनके निम्न प्रकार के उल्लेख इस बात की पुष्टि करते हैं—

(१) अन्य देव सब रंक भिखारी, देखे बहोत घनेरे।
हरि-प्रताप बल गिनत न काहू, निडर भए सब चेरे॥

(२) 'बिनती जन कासों करैं गुसांई।
तुम बिनु दीन दयाल देव मुनि, सब फीकी ठकुराई॥
लिए दियौ चाहे तें कोऊ प्रभु, सुन समर्थ जदुराई।
देव सकल ब्यौपार परस्पर, ज्यों पसु-दूध चराई॥

आश्रय की सिद्धि और प्रकार—

(४) हरि के जन की अति ठकुराई।
देवराज ऋषिराज महामुनि देखत रहे लजाई॥
दृढ विश्वास कियौ सिंघासन ता पर बैठे भूप।
हरि गुन विमल छत्र सिर राजत, सोभा परम अनूप॥
निस्पृह देस कौ राज करैं, ताकौ लोक बड़ौ उत्साह।
काम क्रोध मद लोभ मोह, 'तहाँ भये चोर तें साह॥
बने विवेक विचित्र पौरिया, औसर कोऊ न पावै।
अर्थ काम तहाँ रहें दूरि-दूरि, मोक्ष धर्म सिर नावै॥
अष्टसिधि नव-निधि द्वारें ठाड़ीं, कर जोरैं उर लीनीं।
छड़ीदार वैराग्य विनोदी, झटकी बाहर कीनीं॥
हरिपद पंकज प्रेम परम रुचि, ताही सों रंग राते।
मंत्री ज्ञान औसर नहीं पावै, करत बात सकुचाते॥
माया काल व्यापै नहीं कबहूँ, जो या रीतै जानैं।
"सूरदास" यह नर तन पायौ, गुरु प्रसाद पहिचानै॥

५. गुरु-भक्ति—सूरदास ने गुरु-भक्ति पर बड़ा जोर दिया है। वे गुरु और ईश्वर में अभेद बुद्धि रखते थे। जैसी श्रीकृष्ण देव में परा-भक्ति हो, वैसी ही गुरु में रखने वाले व्यक्ति के हृदय में वेदादि का वास्तविक रहस्य स्फुरायमान होता है। इस उपनिषद् वाक्य के आधार पर सूरदास अपने ज्ञान को गुरु-प्रसाद रूप समझते थे।

सूरदास के निम्न लिखित पदांशों में गुरु-भक्ति की महिमा इस प्रकार बतलायी गयी है—

(१) हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करो। हरि चरनारविंद उर धरो॥
हरि-गुरु एक रूप नृप जान। तामें कछु संदेह न आन॥
गुरु प्रसन्न हरि प्रसन्न जोई। गुरु के दुखित दुखित हरि होई॥

(२) धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना करि गान्यौ।

(३) अपुनपौ आपुन जरि मरि हैं।
काम, क्रोध, तृष्णा, मद, ममता, बिनु बिवेक क्यों तरि हैं॥
ज्यों दीपक सहज ज्योति में लौजत हरि, तरंग भ्रम परि हैं॥
"सूरदास" संतन की संगति, 'गुरु-प्रसाद' निस्तरि हैं॥

(४) गुरु बिनु ऐसी कौन करें।
भवसागर तें बूड़त राखे दीपक हाथ धरें॥

(५) भजो गोपाल भूल जिनि जावो। मानुष देह कौ यही है लहावो॥
गुरु-सेवा करि भक्ति कमाई। कृपा भई तब मन में आई॥

६. **श्रीकृष्ण नाम स्मरण**—श्री वल्लभाचार्य का मत है कि यदि जीव से सेवा आदि कुछ भी न हो, तो उसे सर्वात्म-भाव से निरंतर "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस अष्टाक्षर मंत्र का स्मरण करना चाहिए*।

सूरदास के निम्न पद में उक्त मत का इस प्रकार वर्णन मिलता है--

श्री कृष्ण नाम रसना रटै, सोई धन्य कलि में।
जाके पद पंकज की, रेणु की बलि मैं॥
सोई सुकृत सोइ पुनीत, सोई कुलवंता।
जाके निस-दिना रहै, श्री कृष्ण नाम चिंता॥
जोग, जज्ञ, तीरथ, व्रत, श्री कृष्ण नाम माँहीं।
बिना एक कृष्ण-नाम, कलि उद्धार और नाँहीं॥
सब सुखन कौ सार, 'श्रीकृष्ण कबहू न बिसरिऐ।'
कृष्ण नाम लै-लै, भवसागर सों तरिऐ॥
श्रीगोवर्धन धर प्रभु, परम मंगल कारी।
उद्धरे जन "सूरदास", ताकी बलिहारी॥

---

* तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥ (नवरत्न)

५—सूरदास और पुष्टिमार्गीय तत्त्व

गत पृष्ठों के विवेचन से यह भलीभाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास की प्रायः समस्त रचनाएं पुष्टि-मार्गीय सिद्धांत के अनुकूल हैं। ऐसा होने पर भी कुछ विद्वानों ने आश्चर्यपूर्वक लिखा है कि सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं किया है। हिंदी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सूरदास की रचनाओं का भलीभाँति अध्ययन नहीं किया है, इसीलिए उनका सूरदास विषयक मत कभी-कभी भ्रमात्मक हो जाता है। हम यहाँ पर कुछ ऐसे पद देते हैं, जिनमें सूरदास ने पुष्टि-मार्ग का स्पष्ट उल्लेख किया है—

पुष्टि-मार्ग का स्पष्ट उल्लेख—

(१) हरि मैं तुम सों कहा दुराऊँ।
जानत को 'पुष्टि-पथ' मोसों, कहि-कहि जस प्रगटाऊँ॥
मारग-रीति उदर के काजैं, सीख सकल भरमाऊँ।
अति-आचार, चारु सेवा करि, नीके करि-करि पंच रिझाऊँ॥

(२) नाम महिमा ऐसी जो जानो।
मर्यादादिक कहै, लौकिक सुख लहै,
पुष्टि कों 'पुष्टि-पथ' निश्चय जो मानो॥

(३) 'भावभक्ति सेवा सुमिरन करि 'पुष्टि-पंथ' में धावै"।

स्वमार्ग के प्रति आत्म विश्वास—

हौं पतित-सिरोमनि सरन पर्यौ।
कह्यौ कछु और, कर्यौ कछु औरैं, तातें तिहारे मन तें उतर्यौ॥
यह 'ऊँचौ संतन कौ मारग, ता मारग में पैंड धर्यौ'।
नैन स्रवन नासिका इंद्रिय, बस ह्वै खिसल पर्यौ॥
और पतित ह्वै है बहुतेरे, तिनकी छोलन हौं जु धरौं।
"सूरदास" प्रभु पतित पावन हो, विरद की लाज करौ तौ करौ॥

पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप—पुष्टि-मार्ग में परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही परम दैवत और आराध्य माना गया है। ये द्वादशांग पुरुष और साकार रूप हैं†। पुष्टिमार्ग की मान्यता के अनुसार ये ब्रह्म इस अनवतार दशा में श्रीनाथ

† 'द्वादशाङ्गो वै पुरुषः'। (श्रुति)

जी के रूप में सं० १५३५ की वैशाख कृ० ११ को ब्रज के अंतर्गत गोवर्धन पर्वत से प्रादुर्भूत हुए हैं। इसीलिए उनको श्रीगोवर्धननाथजी अथवा श्री गोवर्धनधर कहा जाता है। श्री वल्लभाचार्यजी ने प्रत्यक्ष भजन के लिए इन श्रीनाथ जी को ही साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण माना है,* इसीलिए पुष्टि संप्रदाय के सेव्य स्वरूपों में श्रीनाथ जी का प्राधान्य है। श्रीनाथ जी को गायें अत्यंत प्रिय हैं, इसलिए उनको 'गोपाल' भी कहा जाता है। श्री वल्लभाचार्य जी के समय में श्रीनाथ जी के प्राकट्य-स्थान का निकटवर्ती गाँव इसीलिए 'गोपालपुर' के नाम से प्रसिद्ध था। यह 'गोपालपुर' आजकल 'जतीपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है।

सूरदास ने पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव श्रीनाथजी का स्मरण निम्न लिखित पदांशों में इस प्रकार किया है—

श्रीनाथजी का उल्लेख--

(१) मोसों पतित न और गुसांई। × ×
सेवि 'नाथ' चरन 'गिरिधर' के बहुत करी अपनाई। × ×

(२) बरु मेरी प्रतिज्ञा जाउ। × ×
निकट आय 'श्रीनाथ' प्रचारयौ, परी तिलक तन दीठ। × ×

(३) यह लज्जा नृप कहा करो। × ×
.... तब 'श्रीनाथ' सहाय हमारे। × ×

(४) तात बचन रघुनाथ जबै बन गवन कियौ।
'सूरदास' 'श्रीनाथ' विरह सब पतिव्रत सब ही कियौ॥

(५) 'श्रीनाथ' सकौ तौ मोहि उधारो।

(६) 'श्रीनाथ' मुरलीधर कृपाकरि दीन पर ... ।

(७) ब्रज कौ 'नाथ गोवर्धनधारी' सुभग भुजन नख रेख जुनौ॥

(८) अनाथ के नाथ प्रभु कृष्ण स्वामी। × ×
'श्रीनाथ' सारंगधर कृपा करि मोहि.... ...... ॥

---

* "इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः। पुरुषे द्वादशत्वं हि सक्थौ बाहू शिरोऽन्तरम्। हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपादौ करौ ततः। सक्थौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्चापरः स्मृतः। 'उत्क्षिप्त' हस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत। स्तनौ मध्यं शिरश्चैव द्वादशाङ्ग तनुर्हरिः। (निबंध)

इसमें वर्णित उत्क्षिप्त—ऊंचा हस्त केवल श्रीनाथजी का ही है। इससे श्री नाथजी को ही आचार्य ने द्वादशांग हरि रूप कहा है। यह निश्चित होता है।

(६) 'नाथ मोहि अब की बेर उबारो।
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारो॥
सूरदास ने 'गोपाल' नाम का उल्लेख अपने अनेक पदों में किया है।

पुष्टिमार्ग के द्वितीय प्रधान स्वरूप श्री नवनीत-प्रिय जी हैं। सूरदास ने इनका उल्लेख भी अपने कई पदों में किया है।

नवनीत प्रियजी का उल्लेख—

(१) सोभित कर नवनीत लिऍं।
घुटुरुवन चलत, रेनु तन, मंडित, मुख, दधि लेप किऍं॥
चारु कपोल, लोल लोचन छवि, गोरोचन कौ तिलक दिऍं।
लर लटकन मानों मत्त मधुप गन, मादक मधुहिं पिऍं॥
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, राजत है सखि रुचिर हिऍं।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख, कहा भयौ सत कल्प जिऍं॥

(२) देखेरी! हरि नंगम नंगा।
जलसुत भूषन अंग बिराजति, बसन हीन छबि उठत तरंगा॥
कहा कहूँ अँग-अंग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा।
कछु दधि हाथ कछू मुख माखन, 'सूर' हँसत ब्रज युवतिन संगा॥

पुष्टि-मार्ग के तृतीय प्रधान स्वरूप श्री मथुरेश जी हैं, जो शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारण करने वाले चतुर्भुज स्वरूप हैं। ये यज्ञोपवीत से भी अंकित हैं। सूरदास के निम्न लिखित पद में मथुरेश जी का वर्णन मिलता है—

श्री मथुरेशजी का उल्लेख —

बनी मोतिन की माल मनोहर।
सोभित सुभग स्याम-उर ऊपर, मनों गिरि तें सुरसरी धसी धर॥
अति भुज दंड भ्रमर भृगु रेखा, चंदन चित्र तरगनि सुंदर।
रवि की किरनि मीन कुंडल छबि, मकर मिलन आये मनों त्यागिसर॥
"जज्ञपवीत" सुदेश "सूर" प्रभु, मध्य बारि धारा जु बनी धर*।
'संख, चक्र, गदा, पद्म' बिराजति, कमल बीच कल हंस किऍं घर॥

* श्री चतुर्भुजदास कथित "खट ऋतु की वार्ता" से ज्ञात होता है कि सप्तस्वरूप के साथ श्रीनाथ जी के प्रथम अन्नकूट के अवसर पर गोसांई बिट्ठलनाथ जी ने सूरदास को मथुरेश जी की कीर्तन-सेवा दी थी, उस समय उन्होंने उक्त पद का गायन किया था।

पुष्टि संप्रदाय में पुष्टि शक्ति रूपा श्री यमुना जी की बड़ी महिमा है। श्रीवल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्री यमुना जी पुष्टि-भक्ति की साधन रूप† और मुकुंद में रति बढ़ाने वाली हैं।* सूरदास के निम्न लिखित पदों में यमुना जी का इस प्रकार वर्णन मिलता है—

श्री यमुना जी का उल्लेख—

(१) श्रीयमुनाजी अपुनौ दरस मोहि दीजै।
आस करों गिरिधरन लाल की, इतनी कृपा मोहि कीजै॥
हौं चेरी महारानी तेरी, चरन-कमल रखि लीजै।
बिलंब करो जिन बोलि लेहु मोहि, दरस परस वारि पीजै॥
करो निवास उर अंतर मेरे स्रवन सुजस सुनि लीजै।
प्रान पिया की खरी ये प्यारी, पानि पकरि मेरो लीजै॥
हौं अबूझ मूढ़मति मेरी, अनत नहीं चित्त भींजै।
"सूरदास" मोहि यह आस, है निरखि-निरखि मुख जीजै॥

(२) नाम महिमा ऐसी जू जानों।
मर्यादादिक कहै, लौकिक-सुख लहै,
पुष्टि कौ पुष्टिपथ निश्चै जो मानो।
स्वांतिजल बूंद जब परत है जाहि में,
ताहि में होत तैसो जू बानों।
यमुने कृपा सिंधु जानि, जल महिमा आनि,
"सूर" गुनपूर कहाँ लौं बखानों॥

(३) श्री यमुने पतित पावन करेउ।
प्रथमहिं जब दियौ दरसन, सकल पातक हरेउ॥
जल-तरंगन परस कर, पय-पान सों मुख भरेउ।
नाम लेतहिं गई दुरमति कृष्ण-रस विस्तरेउ॥
गोपकन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर वरेउ।
"सूर" श्रीगोपाल निरखत, सकल काज सरेउ॥

---

† "भक्ति हेतुस्तु यमुना"। (सु० बो० ३-१-२१)

* "मुकुन्दरति वर्द्धिनी"। (श्रीयमुनाष्टक)

अन्य अवतार और देवी-देवता—शुद्धाद्वैत पुष्टि-मार्ग के अनुसार समस्त अवतार और देवी-देवता श्रीकृष्ण के ही अंश हैं। इस मान्यता के कारण राम, नृसिंह, वामन आदि भक्तोद्धारक अवतारों में श्रीकृष्ण की ही स्थिति मानी गयी है, अतः पुष्टि-मार्गीय सेवा-प्रणाली में उक्त अवतारों की जयंतियों के अवसर पर श्री कृष्ण के स्वरूप तथा अक्षर ब्रह्मात्मक शालिग्राम जी का पंचामृत स्नान होता है।

इसी भावना को लेकर सूरदास ने अन्य अवतारों के पदों में अपने इष्ट श्री गोवर्धन नाथ का इस प्रकार स्मरण किया है—

(१) " सूरदास " प्रभु गोवर्धन धर, नर हरि-वपु धारयौ।

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पानौ।
' रघुकुल-राघव ' कृष्ण सदा ही, गोकुल कीन्यौं थान्यौं॥

इसी प्रकार अन्य देवी-देवताओं को भी श्री कृष्ण के अंश मान कर पुष्टि-प्रवाह और पुष्टि-मर्यादा वाली सेवा में ' श्रीकृष्ण के हितार्थ ' उनकी भी पूजा की जाती है। यह पूजा, नंद-यशोदा की भावना से श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव पर उनकी छटी के अवसर पर होती है

सूरदास ने श्रीकृष्ण की छटी के वर्णन में उक्त देवी-देवताओं का इस प्रकार स्मरण किया है—

गौरी, गनेस, सुर बिनै हौं, देवी सारदा तोही।
गाऊँ हरि जू कौ सोहलौ, मन और न आवै मोही॥

सूरदास के राम विषयक-पद—सूरदास के राम विषयक अनेक पद मिलते है। ये सब शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टि संप्रदाय की सेवा-प्रणाली के अनुसार रचे हुए हैं। श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी में लिखा है कि "कृष्ण एव रघुनाथः" (१०-४१-२२) तथा " भगवान्पूर्ण एव रघुनाथोऽवतीर्णः। " (२-७-२३) इन सूत्रों के अनुसार सूरदास ने राम कृष्ण की अभेदता सूचक निम्न प्रकार के अनेक पद रचे हैं—

(१) जै गोविंद माधौ मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
कृपनिपाल केसव कमलापति। कृष्ण कमल लोचन अविगत गति।
रामचंद्र राजीव नयन वर। सरन साधु श्रीपति सारंग धर॥
बनमाली वामन विट्ठल वर। वासुदेव बासी ब्रज भूतल।
खरदूषन त्रिसिरा सिर खंडन। चरनारबिंद दंडक भुव मंडन॥
बकी दमन, बक-बकिन बिदारन। बरुन बिषाद नंद निस्तारन॥

ऋषि मख त्रान, ताड़का-तारक। बन बसि तात बचन प्रतिपालक॥
गोकुलपति, गिरिधर गुन सागर। गोपी रमन, रास-रति-नागर॥
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन। जग-हित जनकसुता-मनरंजन॥
काली दमन, केसि कर पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन॥
करुनामय कपि-कुल-हितकारी। बालि बिरोध कपट मृगहारी॥
गुप्त गोप-कन्या ब्रत पूरन। द्विज नारी दरसन दुख चूरन॥
रावन कुंभकरन सिर छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन॥
संख चक्र चाणूर सँहारन। सक्र कहै मेरी रच्छन कारन॥
उत्तर कृपा गीध कृत हारी। दरसन दै सबरी उद्धारी॥
जे पद सदा संभु हितकारी। जे पद परम सुरसरी गारी॥
जे पद रमा हृदय नहीं टारी। जिन पद तें तिहुँ भवन तयारी॥
जे पद वृंदावन ही बिहारी। जे पद पांडव गृह पग धारी॥
जिन पद सकटासुर संहारी। जे पद अहिफन-फन प्रति धारी॥
जे पद भक्तन के सुखकारी। जिन पद रज गौतम-त्रिय तारी॥
"सूरदास" सुर याचत वे पद। करहु कृपा अपने जन पर सद॥

(२) कृष्ण-भक्ति सीतल निज पान्यौ।
'रघुकुल-राघव कृष्ण सदाही', गोकुल कीनों थान्यौ॥ × ×

पुष्टि-भक्ति का स्वरूप—हम पहले लिख चुके हैं कि पुष्टि-भक्ति प्रेम-रूपिणी है। प्रेम की सिद्धि विरह से होती है, इसलिए इस भक्ति के श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि सभी साधन विरहात्मक हैं। भगवान् के विरह में पतिव्रता की तरह अनन्य होकर पुष्टिस्थ भक्त उनका यश-श्रवण, कीर्तन और स्मरण आदि करते हैं। तब भक्त को क्लेश युक्त देख कर हृदयस्थ प्रभु बाह्य रूप में आविर्भूत होते हैं। श्री वल्लभाचार्यजी ने लिखा है—

---

[१] एक किंवदंती के अनुसार जब तुलसीदास अपने भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे, तब चंद्रसरोवर पर सूरदास से भी मिले थे। तुलसीदास को श्रीरामचंद्रजी का इष्ट था, अतः उनको श्रीनाथ जी के प्रति भक्ति-भाव प्रकट करने में संकोच होता था। कहते हैं सूरदास ने उक्त पद का गायन करते हुए उस समय श्रीनाथ जी से प्रार्थना की थी कि वे तुलसीदास को रामचंद्र के रूप में दर्शन दें। उक्त पद की अंतिम टेक 'करहु कृपा अपने जन पर सद' सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त के लिए ही प्रयुक्त हुई ज्ञात होती है।

क्लिश्यमानाञ्जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ (नि० ल०)

इस प्रकार विरह से ही प्रेम की सिद्धि होती है और प्रेम सिद्ध होने पर लोक और वेद दोनों से भक्त विरक्त हो जाता है । सूरदास ने निम्नलिखित पदों में इस बात को इस प्रकार कहा है—

'विरह का स्वरूप —

विरह बिनु नाहिन प्रीति की खोज ।
लागे बिनु कहो कैसे आवै, इन अँखियन में रोज ॥
जब तें दूरि भए नँदनंदन, बैरी भयौ मनोज ।
"सूरदास" प्रभु निसंक जे जन, ते हैं राजा भोज ॥

शुद्ध प्रेम का स्वरूप—

मिलै गोपाल सोई दिन नीकौ ।
'जोतिष, निगम, पुरान बड़े ठग, जानों कामी जी कौ' ॥
जो बूझै तौ उत्तर देहों, बिन बूझै मत फीकौ ।
कमल मीन दादुर यों तरसत, सब घन बरष अमी कौ ॥
भद्रा भली भरनी भय हरनी, चलत मेघ अरु छींकौ ।
अपने ठौर सबै गृह नीके, हरन भयौ क्यों सीय कौ ॥
सुनि मूढ मधुकर ब्रज आयौ, लै अपयस कौ टीकौ ।
"सूर" जहाँ लों नेम, धरम, व्रत, सो प्रेमी कौड़ी कौ' ॥

पुष्टि-भक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं--स्वरूपासक्ति, लीलासक्ति और भावासक्ति । सूरदास के पदों में इन तीनों का इस प्रकार वर्णन मिलता है -

१. स्वरूपासक्ति—

(१) कहूँ देख्यौ माई, श्री गोकुल कौ बासी ।

तनिकसी बाँसुरी बजाइ बाँस की, लै गयौ प्रान निकासी ॥
देख्यौ होय तौ दिखाय सखीरी, अँखियाँ रूप की प्यासी ।
"सूरदास" प्रभु तुम्हारे मिलन बिनु, मेरौ मरन, जग हाँसी ॥

(२) मिलिबौ नैनन ही कौ नीकौ ।
नंद कौ लाल हमारौ जीवन, और जगत सब फीकौ ॥
वेद, पुरान, भागवत अरु गीता, गूढ ज्ञान पोथी कौ ।
खाटी छाछ कहा रुचि उपजै, "सूर" खवैया घी कौ ॥

(३) गोकुल के गोंड़ एक साँवरौ ढुटौना माई,
अँखियन के पैंड़ पैठि, जी के पैंड़ परयौ है
कल न परत छिनु, गृह भयौ बन सम,
तन, मन, धन, प्रान सरबस हरयौ है।
भवन न भावै माई, आंगन रयौ न जाई,
करै फिरै हाय-हाय देखो कैसौ हाल कर्यौ है
"सूरदास' प्रभु नीके गावत मधुर सुर,
मानों मुरली में लै पीयूष भरयौ है।।

(४) रहो इन नैनन अंजन देहु।
आनों क्यों न स्याम रंग काजर, जासों जुर्यौ सनेह।
तरत रहत निस-बासर मधुकर, नहिं सुहात बन-गेह।
पहलें तौ नैनन अपराधी, बरजत कियौ सनेह।।
सब विधि बाँधि ठानि कर राख्यौ, ज्यों कपूर की रेह।
बार इक स्याम मिलाय "सूर" प्रभु, क्यों न सुजस-जस लेह।

(५) नाहिंन रह्यौ मन में ठौर।
नंदनंदन बिना कैसे आनिए उर और।
चलत चितवत, द्यौस जागत, स्वप्न सोवत रात।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिनु न इत-उत जात।।
कहत कथा अनेक ऊधौ, लाख लोभ दिखाय।
कहा करों 'चित्त प्रेम पूरन', घट न सिंधु समाय।।
स्याम गात, सरोज आनन, ललित गति मृदु हास।
"सूर" ऐसे दरस कों, ये मरत लोचन प्यास।।

२. लीलासक्ति –

चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहीं प्रेम-वियोग।
जहाँ भ्रम निसा होत नहिं कबहू, सो सायर सुख योग।
सनक से हंस, मीन सिवमुनिजन, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमिष नहीं ससि डर, गुंजत निगम सुवास।।
जिहिं सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल, बिमल सुकृत जल पीजै।
सो सर छाँड़ि कयों कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ रहै कहा कीजै।।
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीडत, सोभित "सूरजदास"।
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस।।

भावासक्ति—

(१) भजि सखी भाव-भाविक देव।

(२) भाव बिनु माल नफा नहिं पावै।

बाल-भाव में किशोर-भाव—सूरदासादि पुष्टि-संप्रदायी कवियों की रचनाओं में किशोर-भाव को देख कर कुछ व्यक्तियों को आश्चर्य होता है। उनके विचारानुसार उक्त कवियों की रचनाएँ केवल बाल-भाव की होनी चाहिए थीं। हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि श्री वल्लभाचार्य जी ने केवल वात्सल्य-भक्ति का ही उपदेश नहीं दिया है, बल्कि उनके मत में कांता-भाव की माधुर्य-भक्ति भी ग्राह्य है। बाल-भाव में किशोर-भाव का समावेश पुष्टि संप्रदाय की विशिष्टता है। श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीमद्भागवत दशमस्कंध पूर्वार्ध अध्याय १२ में वर्णित उक्त विषय का विवेचन "सुबोधिनी" में किया है।

सूरदास ने निम्न लिखित पदों में बाल-भाव के अंतर्गत किशोर-भाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) निपट छोटे कान्ह सुनि, जननी कहूँ बात।
होत जब समुदाय, करत तब सिसु-भाय,
एकांत पाइ कें नैंन भरि मुसिकात॥
देखि रस-रीति की प्रीति विपरीत गति,
मतिमान छाँड़ि,संग लग्यौ रह्यौ निसि-प्रात।
जात नहीं बिसरि देखि,बहुत जतन धरि समुझि,
कहूँ चंद देखे कमल हू बिकसात॥
दुरत घूंघट जबै लाल जसुमति हूँदै,
उझकि थँभि धरनि, पाँव धरि मुख किलकात।
मनहुँ आषाढ़ घन बादरी "सूर" तजि,
होत आनंद, सब फूले अति जलजात॥

(२) ग्वालिन आपु तन देखि, मेरे लाल तन देखिए।
भीत जो होय तौ, चित्र अवरेखिए॥
मेरौ तौ साँवरौ पाँच ही बरस कौ, अजहु यह रोय पय-पान माँगै।
तुम हो मस्त अति ढीठ री ग्वालिनी, फिरत अठलाति गोपाल आगै॥
मेरे तौ स्याम की तनिक सी अंगुरियाँ, ए बड़े नखन के दाग तेरें।
सष्ट करि, सुनैगौ लोग अगवार को, कहाँ पाई भुजा स्याम मेरें॥
ठगठगे नैंन बैंनन हँसी ग्वालिनी, मुख देखे सोभा अति ही बाढ़ी।
सुन सखी "सूर" सरबस हरै सांवरे, अन-उत्तर महरि के द्वार ठाढ़ी॥

श्री वल्लभाचार्य जी के वचनों का अनुसरण—गत पृष्ठों के विवेचन द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग की भक्ति-भावना को स्पष्ट करने के लिए ही अपने अधिकांश पदों की रचना की है। उन्होंने आचार्य जी रचित ग्रंथों के नामोल्लेख और उनके वचनों का अनुसरण करते हुए अपना मत प्रकट किया है। सूरदास ने अपने निम्न पद में आचार्यजी कृत "सुबोधिनी" ग्रंथ का नामोल्लेख करते हुए उसके मर्म को श्रवण करने का उपदेश दिया है—

कहा चाकरी अटकी जनकी। × ×
करम ज्ञान आसग सब देखे, वहाँ ठौर नहीं पाँव धरन की
श्री सुकदेव के बचन आश्रय, 'सुनो सुबोधिनी' टीका जिन की॥
नित्य संग करो वैष्णव कौ, सेवा करो नंद-सुवन की
"सूर" कहै मन सेवा त्यजि कैं, चिंता कहा करै उदर भरन की॥

इससे यह समझा जा सकता है कि सूरदास ने आचार्यजी कृत 'सुबोधिनी' आदि ग्रंथों का अध्ययन अवश्य किया होगा। इसकी पुष्टि आचार्य जी के कथनों के अनुसरण रूप कुछ उद्धरणों से भी होती है।

आचार्यजी ने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत की समाधि-भाषा को 'प्रस्थान चतुष्टय' के रूप में स्वीकार किया है। इन चारों में भी शरण और भक्ति के लिए उन्होंने गीता और भागवत पर विशेष बल दिया है।

सूरदास के कई पदों में गीता और भागवत का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

गीता—

हमारे सब रस गोविंद गीता।
गाय-गाय रसना जो लड़ाऊं, हरि-रस अमृत पीता॥
श्रीमुख बचन कहत कुंतीसुत, सुनि-सुनि होत प्रतीता।
या गीता के तेज प्रताप तें, दुरयोधन-दल जीता॥
जे नर गीता-पाठ करत हैं, युग-युग रहत निहचीता।
तिनकों कौन बात कौ संसय, तरे कुटुंब सहीता॥
सार कौ सार, सबन कों सुख है, चारों वेद मथि लीता†।
"सूरदास" प्रभु अघ-मोचन कों, सद्गुरु दियौ पलीता॥

---

† सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थोवत्स सुधीर भोक्ता दुग्धं गीतामृत महत्॥

भागवत—

(१) निगम कल्पतरु पक्व फल सुक मुख तें जु दयौ। ।

(२) श्रीभागवत सकल गुन-खानि* ।

(३) निगम कल्पतरु सीतल छाया ।

द्वादस पेड़, पुष्टि घन पल्लव, त्रिगुन तरुष व्यापै नहीं माया ।।
फल अति मधुर,सरस पुष्प युत,अध्याय तीन सत पैंतीस साखा ।
सुंदर श्लोक सहस्र अष्टादस, श्रीमद्भागवत उत्तम भाषा ।।
पाँच लाख पुनः सहस्र छहत्तर, अच्छर प्रांत है जु पत्रा ।
अघ अरु अज्ञान दूर करन कों, एक-एक अच्छर है निज मंत्रा ।।
नवधा भक्ति, चार मुक्ति फल,ज्ञान-बीज अरु ब्रह्म रस मीता ।
"सूरदास"श्रीमद्भागवत-भक्ति, गदगद कंठ कोउ प्रेमीजन पीता ।।

अब हम श्रीवल्लभाचार्य जी कृत ग्रंथों के कतिपय उद्धरण और सूरदास के पद उपस्थित कर यह बतलावेंगे कि सूरदास ने आचार्य जी के वचनों का किस प्रकार अनुसरण किया है ।

आचार्य जी कृत "कृष्णाश्रय" का अनुसरण—

अब तौ साँचौ कलियुग आयौ‡ ।
पुत्र-पिता कौ कह्यौ न मानत, करत आपु मन भायौ ।।
पुत्री बेचि पिता धन खायौ, दिन-दिन मोल सवायौ।
यातें बरषा अल्प भई री, कालै सब जग खायौ ।।
छिपत गोवर्धन, घटत वृंदावन, कालिंदी रूप छिपायौ ।
"सूरदास" प्रभु या कलियुग में, मोहि काहेकों जिवायौ ।।

आचार्य जी कृत "यमुनाष्टक" का अनुसरण—

हंस-सुता ° जल स्वरूप†, पुष्टि रूप*, अति अनूप,
करत स्नान अंग पाप कटत हैं ।
सिव-विरंचि-सुक-सेस रटत※, वेद विदित स्रवन गनेस,
नारद, ध्रुव, व्यास आदि गुन गनत हैं ।।

---

† पृ. १२८ की पाद टिप्पणी में दिया गया है ।

* पृ. १२३ पर दिया गया है ।

‡ "कलौ च खल धर्मिणी"

° 'जयति पद्मबंधो सुता' † 'मधोपगनिदन्तुरा' आदि

* 'तुर्यप्रियाम' ※ शिव विरंचि देव स्तुते'

भक्त रीति-प्रीति, स्यामसुंदर पास रहत नित,
काम-धर्म-अर्थ-मोक्ष‡ देत,जमदूत निरखि दूर ही तें हटत हैं॥।
यह जिय दृढ़ प्रेम ज्ञान, परम पद लहत नरा,
श्री जमुना जी की महिमा भनत'सूर'जस नाँहि घटत। है॥

आचार्य जी कृत "विवेक धैर्याश्रय" का अनुसरण—

हरि-भक्तन कों गर्व न करनौ।
यह अपराध, परम पद हू तें उतर नरक में परनौ॥
हौं कुलीन धनवान, ये भिक्षुक, ये मन में नहिं धरनौ।
राज-सिंहासन,अश्व पालकी,तासों भवसागर नहीं तरनौ॥
खान-पान बनाए भले जू, बदन पसार फेर हू मरनौ।
"सूरदास" यह सत्य कहत हौं,हरि भक्तन के संग उबरनौ॥

आचार्य जी कृत "पंचश्लोकी" का अनुसरण—

जाके हृदय हरि-धर्म नाहीं।
ताके तजे कौ दोष नाँहीं, बसिए नहीं उन माहीं§॥ × ×

आचार्य जी कृत "सुबोधिनी" का अनुसरण—

(१) चकई री चलि चरन-सरोवर, जहाँ नहिं प्रेम-वियोग¶। × ×
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त. सोभित सूरजदास।
अब न सुहाय विषय रस छिल्लर, वा समुद्र की आस॥
(२) एक निस रामकृष्ण बन जाँय॥।
सुंदर सोभा देखि रमन की, अति ही आनँद पाँय॥

---

‡ 'सकल सिद्धि हेतु'
|| 'न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः'
† 'मुकुन्द रति वर्द्धिता' तथा 'भवति वै मुकुन्दे रतिः'
†† 'स्तुतिं तव करोति कः.' आदि
* 'अभिमानश्च संत्याज्यः'
§ तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्ण बहिर्मुखाः'
¶ 'नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि शायिनम्।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥
|| शंखचूण बध वर्णन

बेनु बजाय कृष्ण तब गोपी, सबकों वहाँ बुलाय ।
'मर्यादा श्रुति सों बलदेवहिं, पुष्टि कृष्ण ढिग आय' ॥
तहाँ प्रेम सों दोउ जन बिहरत, मन हरि लीनों सोई ।
गान तान मानहिं सुर साँचे, तन सुधि रही न कोई ॥
भूषन बसन सिंगार सकल अँग, चन्दन लेप किये । × ×
"सूरदास" हरि के गुन गावत, भव दुख सबहिं भाजे ॥

(खंडिता*)

(१) मेरे आए भोर प्यारे, वा कें सब निसि जागे ।
साँची कहो तुम वाही त्रिया की सौंह, पाये प्रेम रस चोर ॥
कहुँ अंजन, कहुँ पीक लागि रही, काहे कों दुरावत नंदकिसोर
"सूरदास" प्रभु तुम बहु नायक, रंग रंगे चहुँ ओर ॥

(२) जरी कों जरायवे कों, तती तन तायवे कों,
कटी लौन ल्यायवे कों, द्वार आय खरे हो ।
रैन बसे और ठौर, अब आये मेरी ओर,
वाही पै पधारो कान्ह, जाके बस परे हो ॥
बिन गुन माल, सोहे अधर अंजन रेख,
मेरी सौंह कान्ह, अब जाओ तुम भरे हो
चार जाम बीते, मोय घड़ी भर कल्प नाँहीं,
'सूरस्याम' हिये हू तें नैंक हू न टरे हो ॥

(३) पाये हो जू जान, लाल तुम पाये हो जू जान ।
तुम सों कौन बतैया बोलै, निपट कपट की खान ॥
औरन सों तुम हँसत खेलत हो, हमसे रहे मुख तान ।
"सूरदास" प्रभु अपनी गरज कों, कहियत परम सुजान ॥

---

* स्वभावत एव खिन्ना तां त्यक्त्वा अन्यया सह स्थित रति ।
तनश्चौर्य समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति ॥ (१०-३१-१०)

पंचम परिच्छेद

काव्य-निर्णय

१. सूर-काव्य की भाषा

काव्य का कलेवर—

प्रत्येक महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। उस शैली को हृदयंगम किये बिना हम उस महाकवि के काव्य को समुचित रूप से नहीं समझ सकते। सूरदास की भी एक निजी शैली है, जिसके कारण उनको समस्त कवि समुदाय में से सरलता पूर्वक पहचाना जा सकता है।

शैली का सौन्दर्य और महत्व काव्य के कलेवर अर्थात् भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य-महत्व का मूल्यांकन करते समय उनकी भाषा-शैली पर सब प्रथम दृष्टि जाती है।

सूरदास से पहले की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो हिंदी का एक विशिष्ट रूप है। यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कतिपय कवियों के काव्य में भी ब्रजभाषा के तत्व दिखलायी देते हैं, तथापि व्यवस्थित एवं साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास ही ब्रजभाषा के आरंभिक कवि माने जाते हैं। सौरसेनी अपभ्रंश के विकसित रूप में ब्रज बोली का प्रचलन विक्रम की बारहवीं शताब्दी से ही सूरसैन प्रदेश एवं उसके निकटवर्ती बड़े भू-भाग में था। सौरसेनी से संबंधित होने के कारण इस बोली में स्वाभाविक रूप से माधुर्य गुण की विशेषता थी, जिसके कारण यह अपने क्षेत्र के लोक-गीतकारों, साधु-संतों की मंडलियों और संगीतज्ञों द्वारा शीघ्र ही अपनाली गयी। साधु-संतों को धर्म-प्रचार एवं तीर्थ-यात्रा के लिए और संगीतज्ञों को अपनी गायन-कला के प्रदर्शन के लिए दूर-दूर तक भ्रमण करना पड़ता था, जिसके कारण ब्रज की इस मधुर वाणी का परिचय ब्रज प्रदेश से बाहर के व्यक्तियों को भी होने लगा। ब्रज बोली के माधुर्य ने ब्रज प्रदेश एवं उसके सुदूरवर्ती स्थानों के कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया और उन्होंने अपनी कविता में इसका उपयोग करना आरंभ कर दिया।

सूरदास के पूर्ववर्ती ऐसे अनेक कवि होंगे, जिन्होंने ब्रज की बोली में काव्य-रचना की होगी, किंतु उनमें से अधिकांश व्यक्तियों के नाम तक आज कल अज्ञात हैं। हिंदी के इतिहासकारों ने सूरदास के पूर्ववर्ती जिन कवियों का नामोल्लेख किया है, उनमें से खुसरो की पहेलियां, नामदेव की बानियां, कबीर की साखियों और लालचदास हलवाई कृत भागवत-भाषा की दोहा-चौपाइयों में ब्रज-बोली का एक साहित्यिक रूप दिखलायी देता है; किंतु वे कवि न तो एक मात्र ब्रजभाषा के कवि थे और न उन्होंने ब्रजभाषा के व्यवस्थित रूप का उपयोग किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास से पहले ही ब्रज की बोली ने भाषा का रूप धारण कर साहित्य में स्थान तो प्राप्त कर लिया था, किंतु उसे साहित्यिक भाषा का समुचित सामर्थ्य सूरदास एवं उनके सहयोगियों की रचनाओं द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

सूरदास की ब्रजभाषा—

सूरदास के काव्य में जिस ब्रजभाषा का उपयोग हुआ है, उसमें समस्त साहित्यिक गुण विद्यमान हैं। यह ठीक है कि उनकी भाषा का रूप वैसा शुद्ध एवं परिमार्जित नहीं है, जैसा उनके परवर्ती रसखान, मतिराम बिहारी, घनानंद और देव आदि कवियों की भाषा का है, किंतु अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा उन्होंने आरंभिक अवस्था में ही इसको इतना समृद्ध एवं वैभवपूर्ण बना दिया, यह क्या कम आश्चर्य की बात है! सूरदास और उनके सह-योगियों की रचनाओं ने ब्रज की इस साधारण बोली में वह चमत्कार पैदा कर दिया था कि वह शीघ्र ही उत्तर भारत की सामान्य काव्य-भाषा के रूप में समस्त कवि-समुदाय के आकर्षण का केन्द्र बन गयी।

सूरदास की भाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ ही साथ संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। उनके विशालकाय काव्य-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके पास शब्दों का अक्षय भंडार था, जिसके कारण वे किसी भी प्रकार के भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने में सर्वथा समर्थ थे। उन्होंने एक ही बात को अनेक प्रकार और अनेक ढंगों से कहा है, जिसके कारण उनके कथन में पुनरुक्ति का सा आभास होने लगता है, किंतु वास्तव में यह सूरदास के कथन की विशिष्ट शैली है, जिसकी सफलता उनकी भाषा-समृद्धि पर आधारित है। सूरदास जैसे शब्दों के धनी ही इस प्रकार की काव्य-रचना कर सकते थे।

सूरदास की भाषा विषयक विशेषताएँ—

सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृंगार एवं वात्सल्य से संबंधित हैं, अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण अधिक परिणाम में हैं। इन गुणों के कारण कोमल-कांत पदावली का बाहुल्य उनकी भाषा की पहली विशेषता है। उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें भावों के अनुरूप उपयुक्त शब्दों का संगठन है, जिसके कारण उनका कथन चित्र के समान पाठकों को आनंदित करता है। उनकी भाषा की तीसरी विशेषता उनकी सार्थक शब्द-योजना है, जिसका सफलता पूर्वक निर्वाह उनके पदों में आरंभ से अंत तक किया गया है। उनकी चौथी विशेषता भाषा का धारावाही प्रवाह है, जो संगीत के ताल-स्वरों के कारण और भी आनंददायक हो गया है। उनकी भाषा की पाँचवीं विशेषता यह है कि यह अत्यंत बलवती और सजीव है। भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त होती है। ये बातें सूरदास की भाषा में प्रचुरता से मिलती हैं।

सूरदास की मिश्रित भाषा—

जैसा पहले लिखा जा चुका है कि सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में खड़ी बोली, पूर्वी, बुँदेलखंडी, पंजाबी, गुजराती और अरबी-फारसी के शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

उन्होंने अरबी फारसी शब्दों का बड़ी स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग किया है। मुसलमानी संसर्ग के प्रभाव से जो शब्द यहाँ की बोलचाल की भाषा में सम्मिलित होगये थे सूरदास ने उनका बहिष्कार नहीं किया, बल्कि उनको अपनी भाषा के अनुकूल बना लिया। इन शब्दों के उपयोग से उनकी भाषा मिश्रित होगयी है, किंतु साथ ही वह बलवती एवं प्रभावशालिनी भी बन गयी है।

सूरदास की कुछ रचनाओं में खड़ी बोली का मिश्रण भी मिलता है। यहाँ पर उनका एक खड़ी बोली मिश्रित भाषा का पद दिया जाता है, जिसमे खड़ी बोली का प्राचीन रूप जाना सकता है। अकबर के समय में खड़ी बोली का भी एक व्यवस्थित रूप बन रहा था। परमानंददास, नंददास और

रसखान की कतिपय रचनाओं में भी खड़ी बोली का एक रूप दिखलायी देता है। सं० १७५२ की "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में कहीं-कहीं पर शुद्ध खड़ी बोली के गद्य का रूप भी दिखलायी देता है। सूरदास का खड़ी बोली मिश्रित एक पद इस प्रकार है—

मैं योगी यश गाया, रे बाला मैं योगी यश गाया।
तेरे सुत के दरसन कारन, मैं कासी से धाया॥ रे बाला०
परब्रह्म पूरन पुरुषोत्तम सकल लोक जामाया।
अलख निरंजन देखन कारन, तीन लोक फिरि आया॥ रे बाला०
धन तेरा भाग यसोदा रानी, जिन ऐसा सुत जाया।
गुनन बड़ा छोटा मत जानो, अलख रूप धरि आया॥ रे बाला०
जो भावे सो लीजे रावर, करो आपुनी दाया।
देहु असीस मेरे बालक को, अविचल बाढ़े काया॥ रे बाला०
ना मैं लैहों पाट-पटंबर, न लैहों कंचन-माया।
मुख देखों तेरे बालक कौ, यह मेरे गुरु ने बताया॥ रे बाला०
कर जोरे विनवै नंदरानी, सुनि योगिन के राया।
मुख देखन नहिं देहों रावरे, बालक जात डराया॥ रे बाला०
काला पीला गौर रूप है, बाघंबर ओढ़ाया।
कहुँ डायन सी दृष्टी लागे, बालक जात डराया॥ रे बाला०
जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर, सो क्यों जात डराया।
तीन लोक का स्वामी मेरा, सो तेरे भवन छिपाया॥ रे बाला०
बाल कृष्ण कों ल्याइ यसोदा, कर अंचल मुख छाया।
कर पसार चरनन रज लीन्हीं, सिंगी-नाद बजाया॥ रे बाला०
अलख-अलख करि पाँय छूये हैं, हँसि बालक किलकाया।
पांच बेर परिक्रमा कीनी, अति आनंद बढ़ाया॥ रे बाला०
हरि की लीला हर मन अटक्यौ, चित नहिं चलत चलाया।
अखिल ब्रह्मांड के नायक कहिये, नंद घरहिं प्रगटाया॥ रे बाला०
इंद्र-चंद्र-सूरज-सनकादिक, सारद पार न पाया।
तुमहीं ब्रह्मा, तुमहीं विष्णु, तुमहीं ईस बताया॥ रे बाला०
तुम विश्वंभर, तुम जग-पालक, तुमहीं करत सहाया।
कहाँ बास, यह कहत यसोदा, सुन योगिन के राया॥ रे बाला०
कौन देस के योगी तुम हो, कौन नाम धराया।
"सूरदास" कहै सुनो यसोदा, शंकर नाम बताया॥ रे बाला०

९. सूर-काव्य की सरसता

काव्य की आत्मा—

यदि भाषा काव्य का कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया है। जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडंबर मात्र है। सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं।

सूरदास के काव्य में रस-परिपाक—

रसों में शृंगार रस प्रमुख है, जिसका पूर्ण परिपाक सूरदास के काव्य में हुआ है। शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ दो पक्ष होते हैं। सूरदास ने दोनों प्रकार के शृंगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक में विचरने लगता है। आचार्यों ने शृंगारिक कथन के जितने अंग बतलाये हैं, सूरदास के काव्य में उनका पूर्ण रूपेण समावेश है।

प्राचीन रस-शास्त्रियों के मतानुसार वात्सल्य भी शृंगार रस के अंतर्गत है। सूरदास के काव्य में वात्सल्य का जैसा स्वाभाविक और मर्म-स्पर्शी कथन हुआ है, वैसा किसी भी भाषा के कवि ने आज तक नहीं किया। उन्होंने वात्सल्य का ऐसा सांगोपांग एवं पूर्ण कथन किया है कि वह शृंगार के अंतर्गत "भाव" की कोटि से निकल कर विभाव, अनुभाव, संचारी आदि से परिपुष्ट स्वयं एक "रस" बन गया है। सूरदास ने शृंगार की तरह वात्सल्य के भी संयोग एवं वियोग पक्षों का कथन किया है। नंद-यशोदा द्वारा बाल कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं के सुखानुभव में वात्सल्य के संयोग पक्ष का निरूपण है, तो उनके मथुरा चले जाने के पश्चात् नंद-यशोदा के करुण क्रंदन में वात्सल्य के वियोग पक्ष का प्रतिपादन है।

हास्य रस शृंगार रस का सहयोगी और मित्र रस है। सूरदास के काव्य में शिष्ट हास्य का भी सफलता पूर्वक कथन हुआ है। अपनी भक्ति-भावना के कारण सूरदास की दृष्टि में "निर्वेद" का विशेष महत्व नहीं है, अतः उन्होंने शांत रस के कथन अपेक्षाकृत कम किये हैं, तब भी उनके "विनय" के पदों में शांत रस का भी यथेष्ट आभास मिल जाता है। इन रसों के

अतिरिक्त अन्य रसों का भी सूरदास ने बड़ी मार्मिकता के साथ कथन किया है। यहाँ पर सूरदास द्वारा रचे हुए विभिन्न रसों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का कुछ ज्ञान हो सकता है।

१. श्रृंगार रस—

(संयोग श्रृंगार)

नवल निकुंज, नवल नवला मिलि, नवल निकेतनि रुचिर बनाए।
विलसत विपिन विलास विविध वर, वारिज बदन विकच सचुपाए॥
लागत चंद्र मयूख गुतौ तनु, लता-भवन-रंध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर, सींचत सुधा धार सत नाए॥
सुनि-सुनि स्रवति स्रवन सुंदरी, मौन किए मोरति मन लाए।
"सूर" सखी राधा-माधौ मिलि, क्रीड़त हैं रति-पतिहिं लजाए॥

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनें उर धरिया॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकत मनि कंचन में जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
"सूरदास" बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर वृषभानु-कुँवरिया॥

(विप्रलंभ श्रृंगार)

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम-ज्वाल की पुंजैं॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार संजीवनि, दधिसुत-किरन भानु भई भुंजैं॥
ए ऊधो! कहियो माधव सों, बिरह-कदन करि मारत लुंजैं।
"सूरदास" प्रभु कौ मग जोवत, अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं॥

निसि-दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहू, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर बिच बहत पनारे॥
"सूरदास" प्रभु अंबु बढ्यौ है, गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुंदर, बिकल होत अति भारे॥

वियोग की दस दशाएँ—काव्यशास्त्र के आचार्यों में विप्रलंभ श्रृंगार में वियोग की निम्न लिखित दस दशाएँ मानी हैं—

१. अभिलाषा, २. चिंता, ३. स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग
६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८ व्याधि, ९. जड़ता और १० मूर्च्छा

सूरदास ने इन दसों दशाओं का बड़ा मार्मिक कथन किया है। यहाँ पर हम उनके तत्संबंधी पद उपस्थित करते हैं।

(१ अभिलाषा)

ऊधौ ! स्याम इहाँ लै आवहु।
ब्रज-जन चातक मरत पियासे, स्वाँति बूंद बरसावहु॥
ह्याँ तें जाहु, बिलंब करहु जिनि, हमरी दसा जनावहु।
घोष सरोज भये हैं संपुट, होइ दिनमनि बिगसावहु॥
जो ऊधौ हरि इहाँ न आवहिं, तौ हमैं वहाँ बुलावहु।
"सूरदास" प्रभु हमहिं मिलावहु, तब तिहुँ पुर यस पावहु॥

(२. चिंता)

मधुकर ! ये नयना पै हारे।
निरखि-निरखि मग कमल-नयन कौ, प्रेम-मगन भए भारे॥
ता दिन तें नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे।
सपन, तुरी, जागत पुनि सोई, जो हैं हृदय हमारे॥
यह निर्गुन लै ताहि बतावौ, जो जानैं याके सारे।
"सूरदास" गोपाल छाँड़ि कें, चूसैं टेंटी खारे॥

(३. स्मरण)

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं, जे नँदलाल कही॥
एक दिवस मेरे गृह आए, मैं ही मथति दही।
देखि तिन्हैं मैं मान कियौ सखि, सो हरि गुसा गही॥
सोचति अति पछितात राधिका, मुर्छित धरनि ढही।
"सूरदास" प्रभु के बिछुरे तें, बिथा न जाति सही॥

(४. गुण-कथन)

इहिं बिरियाँ बन तें ब्रज आवते ।
दूरहिं तें वह बैनु अधर धरि, बारंबार बजावते ॥
कबहुँक काहू भाँति चतुर चित, अति ऊँचे सुर गावते ।
कबहुँक लै-लै नाम मनोहर, धवरी धेनु बुलावते ॥
इहि बिधि बचन सुनाय स्यामघन,मुरछे मदन जगावते ।
आगम सुख उपचार बिरह-ज्वर,बासर-ताप नसावते ॥
रुचि-रुचि प्रेम पियासे नैनन, क्रम क्रम बलहिं बढ़ावते ।
'सूरदास'स्वामी तिहि अवसर,पुनि-पुनि प्रगट करावते ॥

(५. उद्वेग)

हमारे माई ! मोरउ बैर परे ।
घन गरजें, बरजें नहिं मानत, त्यों-त्यों रटत खरे ॥
करि एक ठौर बीनि इनके पँख, मोहन सीस धरे ।
याहीं तें हम ही कों मारत, हरि ही ढीठ करे ॥
कह जानिए कौन गुन, सखि री ! हम सों रहत अरे ।
"सूरदास" पर देस बसत हरि, ये बन तें न टरे ॥

(६. प्रलाप)

मधुबन ! तुम कत रहत हरे !
बिरह-वियोग स्यामसुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ?
तुम हो निलज, लाज नहिं तुम कों, फिर सिर पुहुप धरे ।
ससा, स्यार औरु बन के पखेरू, धिक-धिक सबन करे ॥
कौन काज ठाढ़े रहे बन में, काहे न उकठि परे ?

(७. उन्माद)

कर धनु लै किन चंदहिं मारि ?
तू हरुवाय जाय मंदिर चढ़ि, ससि सन्मुख दरपन बिस्तारि ।
याही भाँति बुलाय, मुकुर अति खंड-खंड कर डारि ॥

(८. व्याधि)

औरु सकल अंगन तें ऊधौ ! अँखियाँ बहुत दुखारी ।
अधिक पिराति, सिराति न कबहूँ, अनेक जतन करि हारी ॥

चितवत मग, सुनिमेष न मिलवत विरह विकल भई भारी।
भरि गई विरह-बाय माधौ के, इकटक रहत उघारी ॥
अलि आली गुरु ज्ञान सलाका, क्यों सहि सकति तुम्हारी।
"सूर" सु अंजन आँजि रूप-रस, आरति हरो हमारी ॥

(९. जड़ता)

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखिअत ऐसी, मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ॥
सूखे बदन, स्रवत नैनन तें जल-धारा उर बाढ़ी।
कंधनि बाँह धरैं चितवति द्रुम, मनहुँ बेलि दव डाढ़ी ॥
नीरस करि छाँड़ी सुफलक-सुत, जैसे दूध बिन साढ़ी।
"सूरदास" अक्रूर-कृपा तें, सही विपति तनु गाढ़ी ॥

(१०. मूर्छा)

जबहिं कह्यो ये स्याम नहीं।
परीं मुरछि धरनी ब्रज-बाला, जो जहँ रही सु तहीं ॥
सपने की रजधानी ह्वै गई, जो जागी कछु नाहीं।
बार-बार रथ ओर निहारहीं, स्याम बिना अकुलाहीं ॥
कहा आय करि हैं ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी।
"सूर" कहत सब ऊधौ आए, गई स्याम-सर मारी ॥

वात्सल्य—

(संयोग)

(१) सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चीरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल कों टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
"सूरदास" स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥

(२) जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आजु अति ही बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरैं सुर गावति ॥
पौढ़ि गई हरुएँ करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँमुआने।
कर सों ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने ॥
पौढ़ौ लाल, कथा इक कहि हौं, अति मीठी, स्रवननि कों प्यारी।
यह सुनि "सूर" स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी ॥

(३) आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी।
तारी दै-दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी॥
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै॥
जसुमति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै॥
केहरि-नख उर पर रुरै, सुठि सोभा कारी।
मनों स्याम घन मध्य में, नव ससि उजियारी॥
गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघर वारे।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे॥
कठुला कंठ चिबुक-तरैं, मुख दसन बिराजैं।
खंजन बिच सुक आनि कैं, मनु परयौ दुराजैं॥
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखत जिय तें।
"सूरदास" प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तें॥

(वियोग)

(१) यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि, मेरे मोहन के मुख जोग॥
प्रात काल उठि माखन-रोटी, को बिनु माँगे दैहै।
अब उहिं मेरे कुँवर कान्ह कों, छिन-छिन अंकम लैहै॥
कहियौ पथिक! जाइ घर आवहु, राम-कृष्ण दोउ भैया।
"सूर" स्याम कत होत दुखारी, जिनकें मो सी मैया॥

(२) सँदेसौ देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातौ जल, देखत ही भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत, सोइ-सोइ देती, करम-करम करि न्हाते॥
तुम तौ टेव जानतिहिं ह्वैहौ, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतहिं, माखन-रोटी भावै॥
अब यह 'सूर' मोहिं निसि-बासर, बड़ौ हत जिय सोच।
अब मेरे अलक-लडैते लालन, ह्वै हैं करत सँकोच॥

(३) मेरे कुँवर कान्ह बिन सब, कछु वैसैहि धर्यौ रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गनि सूल महै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज में आनंद हुतौ, मुनि मनसाहू न गहै।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै॥

२. हास्य रस—

सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीला के प्रसंगों में ही कई स्थानों पर स्मित हास्य की बड़ी सुंदर व्यंजना की है। जब बालक कृष्ण माखन चुरा कर खाते हुए पकड़ लिये जाते हैं, तब वे अपने मुँह पर लगे हुए माखन को पोंछते हुए और हाथ के दोंना को पीठ के पीछे छिपाते हुए किस प्रकार अपनी सफाई दे रहे हैं। उनकी इस चेष्टा पर स्वाभाविक रूप से मंद हास्य की छटा छा जाती है—

मैया! मैं नहीं माखन खायौ।
ख्याल परें ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ॥
देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ।
तु ही निरखि नन्हें कर अपनें, मैं कैसैं करि पायौ॥
मुखि दधि पोंछि, बुद्धि एक कीन्हीं, दौना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ॥
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
"सूरदास" जसुमति कौ यह सुख सिव-बिरंचि नहीं पायौ॥

इसी प्रकार स्मित हास्य का एक दूसरा प्रसंग देखिये। राधिका अपनी माता से यशोदा के साथ अपने वार्तालाप की कथा कह रही है और उसकी माता अपनी पुत्री की बालोचित चपलता पर मन ही मन हँस रही है—

मेरे आगें महरि यसोदा, मैया री! तोहिं गारी दीन्ही।
याकी बात सबै मैं जानति, वै जैसी, तैसी मैं चीन्ही॥
तो कौं कहि, पुनि कह्यौ बबा कौं, बड़ौ धूर्त्त बृषभान।
तब मैं कह्यौ, ठग्यौ कब तुम कौं, हँसि लागी लपटान॥
भली कही तैं मेरी बेटी! लयौ आपुनौ दाउ।
जो मुँह कह्यौ, सबै उनके गुन, हँसि-हँसि कहति सुभाउ॥
फेरि-फेरि बूझति राधा सौं, सुनति हँसति सब नारि।
"सूरदास" बृषभान-घरनि, यसुमति कौं गावति गारि॥

उद्धव-गोपी संवाद में सूरदास ने गोपियों द्वारा उद्धव के निर्गुण ज्ञान का मज़ाक़ उड़ाते हुए भी हास्य रस का सुंदर प्रदर्शन किया है—

निर्गुन कौन देस कौ बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसौ बरन, भेस है कैसौ, केहि रस कैं अभिलासी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपुनौ, जो रे ! गहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सौ, "सूर" सबै मति नासी ।

३. वीर रस—

(१) गह्यौ कर स्याम भुज मल्ल अपने धाइ,
झटकि लीन्हों तुरत पटकि धरनी ।
भटक अति अति सब्द भयौ, खुटक नृप कें हिएँ,
अटक प्रानन परयौ चटक करनी ॥
लटकि निरखन लग्यौ, मटकि सब भूलि गयौ,
हटकि गयौ गटक सब, मीच जागी ।
मुष्टिकैं मरदि, चागूर चुरकट करयौ,
कंस कौं कंप भयौ,उई रंग भूमि अनुराग रागी ॥

(२) देखि नृप तमकि, हरि चमक तहाँई गए,
दमकि लीन्हों गिरह बाज जैसें ।
धमकि मारयौ, घाउ गुमकि हृदयैं रह्यौ,
झमकि गहि केस, लै चले ऐसैं ॥
टेल हलधर दियौ, झेल तब हरि लियौ,
महल कें तरैं, धरनी गिरायौ ।
अमर जय-ध्वनि भई, धरन त्रिभुवन गई,
कंस मारयौ निदरि देवरायौ ॥
धन्य बानी गगन, धरनि-पाताल धन्य,
धन्य हो धन्य बसुदेव-ताता ।
धन्य अवतार सुर-धरनि उपकार कों,
"सूर" प्रभु धन्य बलराम भ्राता ॥

(३) आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा-जननी कों, सांतनु-सुत न कहाऊँ॥
स्यंदन खंडि, महारथ खंडौं, कपिध्वज सहित डुलाऊँ।
इती न करौं सपथ मोहि हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ॥
पांडव दल सनमुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
"सूरदास" रन-भूमि विजय बिनु, जियत न पीठ दिखाऊँ॥

(शृंगार मे वीर रस)

रूँधे रति-संग्राम खेत नीके।
एक तें एक रनवीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नेंक, अति सबल जी के॥
भौंह कोदंड, सर नैन जोधान की, काम छूटनि कटाच्छनि निहारें।
हँसनि द्विज चमक, करि बरनि लोहन भलक, नखन-छत-घात नेजा सँभारें॥
पीत पट डारि कंचुकी मोचति करनि, कवच सन्नाह ए छुटे तन तें।
भुजा भुज धरति, मनों द्विरद सुंडनि लरति, उर-उरन भिरे, दोउ जुरे मननें।
लटकि लपटानि मानों सुभट लरि परे खेत, रति-सेज चुम बितान कीन्हों।
'सूर' प्रभु रसिक प्रिय, राधिका रसिकिनी, कोक-गुन सहित सुख लूटि लीन्हों॥

४. करुण रस—

(१) अति मलीन वृषभानु-कुमारी।
हरि-स्रम-जल अंतर तनु भीजे, ता लालच न धुवावति सारी॥
अधोमुख रहति, उरधि नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक विरहिन दूजै अलि जारी।
"सूर" स्याम बिनु यों जीवति हैं, ब्रज-बनिता सब स्याम-दुलारी॥

(२) देखी मैं लोचन चुअत अचेत।
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत, ऊरध स्वांस न लेत।
स्रवन न सुनत चित्र-पुतरी लौं, समुझावत जितनेत॥
कहूँ कंकन, कहुँ गिरी मुद्रिका, कहूँ ताटंक, कहुँ नेत।
भुज होइ सूखि रही "सूरज" प्रभु, बँधी तुम्हारे हेत॥

५. वीभत्स रस—

सूरदास की कविता का विषय और उनकी प्रकृति वीभत्स रस के सर्वथा प्रतिकूल है, अतः विशाल काय सूर-सहित्य में वीभत्स रस के उल्लेखनीय उदाहरण कठिनता से ही मिलेंगे।

६. अद्भुत रस—

(१) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपने रँग खेलत॥
सिव सोवत, विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यौ, सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत॥
मुनि-मन भीत भए, भुवि कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे "सूर" सकट पग ठेलत॥

(२) मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल वृच्छहु फले॥
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम, अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि, न रहति थिर चित जती जोग बिसारि॥
ग्वाल घर-घर सहज सोवत, रहे सहज सुभाय।
"सूर" प्रभु रस-रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाय॥

(३) देखौ अद्भुत अविगत की गति, कैसौ रूप धर्यौ है।
तीन लोक जाके उदर बसत, सो सूप के कौन पर्यौ है।
जाके नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यौ।
ताकौ नाल छीनि ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सों बाँध्यौ॥
जिहि मुख कों समाधि सिव साधी, आराधन ठहराने।
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने॥
जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै।
तिन स्रवनन ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै॥
बिस्व भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैं।
रूप बिराट कोटि प्रति रोमन, पलना माँझ परे हैं॥
जिहि भुज-बल प्रहलाद उबार्यौ, हिरनकसिप उर फारे।
सो भुज पकरि कहत ब्रज-नारी, ठाढ़े होहु लला रे॥
जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी।
सोई "सूर" प्रगट या ब्रज में, गोकुल-गोप बिहारी॥

७. भयानक रस—

(१) भहरात भहरात दावानल आयौ ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन,
धरनि आकास चहुँ पास छायौ ॥
बरत बन बाँस, थरहरत कुस-काँस,
जरि उड़त बहु झाँस, अति प्रबल धायौ ।
झपटि झपटत लपट, फूल फूटत पटकि,
द्रुम चटकि लट लटकि, फटि नवायौ ॥
अति अगिनि भार भंभार धुंधार करि,
उचटि अंगार झंझार छायौ ।
बरत बन-पात, भहरात, भहरात,
अररात तरु महा धरनी गिरायौ ॥

(२) मेघ दल प्रबल ब्रज-लोग देखे ।
चकित जहँ-तहँ भये, निरखि बादर नये,
ग्वाल-गोपाल डरि गगन पेखे ॥
ऐसे बादर सजल, करत अति महा बल,
चलत घहरात करि अंध काला ।
चकृत भये नंद, सब महर चकृत भये,
चकृत नर-नारि, हरि करत ख्याला ॥
घटा घनघोर घहरात, अररात,
दररात सररात, ब्रज-लोग डरपैं ।
तड़ित आघात, तररात, उतपात सुनि,
नर-नारि सकुचि तनु-प्रान अरपैं ॥

८. रौद्र रस—

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ ।
बज्र-घातनि करौं चूरन, देउँ धरनि मिलाइ ॥
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ ।
जल बरसि ब्रज धोइ डारौं, लोग देउँ बहाइ ॥
ख्रात खेलत रहैं नीके, करि उपाधि बनाइ ।
बरस दिवस मोहि देत पूजा, दई सोउ मिटाइ ॥
रिस सहित सुरराज लीन्हे, प्रबल मेघ बुलाइ ।
"सूर" सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ ब्रज पर धाइ ॥

६. शांत रस—

(१) नर ! तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भर्यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ॥
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवनांन, गुरुगोविंद नहिं कीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया में दीनौ ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बल हीनौ ॥
लख चौरासी जोनि भरमि कै, फिरि वाहीं मन दीनौ ।
"सूरदास" भगवंत-भजन बिनु, ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥

(२) माधौ जू ! मन माया बस कीन्हौ ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाँहीं, ज्यों पतंग तन दीन्हौ ॥
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर ।
मैं मति-हीन मरम नहिं जान्यौ, पर्यौ अधिक करि दौर ॥
बिवस भयौं निलिनी के सुक ज्यों, बिन गुन मोहि गह्यौ ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौ ॥
बहुतक दिवस भए या जग में, भ्रमत फिर्यौ मति-हीन ।
"सूर" स्यामसुंदर जो सेवै, क्यों होवै गति दीन ।

(३) अरे जीवन भयौ तन भारौ ।
कियौ न संत समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ ॥
अति उनमत्त मोह-माया बस, नहिं कछु बात बिचारौ ।
करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ ॥
इंद्री-स्वाद बिबस निसि-बासर, आप अपुनपौ हारौ ।
जल औंड़ में चहूँ दिसि पैर्यौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ ॥
बाँधी मोट पसारि त्रिबिधि गुन, नहिं कहुँ बीच उतारौ ।
देख्यौ "सूर" बिचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारौ ॥

(४) जनम सिरानौ अटकैं-अटकैं ।
राज-काज, सुत, बित की डोरी, बिन बिवेक फिर्यौ भटकैं ॥
कठिन जु गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं ।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीच ही लटकैं ॥
ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं ।
"सूरदास" सोभा क्यों पावै, पिय बिहीन धनि मटकैं ॥

सूर-काव्य का नायिकाभेद—

काव्य शास्त्र के अनुसार शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद का स्थान है, इसलिए वह रस प्रकरण का ही एक अंग है, किंतु रीति कालीन कवियों ने उसका ऐसा विस्तृत एवं सांगोपांग कथन किया है कि वह एक स्वतंत्र विषय बन गया है।

भक्ति कालीन कवियों ने अपने भक्ति भाव की अभिव्यक्ति के लिए अपने इष्ट देव का शृंगार रस पूर्ण कथन करने की पद्धति प्रचलित की जिसमें नायिकाभेद का स्वतः समावेश होगया। रीति कालीन कवियों को भक्त कवियों के नायिका-वर्णन के रूप में शृंगारिक कथन की एक आकर्षक शैली प्राप्त हुई, जिसमें आलंबन का भेद कर उन्होंने अपना चमत्कारिक कवित्व उपस्थित किया। उन्होंने लक्षण और उदाहरण के रूप में नायिकाभेद का ऐसा व्यापक वर्णन किया कि वह शृंगार रस के उपांग की कोटि से निकल कर स्वयं एक शास्त्र बन गया।

भक्ति कालीन कवि होने के कारण सूरदास ने नायिकाभेद का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत नहीं किया है, किंतु उनके शृंगारिक कथन में नायिकाभेद का स्वाभाविक विकास है। कुछ विद्वान "साहित्य-लहरी" की रचना में रीति कालीन कवियों की सी प्रवृत्ति पाते हैं, किंतु इसमें भी नायिकाओं का लक्षण रहित वर्णन है, जो रीति कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का ऐसा विशद वर्णन किया है कि इसमें नायिकाभेदोक्त कथन भी प्रचुर परिमाण में आ गये हैं। राधा-कृष्ण के पारस्परिक अनुराग के क्रमिक विकास, उनके संयोग एवं वियोग की अनेक चेष्टाओं तथा उनके मान, उपालंभ, मिलन आदि के विविध कथनों में नायिका के अधिकांश भेदोपभेदों के तत्व आगये हैं।

पुष्टि संप्रदाय में स्वकीया भक्ति का महत्व है, अतः सूर-काव्य में स्वकीया नायिका के अनुकूल अज्ञातयौवना से लेकर मध्या, प्रौढ़ा नायिकाओं के प्रायः समस्त भेदोपभेदों का समावेश हो गया है। चैतन्य संप्रदाय की भाँति वल्लभ संप्रदाय में परकीया भक्ति ग्राह्य नहीं है, अतः सूर-काव्य में परकीया नायिका के कथन कम मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय की भक्ति-भावना के अनुसार राधाजी स्वकीया और चंद्रावली जी परकीया हैं। गोपियों में अधिकांश

ने स्वकीया भाव से ही श्री कृष्ण से प्रेम किया था, इसलिए उनके वर्णन में भी स्वकीया तत्व का प्राधान्य है, किंतु उनके प्रेमानुराग और तत्संबंधी उनकी विविध चेष्टाओं में कहीं-कहीं परकीया तत्व की भी अभिव्यंजना हो जाती है। इसके अतिरिक्त सूर-काव्य में गर्विता, मानवती आदि दशानुसार तथा प्रोषितपतिका, अभिसारिका, खंडिता आदि अवस्थानुसार नायिकाओं के बड़े विस्तृत वर्णन मिलते हैं। रीति कालीन कवियों की भाँति सूरदास ने लक्षण सहित नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं किया है, तब भी उनके पदों में नायिकाभेद की अधिकांश नायिकाओं का कथन होगया है। यहाँ पर हम उनके कुछ ऐसे पद उपस्थित करेंगे, जिनमें नायिकाभेद के अनुकूल कथन मिलते हैं।

दान-लीला में श्रीकृष्ण ने ब्रज-बालाओं के विकसित अंगों का ध्यान उनके उपमानों द्वारा दिलाया है, किंतु उनको इनका ज्ञान नहीं है। इस प्रकार निम्न पद में 'अज्ञातयौवना' के अनुकूल कथन मिलता है—

यह सुनि चकृत भई ब्रज-बाला।
तरुनी सब आपस में बूझति, कहा कहत गोपाला॥
कहाँ तुरग, कहाँ गज-केहरि, कहाँ हंस-सरोवर सुनिए।
कंचन कलस गढ़ाए कब हम, देखे धौं यह गुनिए॥
कोकिल, कीर, कपोत बनन में, मृग, खंजन, सुक संग।
तिनकौ दान लेत है हम सों, देखहु इनको रंग॥
चंदन, चौर, सुगंध बतावत, कहाँ हमारे पास।
"सूरदास" जो ऐसे दानी, देखि लेहु चहुँ पास॥

निम्न लिखित पदों में प्रौढ़ा के अंतर्गत 'रतिप्रीता' और 'आनंद संमोहिता' नायिकाओं के अनुकूल तत्व मिलते हैं—

(१) नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
नव तरुवर बिहार दोउ क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरिकैं, पीक कपोलनि दागे।
अति रस-रासि लुटावत लटत, लालचि लाल सभागे॥
मानहुँ "सूर" कलपद्रुम की निधि, लै उतरी फल आगे।
नहिं छूटति रति रुचिर भामिनी, वा सुख में दोउ पागे॥

(२) नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ॥
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्यामा-स्याम उमँगि रस भरिया ।
यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यों, मरकतमनि कंचन में जरिया ॥
उपमा काहि देउँ, को लाइक, मनमथ कोटि वारनै करिया ।
"सूरदास" बलि-बलि जोरी पर, नंदकुँवर वृषभानु कुँवरिया ॥

निम्न लिखित पद में अधीरा नायिका के अनुकूल कथन हुआ है—

मोहि छुवौ जिनि दूरि रहौ जू ।
जाकों हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू ॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी ।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमकों भई हाँसी ॥
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माँहीं ।
सुनहुँ 'सूर' मो तनकों इकटक चितवति, डरपति नाँहीं ॥

परकीया प्रेम के उदाहरण सूर-काव्य में कम मिलते हैं, फिर भी निम्न पदों में परकीया नायिका के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

(१) पलक ओट नहिं होत कन्हाई ।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई ॥
नयन जहाँ दरसन हरि अटके, स्रवन थके सुनि बचन सोहाई ।
रसना और नहीं कछु भाषत, , स्याम-स्याम रट रहै लगाई ॥
चित चंचल सँगहिं संग डोलत, लोक-लाज-मर्याद मिटाई ।
मन हरि लियौ "सूर" प्रभु तबहीं, तनु बपुरे की कहा बसाई ॥

(२) थकित भए मोहन-मुख-नैन ।
घूँघट ओट न मानत कैसेहुँ बरजत-बरजत कीन्हौं गौन ॥
निदरि गई मर्यादा कुल की, अपनौ भायौ कीन्हौं ।
मिले जाय हरि आतुर ह्वै कैं, लूटि सुधा-रस लीन्हौं ॥

नायिकाभेद के आचार्योंने परकीया नायिका के अंतर्गत 'वचन विदग्धा' और 'क्रिया विदग्धा' का वर्णन किया है । सूरदास ने राधा और गोपियों की चेष्टाओं में कई स्थानों पर वचन और क्रिया की विदग्धता दिखलायी है । चाहें इन पदों में परकीयत्व की भावना न हो, किंतु इनमें विदग्धता अवश्य है । निम्न लिखित पद में 'वचन विदग्धा' नायिका के अनुकूल कथन हुआ है--

तब राधा इक भाव बतावति।
मुरु मुसुकाइ सकुचि पुनि लीन्हौं, सहज चली अलकैं निरुवारति॥
एक सखी आवत जल लीन्हें, तासों कहति सुनावति।
टेरि कह्यौ घर मेरे ऐहौ, मैं जमुना तें आवति॥
तब सुख पाइ चले हरि घर कों, हरि प्यारीहिं मनावत।
"सूरज" प्रभु वितपन्न कोक-गुन, तातें हरि-हरि ध्यावत॥

निम्न लिखित पद में 'क्रिया विदग्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

स्याम अचानक आय गये री।
मैं बैठी गुरु जन बिच सजनी, देखत ही मेरे नैन नये री॥
तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बेंदी सों कर परस किये री।
आपु हँसे उत पाग मसकि हरि, अंतरयामी जान लिये री॥
लै कर कमल अधर परसायौ, देखि हरषि पुनि हृदय धरयौ री।
चरन छुवै दोउ नैन लगाये, मैं अपुने भुज अंक भरयौ री॥
ठाढ़े रहे द्वार अति हित करि, तब ही तें मन चोरि गयौ री।
"सूरदास" कछु दोष न मेरौ, उत गुरुजन, इत हेतु नयौ री॥

नायिका के दशानुसार भेदों में 'अन्यसंभोग दुःखिता' के अनुकूल कथन सूरदास के निम्न पद में इस प्रकार प्राप्त होता है—

यह कहि मुख, मन सोचई, भई सौति हमारी।
ऐसी सुंदर नारि कों, जब ही वे पैहैं।
दोउ भुज भरि अँकवारि कैं, हँसि कंठ लगै हैं॥
यह बैरिन मो कों भई, धौं कहँ तें आई।
स्यामहिं बस करि लेइगी, मैं जानी माई॥

दशानुसार भेदों में मानवती नायिका का प्रमुख स्थान है। नायक के दोष का अनुमान कर नायिका का कोप पूर्वक मान करना और नायक द्वारा उसे मनाना शृंगारिक प्रकरण का महत्वपूर्ण अंग है। सूरदास ने 'मानवती' नायिका का इस प्रकार कथन किया है—

कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ।
तुमतें को है भावती, सो हृदय बसाऊँ॥
तुमहिं स्रवन, तुम नैन हौ, तुम प्रान अधारा।
वृथा क्रोध तिय क्यों करौ, कहि बारंबारा॥
भुज गहि ताहि बतावहू, जो हृदय बतावति।
"सूरज" प्रभु कहैं नागरी, तुम तें को भावति॥

शृंगार रस के अंतर्गत "दूती" का भी कथन किया जाता है। नायक-नायिका को मिलाना उसका मुख्य कार्य है। एक दूती मानवती नायिका से अपना मान छोड़ कर प्रियतम से मिलने का किस प्रकार आग्रह कर रही है, वह निम्न लिखित पद में देखिए। इस पद में बसंत ऋतु का उद्दीपक प्रभाव बतलाया गया है—

यह ऋतु रूसिबे की नाँहीं।
बरसत मेघ मेदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाहीं, ते तरुवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं॥
जोबन-धन है दिवस चारि कौ, ज्यौं बदरी की छाहीं।
मैं दंपति-रस-रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं॥

अवस्था के अनुसार दश विध नायिकाओं का कथन किया जाता है। निम्न लिखित पद में 'वासकसज्जा' नायिका के अनुकूल कथन किया गया है—

राधा रचि-रचि सेज सँभारति।
भवन गमन करि हैं हरि मेरे, हरषि दुखहिं निरवारति।
ता पर सुमन सुगंध बिछावति, बारंबार निहारति॥ ×

निम्न लिखित पद में "उत्कंठिता" नायिका की प्रिय-मिलन विषयक उत्सुकता दिखलायी गयी है—

चंद्रावली स्याम-मग जोवति।
कबहुँ सेज कर झारि सँवारति, कबहुँ मलय-रज भोवति॥
कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै-लै पुनि धोवति।
कबहुँ भवन, कबहूँ आँगन ह्वै, ऐसे रैनि बिगोवति॥
कबहुँक बिरह जरति अति व्याकुल, आकुलता मन में अति।
"सूरस्याम" बहु रमनि-रमन पिय, यह कहि तव गुन तोवति॥

निम्न लिखित पद 'अभिसारिका' नायिका का उदाहरण है—

प्यारी अंग शृंगार कियौ।
बैनी रची सुभग कर अपने, टीकौ भाल दियौ॥
मोतियन माँग सँवारि प्रथम ही, केसरि-आड़ सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरवन छवि, को कवि कहै निवारि॥
नासा नथ अति ही छवि राजत, बीरा अधरन रंग।
नवसत साजि चली चोली बनि, "सूर" मिलन हरि संग॥

निम्न लिखित पद में 'विप्रलब्धा' के अनुकूल कथन ज्ञात होता है—

सोचति चली कुँवर घर ही तें, खरिकहिं गइ समुहाइ।
कब देखौं वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ॥
देखौ जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलत, लागी प्रीति खुम्हारि॥

सूरदास के पदों में 'खंडिता' नायिका के अनुकूल कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। निम्न लिखित पद में प्रातःकाल आये हुए नायक के तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्नों का कथन किया गया है—

जानति हौं जैसे गुननि भरे हो।
काहे कों दुराव करत मनमोहन, सोइ पै कहौ तुम जहाँ ढरे हो।
निसि जागत, निज भवन न भावत, आलसवंत सब अंग धरे हो।
चंदन तिलक मिल्यौ कहाँ वंदन, काम कुटिल कुच उर उघरे हो॥
तुम अति कुसल किसोर नंद-सुत, कहो कौन के चित्त हरे हो।
औचक ही जिय जानि "सूर" प्रभु, सौंह करन कों होत खरे हो॥

सूरदास ने वियोग श्रृंगार का बड़ा मार्मिक कथन किया है। उन्होंने ऐसे अनेक पदों की रचना की है, जिनमें 'प्रोषितपतिका' विरहणी नायिका के अनुकूल कथन प्राप्त होता है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् गोपियों का करुण क्रंदन इसी प्रकार का है।

(१) हरि! परदेस बहुत दिन लाये।
कारी घटा देखि बादर की, नैन नीर भरि आये॥
बीर बटाऊ पंथी हो तुम, कौन देस तें आये?
इह पाती हमरी लै दीजो, जहाँ साँवरे छाये॥
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मदन जगाये।
"सूरदास" गोकुल के बिछुरे, आपुन भये पराये॥

(२) बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि नैनन की परतीति गई।
उड़ि न मिले हरि संग बिहंगम, ह्वै न गए घनस्याम-मई॥
यातें क्रूर कुटिल सह मेचक, वृथा मीन-छबि छीनि लई।
रूप-रसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई॥
अब काहे सोचत, जल मोचत, समय गए नित सूल नई।
"सूरदास" याहीं तें जड़ भए, जब तें पलकन दगा दई॥

३. सूर-काव्य की कलात्मकता

भक्ति और कला का मिश्रण—

यद्यपि सूरदास अपने काव्य-महत्व के कारण हिंदी कवियों के मुकुट-मणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने कवि के दृष्टिकोण से अपने काव्य की रचना नहीं की है। उनके काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि। अपने इष्टदेव की भक्ति-भावना में आनंद विभोर होकर उन्होंने जो कुछ गाया है, वह भक्ति-काव्य की श्रेष्ठतम कृति है, इसलिए वह भक्ति रस से ओत-प्रोत है; किंतु साथ ही साथ उसमें काव्य-कला के भी समस्त गुण विद्यमान हैं। इन गुणों को लाने के लिए उनको अपनी ओर से कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ी है। उनके स्वाभाविक भक्ति-काव्य के धारावाही महानद में काव्य-कला के अनेक गुण छोटे-बड़े नदी-नालों की तरह स्वयं आकर मिल गये हैं! अवश्य ही इनके कारण उनके काव्य का महत्व और भी अधिक हो गया है। यहाँ पर हम कला की दृष्टि से सूर काव्य की आलोचना करेंगे।

कोई कवि अपने भावों को किस प्रकार चमत्कारिक ढंग से व्यक्त करता है, इसकी छान-बीन करना उक्त कवि के कला-कौशल की आलोचना कहलाती है। कवि शब्द द्वारा अथवा अर्थ द्वारा अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है। इस काव्योक्त चमत्कार को काव्य शास्त्रियों ने 'अलंकार' कहा है, जो शब्दालंकार और अर्थालंकार के नाम से दो वर्गों में विभाजित है। शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होने से उभयालंकार कहा जाता है। कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि के लिए अलंकार रूपी वस्त्राभूषण यदि अनिवार्य नहीं, तो कुछ न कुछ आवश्यक अवश्य हैं। दंडी आदि प्राचीन आचार्यों ने अलंकार को काव्य की आत्मा बतलाया है। अन्य आचार्यों ने भी किसी न किसी रूप में इसका महत्व माना है।

हिंदी कवियों में दो प्रकार के कवि पाये जाते हैं। इनको भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के रूप में दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। साधारणतया भक्ति-कालीन कवि भाव-पक्ष के एवं रीति-कालीन कवि कला-पक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भाव-पक्ष के कवि हैं, तथापि उनकी भाव रूपी भागीरथी में कला रूपी कालिंदी भी आ मिली है। इस संगम के फल स्वरूप उनका काव्य अतीव आनंददायक हो गया है।

काव्य-कला और अलंकार—

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिए अलंकारों पर सर्व प्रथम दृष्टि जाती है । सूर-काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप का भी समावेश है । सूरदास की अलंकार-योजना केशवदास जैसे चमत्कारवादी कवि की भाँति साध्य रूप में नहीं है, वरन् वह भाव-पक्ष की अभिव्यंजना का साधन मात्र बन कर आयी है ।

रीति काल के कुछ कवियों ने अलंकारों के अपरिमित आग्रह में अपने काव्य के स्वरूप को ही बिगाड़ लिया है । उनके काव्य में अलंकारों की इतनी अधिकता है कि वे कविता-कामिनी की शोभा-वृद्धि करने की अपेक्षा उसके लिए भार स्वरूप हो गये हैं ! इस प्रकार के कवियों की भाँति सूरदास अलंकारों के पीछे नहीं पड़े हैं, वरन् स्वयं अलंकार ही भावुक भक्तों की भाँति उनकी कविता-देवी का शृंगार करने को उपस्थित हो गये हैं !

वास्तविक बात यह है कि अंधे कवि सूरदास को सप्रयास कविता लिखने का सुयोग ही कहाँ था ! वे तो नियमित कीर्तन के रूप में अपनी भक्ति-भावना के प्रसूनों की श्रद्धांजलि श्रीनाथ जी के चरणों में प्रति दिन अर्पित किया करते थे । इस कीर्तन के फल स्वरूप धारावाही रूप में जो काव्य-रचना हो जाती थी, उसमें अलंकारों का भी उचित रूप से स्वतः समावेश हो जाता था । इसके लिए उनके मस्तिष्क को कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती थी ।

दृष्टकूट पदों की कलात्मकता—

उनके दृष्टकूट पदों को उपर्युक्त कथन के अपवाद स्वरूप उपस्थित किया जा सकता है । इस प्रकार के पद सूरसागर में भी हैं, किंतु उनकी 'साहित्य-लहरी' तो इसी प्रकार की शैली में रची गयी रचना है । 'साहित्य-लहरी' के दृष्टकूट पदों में सूरदास भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष का आग्रह करते हुए दिखलायी देते हैं, इस लिए कुछ विद्वान इसे सूरदास की रचना ही नहीं मानते हैं । हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि साहित्य-लहरी निश्चय पूर्वक सूरदास की कृति है, किंतु इसकी रचना का एक विशेष हेतु था, इसलिए यहाँ पर उसके कलात्मक रूप के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है ।

जहाँ तक 'सूरसागर' के दृष्टकूट पदों का संबंध है, उनकी सार्थकता भी स्वयंसिद्ध है। "परोक्ष प्रियाइव वै देवा"—देव को परोक्ष गानादि प्रिय होते हैं -इस श्रुति वाक्य के अनुसार सूरदास ने दृष्टकूट पदों द्वारा अपने इष्टदेव का परोक्ष गायन किया है, अतः इन पदों को कला-प्रदर्शन की अपेक्षा परोक्ष गायन के साधन मानना उचित है। तभी हम सूरदास के साथ वास्तविक न्याय कर सकते हैं।

सूरदास का एक दृष्टकूट पद देखिए—

देख री! एक अद्भुत रूप।
एक अंबुज मध्य देखियत, बीस दधिसुत जूप॥
एक अवली, दोय जलचर, उभय एक सरूप।
पाँच बारिज, ढिग सोभित, कहो कौन स्वरूप?
सिसु गति सें भई सोभा, देखो चित्त विचार।
"सूर" श्री गोपाल की छवि, राखिए उर धार॥

इस पद के आरंभ में जो समस्या उपस्थित की गयी है, उसका अंत में उत्तर भी दे दिया गया है। इस पद के अलंकारिक कथन द्वारा सूरदास ने बुद्धि-वादियों के सन्मुख एक पहेली सी उपस्थित की है, किंतु वास्तव में उनका अभिप्राय भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-छवि का गायन करना है।

सूर-काव्य के अलंकार—

वैसे तो सूरदास के काव्य में सभी प्रमुख अलंकारों का समावेश है, तथापि कुछ चुने हुए अलंकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते हैं। ये अलंकार उनके काव्य में पग-पग पर दिखलायी देते हैं। भावपक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का आधिक्य है। अर्थालंकारों में भी सादृश्यमूलक—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि—अलंकारों का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। इन अलंकारों के द्वारा उन्होंने अपने भावों का चित्र सा खींच दिया है।

सूर-काव्य में भाव-सौन्दर्य के साथ ही साथ भाषा का लालित्य भी दर्शनीय है, इसलिए इसमें शब्दालंकार भी जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक प्रधान हैं। इन अलंकारों का उत्कृष्ट रूप सूर-काव्य में मिलता है। कुछ आचार्यों ने श्लेष और वक्रोक्ति को भी शब्दालंकारों के अंतर्गत माना है, किंतु उनको अर्थालंकारों में ही रखना उचित है। 'साहित्य-लहरी' में श्लेष एवं यमक का प्राधान्य है और 'भ्रमरगीत' में वक्रोक्ति की छटा दिखलायी देती है।

सूरदास के निम्न लिखित पदों में अनुप्रासों की छटा देखिए—

(१) जागिए गोपाल लाल, आनँदनिधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार बार भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल बिसाल, प्रीति-वापिका-मराल,
मदन ललित बदन ऊपर कोटि वारि डारे॥ ×
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल-जाल, दुख-कदंब टारे।
त्यागे भ्रम-फंद-द्वंद, निरखि कै मुखारबिंद,
"सूरदास" अति अनंद, मेटे मद भारे॥

(२) जागिए गोपाल लाल, प्रगट भई हंस-माल,
मिट्यौ अंध-काल, उठौ जननि मुख दिखाई।
मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद वृंद बन बिहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई॥
ठाड़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत हैं बार-बार, आइए कन्हाई। ×
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी तब लै बुलाइ,
दोहिनी मुहि दै मँगाइ, तब ही लै आई॥ ×

(३) चटकीलौ पट, लपटानौ कट, बंसीवट—
यमुना के तट नागर नट।
मुकुट लटक अल भ्रकुटी मटक देखौ,
कुंडल की चटक सों अटकि परी दृगनि लपट॥
आछी कंचन लकुट, ठटकीली बन-माल, कर टेके द्रुम डार,
टेढ़े ठाड़े नँदलाल छबि छाई घट-घट।
"सूरदास" प्रभु की बनक देखें गोपी-ग्वाल,
टारें न टरत, निपट आवै सौंधे की लपट॥

(४) ब्रज घर-घर सब होत बधाये।
कंचन कलस दूब दधि रोचन, महरि-महर वृंदाबन आये॥ ×
सकसकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े।
"सूर" उपंग-सुत बोलत नाँहीं, अति हिरदै ह्वै गाढ़े॥

सूरदास के कथन की शैली ही इस प्रकार की है कि इसमें सादृश्य मूलक अलंकारों के समावेश का अधिक अवसर रहता है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रमुख स्थान है, अतः सूर-काव्य में इनके अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। यहाँ पर उपमा अलंकार के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे सूरदास की कल्पना की उड़ान जानी जा सकती है—

(१) राधे ! तेरौ बदन विराजत नीकौ।
जब तू इत उत बंक बिलोकति, होत निसापति फीकौ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर साधे, सिर केसरि कौ टीकौ।×
"सूरदास" प्रभु विविध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पी कौ॥

(२) सुधा सरोवर छिटकि अनूपम।
ग्रीव कपोत मनों नास कीर सम॥
कीर नासा, इंद्र-धनु भ्रू, भँवर से अलकावली।
अधर विद्रुम, बज्र कन दाड़िम किधौं दसनावली॥
खौर केसरि अति बिराजति, तिलक मृगमद कौ दियौ।
काम रूप बिलोकि मोह्यौ, बास पद अंबुज कियौ॥१॥
हरि स्याम घन तन परम सुंदर, तड़ित बसन बिराजई।
अँग-अंग भूषन सुरस ससि-पूरनकला मनों भ्राजई॥
कमल मुख-कर, कमल लोचन, कमल मृदु पद सोहहीं।
कमल नाभिः, कमल सुंदर निरखि सुर-मुनि मोहहीं॥२॥

निम्न लिखित पद में सूरदास ने उपमाओं की झड़ी लगादी है, अतः इसमें 'मालोपमा' अलंकार है—

स्याम भए राधा बस ऐसे।
चातक स्वाँति, चकोर चंद्र ज्यों, चक्रवाक रवि जैसे॥×
ज्यों चकोर बस सरद चंद्र के, चक्रवाक बस भान।
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यों बस स्याम सुजान॥
ज्यों चातक बस स्वाति बूंद है, तन के बस ज्यों जीय।
"सूरदास" प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौं हीय॥

सूरदास के काव्य में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार स्थान-स्थान पर दिखलायी देते हैं। इन अलंकारों के सहारे उन्होंने अपने कथन को बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है। निम्नलिखित पद में उन्होंने उत्प्रेक्षाओं की भी माला सी पिरो दी है—

देखन बन ब्रजनाथ आजु, अति उपजत है अनुराग।
मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ, खेलत फूले फाग॥

झाँझ झालरन झर निसान डफ, भँवर, भेर गुंजार।
मानहुँ मदन मंडली रचि, पुर-बीथिन विपुल विहार॥

द्रुम गन मध्य पलास-मंजरी, उड़त अगिन की नाईं।
अपने-अपने घरौं मनोहर होरी हरषि लगाईं॥

केकी, काग, कपोत और खग करत कुलाहल भारी।
मानहुँ लै-लै नाम परस्पर, देत-दिवावत गारी॥

कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजत, अति रस विमल बढ़ी।
मनौ कुल-बधू बन लज्जित भई गृह-गृह गावति अटन चढ़ी॥

प्रफुल्लित लता जहाँ तहाँ देखियत, तहाँ तहाँ अलि जात।
मानहुँ विटप बहुत अवलोकत, परसत गनिका गात॥

बहु विधि सुमन अनेक रंग छवि, उत्तम भाँति धरे।
मनु रतिनाथ हाथ से सबहुन, लीने रंग भरे॥

और कहाँ लौं कहौं कृपानिधि! वृंदा-विपिन विराज।
"सूरदास" प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे काज॥

कथन की दृष्टि से इस पद में ऋतुराज बसंत की शोभा का वर्णन किया गया है, जो प्रकृति-चित्रण का एक सुंदर उदाहरण है। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे वर्णन की पूर्ति की गयी है। इस पद में कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। मालोपमा की तरह मालोत्प्रेक्षा लिखने में भी सूरदास को कमाल हासिल है। समस्त पद में अनुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। इस प्रकार यह पद उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का सुंदर उदाहरण है।

आगे के कुछ पदों में उत्प्रेक्षाओं की और भी बहार देखिए—

(१) गागरि नागरि लिएँ पनघट तें चली घरहिं आवै।
ग्रीवा डोलत, लोचन लोलत, हरि के चितहिं चुरावै॥

ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै।
मनहुँ काम-सैना अँग सोभा, अंचल ध्वज फहरावै॥

गति गयंद, कुच कुंभ किंकिनी मनहुँ घंट फहरावै।
मोतिन-हार जलाजल मानौं, खुभी दंत झलकावै॥

मानहुँ चंद्र महावत मुख पर, अंकुश बेसरि लावै।
रोमावली सूँडि तिरनीलौं, नाभि सरोसर आवै॥
पग जेहरि जंजीरनि जकर्यौ, यह उपमा कछु पावै।
घट-जल झलकि, कपोलनि किनुका, मानों मदहिं चुवावै॥
बेनी डोलत दुहूँ नितंब पर, मानहुँ पूँछ हलावै।
गज सिरदार "सूर" को स्वामी, देखि-देखि सुख पावै॥

(२) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुँवर कनक-आँगन में नैन निरखि छवि पाई॥
कुलही लसत सिर स्याम सुभग अति, बहु विधि सुरंग बनाई।
मानहुँ नव घन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन-मुख बगराई।
मानहुँ प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिर आई॥
नील-सेत अरु पीत-लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई॥

(३) रसना जुगल रसनिधि बोल।
कनक बेलि तमाल अरुझी, सुभुज बंधन खोल॥
भृंग-जूथ सुधाकरनि, मनौं घन में आवत जात।
सुरसरी पर तरनि-तनया उमँगि तट न समात॥
कोकनद पर तरनि तांडव, मीन खंजन संग।
करति लाजै सिखिर मिलिकैं, युग्म संगम रंग॥
जलद तें तारा गिरत मानौं, परत पयनिधि माँहिं।
युग भुजंग प्रसन्न ह्वै कर, कनक-घट लपटाहिं॥

सूरदास के कुछ अपूर्व शब्द-चित्र देखिए। इनमें उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे श्री कृष्ण और राधिका के स्वरूप का कैसा भव्य चित्र खींचा गया है--

नटवर वेष काछे स्याम।
पद कमल नख इंदु सोभा, ध्यान पूरन काम॥
जानु जंघ सुघटनि करभा, नाँहिं रंभा तूल।
पीट पट काछनी मानहुँ, जलज केसर झूल॥
कनक छुद्रावली सोभित, नाभि कटि के भीर।
मनहुँ हंस रसाल पंगति, रहे हैं ह्रद तीर॥

झलक रोमावली सोभा, ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गंगा बीच जमुना, चली मिलि त्रय धार॥
बाहु दंड बिसाल तट दोउ, अंग चंदन रेनु।
तीर तरु बन माल की छबि, ब्रज-जुवति सुख देनु॥

चिबुक पर अधरनि हसन दुति, बिंब बीज लजाइ।
नासिका सुक, नयन खंजन, कहत कवि सरमाइ॥

स्रवन कुंडल, कोटि रवि-छवि, भृकुटि काम कोदंड।
"सूर" प्रभु हैं नीप के तट, सिर धरैं श्रीखंड॥

निम्न पद में सूरदास ने राधिका के स्वरूप वर्णन में उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

बरनौं श्री वृषभानु-कुमारि।
चित दै सुनहु स्याम सुंदर, छबि रति नाँहीं अनुहारि॥
प्रथमहिं सुभग स्याम बैनी की, सोभा कहौं बिचारि।
मानहुँ फनिग रह्यौ पीवन कौं, ससि-मुख सुधा निहारि॥
कहिए कहा सीस सेंदुर कौ, कितौ रही पचि हारि।
मानहुँ अरुन किरनि दिनकर की, परसी तिमिर बिदारि॥
भृकुटी बिकट निकट नैननि के, राजत अति बर नारि।
मनहुँ मदन जग जीति जेर करि, राख्यौ धनुष उतारि॥
ता बिच बनी आड़ केसरि की, दीन्हीं सखिन सँवारि।
मानहुँ बँधी इंदु-मंडल में, रूप-सुधा की पारि॥
चपल नैन नासा बिच सोभा, अधर सुरंग सुनारि।
मनहुँ मध्य खंजन सुक बैठ्यौ, लड़्यौं बिंब बिचारि॥
तरिवन सुघर अधर नकबेसरि, चिबुक चारि रुचिकारि।
कठसिरी, दुलरी, तिलरी पर, नहिं उपमा कहुँ चारि॥
सुरंग गुलाल भाल कुच मंडल, निरखत तन-मन वारि।
मानहुँ निसि निर्धूम अगिन के, तप बैठे त्रिपुरारि॥

सूरदास के पदों में रूपक अलंकार भी प्रचुरता से मिलता है। रूपक का एक भेद सांग अथवा सावयव रूपक होता है। रूप वर्णन में सूरदास ने सांग रूपक अलंकार की बड़ी सुंदर योजना की है। नीचे उदाहरणों में सांग रूपक के भव्य चित्र देखिए—

(१) बरनौं बाल-भेष मुरारि।
थकित जित-तित अमर-मुनि गन, नंदलाल निहारि॥
केस सिर बिन पवन के, चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरे जटा मानौं, रूप किय त्रिपुरारि॥
तिलक ललित ललाट, केसरि-बिंदु सोभाकारि।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यौ निज रिपु जारि॥
कंठ कठुला नील मनि, अंभोजमाल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि॥
कुटिल हरिनख हिए हरि के, हरषि निरखत नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ, भाल हू तें उतारि॥
सदन रज तन स्याम सोभित, सुभग यहि अनुहारि।
मनहुँ अंग बिभूति राजत, संभु सों मधु हारि॥
त्रिदसपति-पति असन कों अति, जननि सों कर आरि।
"सूरदास" बिरंचि जाकों, जपत निज मुख चारि॥

(२) सखी री! नंदनंदन देखु।
धूरि धूसरि जटा जूटनि हरि किए हर भेषु॥
नील पाट पिरोइ मनिगन फनिस धोखौं जाइ।
खुनखुनाकर हँसत मोहन नँचत डौंरु बजाइ॥
जलज-माल गोपाल पहिरैं कहौं कहा बनाय।
मुंडमाल मनों हर-गर ऐसि सोभा पाइ॥
स्वांति सुत माला बिराजत स्याम-तन यों भाइ।
मनौं गंगा गौरि डर हर लिए कंठ लगाइ॥
केहरी के नखहिं निरखत रही नारि बिचारि।
बाल ससि मनौं भाल तें लै उर धर्यौ त्रिपुरारि॥
देखि अंग अनंग डर्प्यौ नंदसुत को जान।
"सूर" हियरे बसौ यह स्याम सिव कौ ध्यान॥

निम्नांकित पद में श्याम के शरीर की सागर से उपमा देते हुए कवि ने सांग रूपक का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

देखौ माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पटपीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अंग॥

मीन नैन, मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुत-माल मिलि मानौं सुरसरि, द्वै सरिता लिएँ संग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन, कटिकिंकिनि नख चंद।
मनु अडोल बारिधि में बिंबित, राका उडगन बृंद॥
बदन चंद्रमंडल की सोभा, अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सुरूप सकल गोपीजन, रहीं निहारि-निहारि।
तदपि "सूर" तर सकीं न सोभा, रहीं प्रेम पचिहार॥

विनय संबंधी पदों में भी उन्होने दार्शनिकता के साथ ही साथ कई अति सुंदर सांग रूपक उपस्थित किये हैं। भक्तवर सूरदास संसार-सागर का सांगोपांग चित्रण करते हुए अपने पतित-पावन प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

अब कैं नाथ! मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि!
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार॥
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाँहि चितवन देत सुत-तिय, नाम नौका ओर॥
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुनामूल!
स्याम! भुज गहि काढ़ि लीजे, "सूर" ब्रज के कूल॥

नीचे के पदों में अपने को पतितराज बतलाते हुए उन्होंने तदनुरूप राजसी ठाट-बाट का कैसा शानदार कथन किया है—

हरि हौं! सब पतितनि कौ राजा।
पर निंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा॥
तृष्ना देस रु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी।
मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी॥
गज-अहँकार चढ़्यौ दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस॥
मोह-मया बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार।
"सूर" पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किंवार॥

नीचे के पद में उन्होंने नृत्यकार के सांग रूपक द्वारा अपने दोषों का विस्तृत विवरण देते हुए उनके दूर करने की भगवान् से प्रार्थना की है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नुपूर बाजत, निंदा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
"सूरदास" की सबै अविद्या, दूरि करौ नंदलाल॥

सूरदास ने 'रूपकातिशयोक्ति' अलंकार के सहारे राधा-कृष्ण के स्वरूप संबंधी कितने ही अद्भुत शब्द-चित्र खींचे हैं। निम्न लिखित प्रसिद्ध पद में राधा के शरीर को अनुपम बाग बतलाते हुए उन्होंने उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध कराया है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद, काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग-अंग प्रति और-और छवि, उपमा ताकौं करत न त्याग।
"सूरदास" प्रभु! पियहु सुधारस, मानहुँ अधरनि के बड़ भाग॥

निम्न लिखित पद में रूपकातिशयोक्ति द्वारा श्री कृष्ण की रूप-माधुरी का वर्णन किया गया है। इसमें नेत्र, नासिका, ओष्ठ, दंत आदि उपमेयों का बोध उनके उपमान मीन, कीर, विद्रुम, दाड़िम-कण द्वारा ही कराया गया है—

नंदनँदन-मुख देखौ माई। × ×
खंजन, मीन, कुरंग, भृंग बारिज पर अति रुचि पाई।
स्रुति मंडल कुंडल बिबि मकर सु, बिलसत मदन सहाई॥
कंठ कपोत, कीर, विद्रुम पर, दारिम-कननि चुनाई।
दुइ सारँग बाहन पर मुरली, आई देत दुहाई॥

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त सूर-काव्य में अन्य अलंकारों के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिनको स्थानाभाव से यहाँ पर देना संभव नहीं है।

नख-शिख वर्णन—

सूरदास ने काल, अवस्था और परिस्थिति के अनुसार तो राधा कृष्ण की रूप-माधुरी के अनेक शब्द-चित्र खींचे ही हैं, किंतु उन्होंने उनके विविध अंगों के पृथक पृथक् वर्णन भी किये हैं। सूरदासादि भक्त कवियों ने अपने मन को रमाने के लिए अपने उपास्य देव की अंग-छवि के वर्णन करने की पद्धति प्रचलित की थी, जो आगे चलकर नायिका-नायक के 'नख-शिख' के नाम से एक पृथक् विशाल साहित्य निर्माण का कारण हुई।

वैसे तो सूरदास ने राधा-कृष्ण के अनेक अंगों का आकर्षक वर्णन किया है, किंतु उन्होंने सब से अधिक नेत्रों का कथन किया है। विविध उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों के सहारे उन्होंने नेत्रों का ऐसा अपूर्व चित्रण किया है कि उनकी अद्भुत उद्भावना और कल्पना की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है।

छंद विधान—

सूरदास ने अपने अधिकांश काव्य की रचना गायन अथवा कीर्तन के लिए की थी, अतः इसमें पिंगल शास्त्रोक्त छंदों की अपेक्षा संगीत शास्त्रानुकूल गेय पदों की अधिकता है। उन्होंने अपने काव्य के वर्णनात्मक भाग में कुछ छंदों का भी प्रयोग किया है। यह भाग काव्य-परिमाण और काव्योत्कर्ष दोनों दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

सूर-काव्य में जिन थोड़े छंदों का प्रयोग किया गया है, उनमें चौपाई, चौबोला, चौपई, दोहा, सोरठा, रोला और लावनी मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी कुछ छंदों का प्रयोग किया गया है। इन छंदों के प्रयोग में उन्होंने यथेष्ट स्वच्छंदता से काम लिया है।

कला पक्ष की अन्य बातें—

काव्य शास्त्र के आचार्यों ने काव्य कला संबंधी जिन विषयों का उल्लेख किया है, वे न्यूनाधिक रूप में प्रायः सभी सूर-काव्य में मिल जाते हैं। विभिन्न विषयों पर अनोखी उद्भावनाएँ, चमत्कार पूर्ण कल्पनाएँ और सूक्तियाँ सूर-काव्य में भरी पड़ी हैं। सूर के व्यंग्यात्मक कथन और उनकी वक्रोक्तियों ने उनके काव्य को अपूर्व सजीवता प्रदान की है, जिसके कारण पाठक का मन खिल उठता है। उनके कथन की शैली में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की अधिकता है, जिनके कारण उनके काव्य की सरलता और सरसता दर्शनीय है। सूर-काव्य की प्रवाहमयी एवं सजीव भाषा ने उसे और भी गौरव प्रदान किया है। सारांश यह है कि भाव पक्ष के कवि होते हुए भी सूरदास के काव्य में अलंकरण और कलात्मकता की भी कमी नहीं है।

४. सूर-काव्य की कुछ विशेषताएँ

सूर-काव्य धार्मिक एवं साहित्यिक विशेषताओं का भंडार है। इसकी प्रत्येक विशेषता पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु इस पुस्तक में उन सब पर संक्षिप्त रूप से विचार करने के लिए भी स्थान का अभाव है। हमने गत पृष्ठों में प्रसंग वश इनमें से कुछ पर प्रकाश डाला है। यहाँ पर कुछ अन्य विशेषताओं पर संक्षिप्त रूप से विचार किया जाता है।

ब्रजभाषा के वाल्मीकि—

संस्कृत साहित्य में जो स्थान आदि कवि वाल्मीकि का है, ब्रजभाषा साहित्य में वही स्थान सूरदास को भी दिया जा सकता है। ब्रजभाषा साहित्य के आरंभिक काल में ही सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जैसा सर्वांगपूर्ण काव्य उपस्थित किया, वैसा कई शताब्दियों के साहित्यिक विकास के उपरांत भी कोई कवि नहीं कर सका। यही एक बात सूर-काव्य की विशेषता को चरम सीमा पर पहुँचा देने वाली है।

परंपरा के निर्माता—

जहाँ तक ब्रजभाषा काव्य का संबंध है, सूरदास को अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रायः कुछ भी प्रेरणा नहीं मिली है। सूरदास से पहले ब्रज के लोक गायकों एवं संगीतज्ञों के गानों में भाषा और भाव का जो रूप था, वह उच्च साहित्य के लिए नगण्य था। स्वयं सूरदास ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा व्यवस्थित भाषा में सर्वांगपूर्ण काव्य की रचना कर परवर्ती कवियों के लिए परंपरा बनाती थी।

सूरदास ने कृष्ण-चरित्र के गायन द्वारा धार्मिक एवं साहित्यिक जगत् में मौलिक उद्भावनाओं को जन्म दिया, जिसका अनुकरण उनके सम कालीन एवं परवर्ती कवियों ने किया था। सूरदास के पूर्ववर्ती कवियों में से जयदेव, विद्यापति और चंडीदास ने क्रमशः संस्कृत, मैथिल और बंग भाषाओं में कृष्ण-चरित्र का गायन किया था, किंतु सूर का वर्णन उनसे भिन्न है। जयदेव के काव्य में संगीत-लहरी और कोमल-कांत पदावली का गौरव तो है, किंतु उनमें सूरदास की सी कथन की विचित्रता नहीं है। विद्यापति ने राधा-कृष्ण को केवल नायिका-नायक के रूप में चित्रित कर विलासिता को अधिक प्रश्रय दिया है। वे सूरदास की तरह राधा-कृष्ण को अलौकिक धरातल पर स्थापित

नहीं कर सके हैं । चंडीदास के काव्य में राधा-कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का दर्शन तो होता है, किंतु उसमें सूरदास की सी लीला-भावना का अभाव है । इस प्रकार इन तीनों पूर्ववर्ती कवियों का काव्य सूर-काव्य की तुलना में पीछे रह जाता है । सूर-काव्य की यह विशेषता है कि इसमें उक्त तीनों कवियों के विशिष्ट गुण तो अपने सर्वोत्तम रूप में विद्यमान हैं ही; इनके अतिरिक्त इसमें और भी बहुत कुछ है, जो सूरदास की स्वतंत्र उद्भावना और मौलिकता पर निर्भर है । इस प्रकार सूर-काव्य की परंपरा पूर्ववर्ती कवियों की ऋणी नहीं है, वरन् वह स्वयं सूरदास की बनायी हुई है ।

सूर का गीति-काव्य—

जहाँ तक गीति-काव्य की परंपरा का संबंध है, वह सूरदास से बहुत पहले की है । सूरदास ने अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति के गीति-काव्य की शैली को अपनाकर उसे और भी गौरवान्वित किया है ।

हिंदी साहित्य में गीति-काव्य की परंपरा वीर-गीतों से आरंभ होती है । उस समय के कवि अपने आश्रय दाताओं के यशोगान अथवा युद्धोन्मुख वीरों को उत्साह-प्रदान करने के लिए वीर-गीतों की रचना किया करते थे । देश की परतंत्रता के कारण जब वीरता का लोप हुआ, तब वीर-गीतों की ध्वनि भी मंद पड़ गयी । इसके बाद संत कवियों ने निर्गुण भक्ति के गीत गाये, जो सूर के समय तक और उनके बाद भी गूंजते रहे । इस प्रकार सूरदास के समय में गीति-काव्य की एक परंपरागत शैली विद्यमान थी । उन्होंने सगुण भक्ति के गायन द्वारा उसे और भी उन्नत एवं परिष्कृत किया ।

सूरदास का अधिकांश काव्य कीर्तन के लिए रचा गया है, इसलिए यह मुक्तक गेय पदों में है । ये गेय पद विभिन्न राग-रागनियों में सधे हुए हैं । अब तक सूर-काव्य की साहित्यिकता और धार्मिकता पर ही विचार किया गया है, किंतु इसके संगीत विषयक पक्ष पर जब पूरी तरह विचार हो सकेगा, तब कहीं सूर-काव्य की विशेषता का यथार्थ स्वरूप समझ में आवेगा ।

संगीत कला की दृष्टि से भी सूर-काव्य का अनुपम महत्व है । यह संगीत शास्त्रोक्त विविध राग-रागनियों का विपुल भंडार है । इसमें जिन अगणित राग-रागनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के लक्षण भी आज-कल के संगीतज्ञों को अज्ञात हैं । ऐसा मालूम होता है कि या तो वे राग-रागनियाँ सूरदास के समय में प्रचलित थीं, या स्वयं उन्होंने ही उनका आविष्कार किया था; जिनका प्रचलन बाद में बंद हो गया ।

गीति-काव्यकारों में भी सूरदास का स्थान बेजोड़ है। उन्होंने जितने अधिक गीत रचे हैं, उतने संसार की किसी भाषा में शायद ही किसी एक व्यक्ति ने रचे हों। उनके द्वारा प्रयुक्त राग-रागनियों की विविधता को देखकर तो आश्चर्य होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि वे संगीत शास्त्र के भी महान् पंडित थे। विभिन्न राग-रागनियों में अपने पदों की रचना के अतिरिक्त 'सूर सारावली' में उन्होंने कतिपय राग-रागनियों के नामों का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभात राग पंचम पट मालकोस रस भीने॥
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सावंत भूपाली ईमन करत कान्हरौ गान॥
ऊंच अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत बिहार मधुर केदारौ सकल सुरन सुख दीन॥
सोरठ गौड़ मलार सोहावन भैरव ललित बजायौ।
मधुर बिभास सुनत बेलावल दंपति अति सुख पायौ॥
देवगिरी देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखधाम।
जैतश्री अरु पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखराम॥
रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गाये।
जैजैवंती जगतमोहनी सुर सों बीन बजाये॥

सूर और तुलसी—

(सूर और तुलसी हिंदी साहित्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र हैं। इनमें से किसका प्रकाश अधिक और किसका कम है, यह बतलाना बड़े से बड़े समालोचक के लिए भी बड़ा कठिन कार्य है)। इन दोनों महात्माओं के उपस्थिति-काल से अब तक अनेक विद्वानों ने इनके महत्व की तुलना की है। उनमें से किसी ने सूर को और किसी ने तुलसी को बड़ा बतलाया है, किंतु उनका कथन सदैव विवादग्रस्त रहा है और आगे भी रहेगा। (हमारी दृष्टि में ये दोनों ही महानुभाव हिंदी कवियों के मुकुटमणि हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में एक दूसरे से बढ़ कर हैं। हिंदी का कोई तीसरा कवि किसी प्रकार इनकी समता नहीं कर सकता है।)

(इन दोनों महाकवियों के काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनकी कई रचनाओं में अद्भुत साम्य है। यह साम्य भाव-विषयक ही नहीं, वरन् शब्द विषयक भी है। इससे स्पष्ट होता है कि ये दोनों कवि एक दूसरे से प्रभावित हैं। अब यह विचार करना है कि इसका कारण क्या है।

साहित्य शोधकों के प्रयत्न से अब यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि सूरदास पूर्ववर्ती और तुलसीदास परवर्ती कवि हैं। सूरदास का जन्म-काल और काव्य-काल दोनों ही तुलसीदास की अपेक्षा पहले आते हैं। कुछ समय तक ये दोनों कवि समकालीन भी थे, किंतु उस समय सूरदास वृद्ध थे और अपने अधिकांश काव्य की रचना कर चुके थे, जब कि तुलसीदास युवक थे और उन्होंने अपनी काव्य-रचना का आरंभ ही किया था। सूरदास का देहावसान भी तुलसीदास की अपेक्षा पहले हुआ था। (गत पृष्ठों में हम सूरदास के देहावसान का समय सं० १६४० लिख चुके हैं, जब कि तुलसीदास का निधन सं० १६८० में बतलाया जाता है।) अब यदि इनके काव्य में किसी प्रकार का साम्य अथवा एक का दूसरे पर प्रभाव ज्ञात होता है, तो यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि परवर्ती कवि ने पूर्ववर्ती कवि से किसी न किसी रूप में लाभ अवश्य उठाया है।

गत पृष्ठों में हम भली भाँति सिद्ध कर चुके हैं कि सं० १६२६ में तुलसीदास अपने छोटे भाई नंददास से मिलने के लिए ब्रज में आये थे। उस समय उन्होंने ब्रज के प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया था और वहाँ पर कुछ समय तक निवास भी किया था। उस यात्रा में उन्होंने गोवर्द्धन के निकटवर्ती परासौली स्थान पर सूरदास से भेंट की थी। उस समय दोनों कवियों ने एक दूसरे के काव्य का रसास्वादन अवश्य किया होगा। सूरदास उस समय तक सहस्रों पदों की रचना द्वारा प्रचुर कीर्ति प्राप्त कर चुके थे, किंतु तुलसीदास ने तब तक 'रामलला नहछू', 'वैराग्य संदीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'जानकी मंगल' जैसी छोटी एवं साधारण रचनाएँ ही की थीं *। काव्य-जगत् में प्रवेश करने वाले युवक कवि तुलसीदास पर वयोवृद्ध सूरदास के प्रौढ़ काव्य का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह प्रभाव तुलसीदास की रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखलायी देता है।

(ब्रज-यात्रा के अनंतर गो० तुलसीदास ने सं० १६३१ में अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'रामचरितमानस' की रचना की थी। इस प्रशंसनीय ग्रंथ के कई प्रसंग ऐसे हैं, जो सूर-काव्य से निश्चय पूर्वक प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए 'मानस' का एक परम रमणीक प्रसंग उपस्थित किया जाता है। जिस समय बनोवास में सीता अपने पति और देवर राम-लछमण के साथ जा रही थीं, उस समय ग्रामीण स्त्रियों ने उनका परिचय जानना चाहा। सीता जी ने

* तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० २१३

जिस भाव-भंगी के साथ अपने देवर और पति का परिचय दिया है, उसे पढ़कर 'मानस' के पाठक आनंद-विभोर हो जाते हैं। वास्तव में यह प्रसंग "मानस" के परम रमणीक प्रसंगों में से है जिससे तुलसीदास जी के काव्योत्कर्ष का ज्ञान हो सकता है। किंतु यह प्रसंग सूर-काव्य से प्रभावित है, जैसा कि निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा।

"रामचरित मानस' में यह प्रसंग इस प्रकार लिखा गया है—

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सँकोच सकुचति बर बरनी॥
सकुचि सप्रेम बालमृग-नैनी। बोली मधुर बचन पिकबैनी॥
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनविधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि॥

यही प्रसंग तुलसीदास कृत "कवितावली' में इस प्रकार मिलता है—

पूछति ग्राम बधू सिय सों "कहौ साँवरे से सखि! रावरे को है ?"
सुनि सुंदर बानि सुधा-रस सानि, सयानी है जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हैं, समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥

सूर-काव्य में यह प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

कहिधौं सखी! बटोही को हैं?
अद्भुत बधू लिए सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं॥
यहि में को पति प्रिया तिहारे, पुर तिय पूछें धाइ।
राजिव नैन मैन की मूरति, सैनन दियौ बताइ॥

सूरदास का निम्न पद तुलसीदास के एक प्रसिद्ध बरवा से मिलाइये तो आपको स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देगा—

देखि री! हरि के चंचल नैन।
राजिवदल, इंदीवर, सतदल कमल कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे विकसित, ये विकसित दिन-राति॥

—सूरदास

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाइ॥

—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों में दोनों कवियों के कथन का आशय एक सा है। अंतर केवल इतना है कि जहाँ सूरदास ने कमल की कई जातियों का नामोल्लेख किया है, वहाँ तुलसीदास ने केवल शरद-कमल से काम ले लिया है। स्वागत, पूजा तथा अभिनंदन के समय नारियाँ किस सामग्री का संचय करती हैं और उनके चलने का ढंग किस प्रकार का होता है, इसके वर्णन में दोनों कवियों का साम्य देखिए—

दूध, दधि, रोचन कनक-थार लै-लै चलीं,
मानों इंद्रबधू जुरि पाँतिन बहुर के ॥
—सूरदास

दूध, दधि, रोचन कनक-थार भरि-भरि,
आरती सँवारि वर नारि चलीं गावतीं ॥
—तुलसीदास

उपर्युक्त उद्धरणों में विषय और भाव की तो समता है ही, किंतु "दूध, दधि, रोचन, कनकथार" ये चारों शब्द दोनों कवियों ने एक क्रम से भी रखे हैं। सूर काव्य का स्पष्ट प्रभाव तुलसी कृत बाल-छवि वर्णन में दिखलायी देता है। इस प्रकार के कथन में दोनों कवियों द्वारा प्रयुक्त बहुत सी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ आपस में मिल जाती हैं। उदाहरण देखिए—

नील, सेत पर पीत, लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि, मनौं भौम सहित समुदाई ॥
—सूरदास

भाल बिसाल ललित लटकन वर, बाल दसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु-सनि कुज आगे करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए ॥
—तुलसीदास

सूर-काव्य का और भी स्पष्ट प्रभाव तुलसीदास कृत 'गीतावली' में दिखलायी देता है। सूरदास ने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का जैसा सरस वर्णन किया है, प्रायः वैसा ही गीतावली के कतिपय पदों में भी मिलता है—

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ॥
—सूरदास

पालनैं रघुपतिहिं झुलावै।
लै-लै नाम सप्रेम सरस स्वर, कौसल्या कल कीरति गावै ॥
—तुलसीदास

('सूरसागर' और 'गीतावली' के निम्न पदों में भाव ही नहीं, वरन् शब्दों का भी अद्भुत साम्य है। दोनों पदों के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये एक ही कवि की रचनाएँ हैं, जो किंचित हेर-फेर के साथ दोनों ग्रंथों में लिखी गयी हैं। 'गीतावली' के पद में 'सूरसागर' के पद की अपेक्षा दो पंक्तियाँ अधिक हैं। गीतावली के पद का राग 'केदारा' और सूरसागर के पद का राग 'नटनारायन' लिखा गया है)। दोनों ग्रंथों के पद इस प्रकार हैं—

हरि जू की बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा-हरनि॥
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरयौ अद्भुत फरनि॥
चलत पद-प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग-छबि भरि लेत उर जनु धरनि॥
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि।
"सूर" प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि॥

(सूरसागर, दशम स्कंध, पद संख्या १०९)

रघुबर-बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा-हरनि॥
बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुन करनि॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार-सिसु-तरु फरयौ अद्भुत फरनि॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यौ लरनि।
रहे कुहरनि सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि॥
लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जलज-संपुट-सुछबि भरि-भरि धरनि जनु उर धरनि॥
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि दशरथ-घरनि।
बसति "तुलसी"-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि॥

(गीतावली, पद संख्या २४)

अब हम 'सूरसागर' और 'गीतावली' के ऐसे पद देते हैं, जो प्रायः एक से हैं। इनके भाव ही नहीं, वरन् शब्दों में भी कोई महत्व का अंतर नहीं है। पाठकों को आश्चर्य हो सकता है कि इस प्रकारका अद्भुत साम्य कैसे हो गया—

आँगन खेलैं नंद के नंदा। जदुकुल-कमुद सुखद चारु चंदा ॥
संग संग बल-मोहन सोहैं। सिसु-भूषन सुब को मन मोहैं ॥
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै। उमँगि-उमँगि अँग-अँग छवि छलकै ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजै। पंकज पानि पहुँचिया राजै ॥
कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन-सरोज मैन-सरसी के ॥
लटकति ललित ललाट लटूरी। दमकति दूध दँतुरियाँ रूरी ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बिंदा। ललित बदन बल-बालगुबिंदा ॥
कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलै। कल-बल बचन तोतरे बोलै ॥
निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहिं। देत परम सुख पितु अरु अंबहिं ॥
ब्रज-जन निरखत हिय हुलसाने। "सूर" स्याम-महिमा को जाने ॥

(सूरसागर, दशमस्कंध, पद सं० ११७)

आँगन खेलत आनँदकंद। रघुकुल-कुमुद सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लखन-सँग सोहैं। सिसु-भूषन भूपित मन मोहैं।
तन-दुति मोर चंद जिमि झलकै। मनहु उमँगि अँग-अँग छवि छलकै ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं। पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके। नयन-सरोज मयन सरसी के ॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं। दमकति द्वै-द्वै दँतुरियाँ रूरीं ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा। ललित बदन बलि-बालमुकुंदा ॥
कुलही चित्र-विचित्र झँगूली। निरखत मातु मुदित मन फूली ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत। कल बल बचन तोतरे बोलत ॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि। देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है। गावत प्रेम पुलकि "तुलसी" है ॥

(गीतावली, पद सं० २८)

निम्न पद तो केवल नाम-भेद से दोनों के काव्य में प्रायः एक सा मिलता है। दोनों ग्रंथों के पद देखिए—

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-ज्योती, मोती मानों कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकि-ठुमुकि डोलैं,
झुनुकु-झुनुकु बोलैं पैंजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि, हाटक रतन जटि,
मृदु कर कमलनि पहुँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी
बालक दामिनि मानों ओढ़ै बारौ बारिधर॥
उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर।
अंजन रंजित नैन, चितवन चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं, अमित असम-सर॥
चुटकी बजावति, नचावति जसोदा रानी,
बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि-किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
"सूरदास" मन बसैं तोतरे बचन बर॥

(सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० [illegible])

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं ठुमुक-ठुमुक चलैं,
झँझुनु-झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि, हाटक जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिर तर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानों बारे बारिधर॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसि-बिंदु मुनि-मनहर।
अंजन रंजित नैन चित चोरै चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर॥

चुटकी बजावती, नचावती कौसल्या माता,
बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम-भर ।
किलकि-किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
"तुलसी" के मन बसैं तौतरे बचन बर ॥
(गीतावली, पद सं० ३०)

यहाँ पर यह विचार करने की आवश्यकता है कि दोनों कवियों की इन रचनाओं में इस प्रकार के अद्भुत साम्य का कारण क्या है। जहाँ तक भाव-साम्य का संबंध है, वहाँ तक हमारा निश्चित मत है कि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती सूरदास के काव्य से लाभ उठाया है । यह भाव-साम्य अधिकतर कृष्ण और राम के बाल-लीला वर्णन में मिलता है । यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि सूरदास वात्सल्य रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का अपूर्व कवित्वपूर्ण कथन किया है, जिसका अनुकरण अनेक कवियों ने किया है। यह दूसरी बात है कि वे सूर-काव्य के उच्च धरातल तक पहुँचने में कहाँ तक सफल हो सके हैं। ब्रज-यात्रा में ब्रज के वातावरण से आकर्षित होकर और सूरदास कृत कृष्ण-लीला के पदों को सुन कर तुलसीदास इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बाद में उसी शैली में अपने आराध्य देव रामचंद्र की बाल-लीलाओं का भी वर्णन किया, जिसमें सूर-काव्य के कतिपय भावों का आजाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

लेकिन जो कविताएँ दोनों कवियों के काव्य में प्रायः ज्यों की त्यों मिलती हैं, उनके विषय में पाठकों को अवश्य आश्चर्य हो सकता है । वे शंका कर सकते हैं कि क्या तुलसीदास ने सूर की रचनाओं का अपहरण कर उन्हें अपने नाम से प्रचारित किया था ! तुलसीदास जैसे सर्वोत्कृष्ट सिद्ध कवि के विषय में इस प्रकार की शंका करना भी मूर्खता की बात है । असल बात यह है कि लिपिकारों की असावधानी अथवा उनके कुचक्र के कारण ये कविताएँ दोनों कवियों के काव्य में मिल गयी हैं । आश्चर्य इस बात का है कि उनका संपादन करते समय हमारे धुरंधर विद्वान संपादकों का ध्यान उन पर क्यों नहीं गया !

आज-कल की सी मुद्रण विषयक सुविधाओं के अभाव में अथवा सांप्रदायिक खींचातानी की दौड़-धूप में उस समय के लिपिकारों को इन रचनाओं के लिए क्षमा भी किया जा सकता है; किंतु जब हम दिग्गज विद्वानों द्वारा संपादित और मान्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक संस्करणों में इस प्रकार की गड़बड़ी देखते हैं, तो आश्चर्यपूर्ण खेद होता है। हमने

उपर्युक्त उद्धरण 'सूरसागर' और 'गीतावली' के जिन संस्करणों से लिए हैं, वे दोनों काशी की सर्वमान्य नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हैं। 'सूरसागर' के संपादक ब्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध महारथी स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास "रत्नाकर" हैं। 'गीतावली' तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खंड, में संकलित है, जिसका संपादन हिंदी के धुरंधर विद्वान सर्वश्री रामचंद्र शुक्ल, भगवानदीन और ब्रजरत्न दास ने किया है। 'गीतावली' का यह संस्करण 'सूरसागर' के उपर्युक्त संस्करण की अपेक्षा प्रायः १२ वर्ष पश्चात् छपा है। इसके विद्वान संपादकों से यह आशा की जा सकती है कि उन्होंने 'सूरसागर' के उक्त संस्करण को अवश्य देखा होगा। ऐसी दशा में एक ही स्थान से प्रकाशित दोनों कवियों के प्रसिद्ध ग्रंथों में एक सी कविताएँ छप जाना सुसंपादन के महत्व को निश्चय ही कम करने वाली बात है!

यह तो मान लिया गया कि लिपिकारों एवं संपादकों की असावधानी से इस प्रकार की कविताएँ दोनों कवियों के ग्रंथों में सम्मिलित हो गयी हैं; अब यह प्रश्न हो सकता है उनका मूल रचयिता सूरदास को ही क्यों माना जाय, तुलसीदास को क्यों नहीं? इसके संबंध में हम पहले ही लिख चुके हैं कि सूरदास पूर्ववर्ती एवं बाल-लीला वर्णन के विशिष्ट कवि हैं, अतः इन कविताओं का सर्व प्रथम उन्हीं के द्वारा रचा जाना और बाद में किंचित् परिवर्तन के साथ उनका तुलसीदास के काव्य में सम्मिलित किया जाना सर्वथा संभव है। यह कथन केवल अनुमान पर ही आधारित नहीं है, वरन् दोनों कवियों की भाषा, शैली, उनके भाव और आगे-पीछे के पदानुगत क्रम से भी इसकी पुष्टि होती है। सूर-काव्य में जहाँ पर ये पद दिये गये हैं, वहाँ पर आगे पीछे के पदों के देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये पद भी सूरदास कृत हैं।

रूप-वर्णन—

काव्य में मानवीय और प्राकृतिक दो प्रकार के रूप का वर्णन होता है। मानवीय रूप का जैसा अपूर्व कथन सूर-काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। सूरदास ने कृष्ण, राधा और गोपियों के स्वरूप वर्णन में मानवीय सौन्दर्य की चरम सीमा दिखला दी है। उन्होंने भौतिक चक्षुओं के अभाव में भी मानव के सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य को जितनी बारीकी से देखा है, वैसा कोई नेत्र वाला कवि भी आज तक नहीं देख सका है! यही कारण है कि सूर-काव्य के साधारण पाठक को ही नहीं, वरन् बड़े-बड़े विद्वानों को भी यह संदेह होने लगता है कि इस प्रकार के सांगोपांग वर्णन करने वाला कवि जन्मांध

कैसे हो सकता है ! सूर-काव्य के रूप-वर्णन की यह विशेषता किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती ।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य सूचक अगणित शब्द-चित्रों में सोफियानी और चटकीले सभी प्रकार के रंगों का उपयोग किया है। उनके बहुरंगी चित्रों में कहीं प्रसाद गुण युक्त सीधे-सादे कथन का सोफियानापन है, तो कहीं अलंकृत एवं चमत्कृत उक्तियों का चटकीलापन भी है। सूर-काव्य के पाठकों पर इन बहुरंगी शब्द-चित्रों का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है कि उनका रसास्वादन करते हुए वे स्वयं चित्रवत हो जाते हैं !

मानवीय रूप-वर्णन में सूरदास ने प्रायः परंपरागत उपमानों का उपयोग किया है, किंतु उनकी बहुमुखी प्रतिभा और उद्भावनापूर्ण कल्पना के कारण उनके कथन में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न हो गया है। उनकी सौन्दर्यानुभूति और निरीक्षण शक्ति के कारण उनके काव्य में मानव-सौन्दर्य के साथ ही साथ मानव-प्रकृति का भी जैसा स्वाभाविक कथन हुआ है, उसने सूरदास को संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में आदर पूर्ण स्थान दिया है।

सूरदास ने राधा-कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर बार-बार इतना अधिक लिखा है कि कतिपय अरसिक व्यक्तियों को उसमें पुनरुक्ति का आभास होने लगता है ! ऐसे व्यक्ति शायद यह नहीं जानते कि सौन्दर्य कि विशेषता ही इसमें है कि वह प्रति क्षण नवीन दिखलायी दे—"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताय:" । सूरदास अपने आराध्य देव के प्रति क्षण नवीनता प्राप्त रूप की रमणीयता का आस्वादन करते हुए कभी तृप्त ही नहीं होते थे। उनकी अतृप्त वाणी आकुलता पूर्वक बार-बार कुछ कहने के लिए छटपटाती रहती थी। इस छटपटाहट के कारण वे नित्य नये पदों की रचना द्वारा अपने इष्टदेव के स्वरूप का गायन किया करते थे; किंतु इतना अधिक कथन करने पर भी उनको ऐसा लगता था कि उनकी वाणी में कहने की सामर्थ्य ही नहीं है। अपनी मानसिक दशा को उन्होंने स्वयं निम्न पद में इस प्रकार व्यक्त किया है—

सखी री ! सुंदरता कौ रंग।
छिन-छिन माँहिं परत छवि औरै, कमल-नैन के अंग ॥
परमित करि राख्यौ चाहति हौं, तुम्ह लगि डोलैं संग।
चलत निमेष बिसेष जानियत, भूलि भई मति भंग ॥
स्याम सुभग के ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग।
"सूरदास" कछु कहत न आवै, गिरा भई गति पंग ॥

अपने आराध्य देव की रूप-रस-माधुरी में मत्त होकर वे जीवन भर इसी प्रकार के गीत गाते रहे । जब उनके इस कथन में शिथिलता आने लगी, तब निम्न पद का गायन करते हुए उनके प्राण-पखेरू भी उड़ गये—

खंजन नैन रूप-रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते ।
"सूरदास" अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल-छवि कथन के साथ अपने रूप वर्णन का आरंभ किया है । प्रारंभ में उन्होंने बाल-लीला जनित स्वाभाविक सौन्दर्य के सीधे-सादे चित्र अंकित किये हैं । इसके उपरांत उनकी मति अपने इष्टदेव के रूप-वर्णन में अधिकाधिक रमती गयी, जिसके फल स्वरूप उनके कथन की शैली ने भी अधिकाधिक चमत्कृत और अलंकृत रूप धारण किया । उनकी प्रतिभा पग पग पर नवीन उद्भावनाओं द्वारा नित्य नूतन सौन्दर्य की सृष्टि करती थी । भावों की तीव्रता ने कहीं कहीं पर उनकी कल्पना को दुरूहता भी प्रदान की है । ऐसे प्रसंगों पर उन्होंने गूढ़ दृष्टकूटों में अपना रहस्यपूर्ण कथन किया है । उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, सांग रूपक और रूपकातिशयोक्ति द्वारा अपने कथन को सजीवता प्रदान की है । इस प्रकार की उक्तियों में उनका कलात्मक रूप निखर आया है ।

सूर-काव्य का मानवीय रूप वर्णन अपनी काव्यगत विशेषताओं के लिए जग विख्यात् है । सूर-साहित्य के विद्वानों ने विस्तृत रूप से इसकी आलोचना की है । हमने भी गत पृष्ठों में इस पर कुछ प्रकाश डाला है । ऐसी दशा में तत्संबंधी सूर-काव्य की विशेषता पर और अधिक लिखना पिष्ट पेषण करना है ।

प्रकृति-निरीक्षण—

सूर-काव्य के मानवीय रूप-वर्णन के पश्चात् मानवेतर अर्थात् प्राकृतिक रूप-वर्णन के संबंध में लिखने की आवश्यकता है । सूरदास ने मानवीय रूप का जैसा व्यापक कथन किया है, वैसा प्राकृतिक रूप का नहीं किया है । फिर भी उन्होंने इस संबंध में जो कुछ कहा है, उसका महत्व इसलिए अधिक है कि ब्रजभाषा साहित्य में इस विषय पर सर्व प्रथम उन्हीं का विस्तृत विवरण प्राप्त है ।

सूरदास ने स्वतंत्र रूप से प्रकृति-निरीक्षण नहीं किया है, वरन् उन्होंने अपने प्रमुख विषयों के सहायक रूप में इसका कथन किया है। काव्य शास्त्र के अनुसार प्राकृतिक दृश्य शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आते हैं, क्यों कि प्राकृतिक सौन्दर्य से नायक-नायिका के रति भाव को उत्तेजना प्राप्त होती है। सूरदास ने भी अधिकतर प्रकृति के उद्दीपक रूप का ही कथन किया है। उनके पश्चात् इस प्रकार के कथन की परंपरा ही चल पड़ी, जिसके कारण व्रजभाषा के विशाल शृंगार साहित्य में प्रकृति निरीक्षण के कथन प्रायः उद्दीपक रूप में ही प्राप्त होते हैं।

सूरदास के निम्न लिखित पद में प्रकृति के उत्तेजक प्रभाव का कैसा स्पष्ट वर्णन मिलता है--

बात बूझतहिं यों बहरावति।
सुनहु स्याम ! वै सखी सयानी, पावस रितु राधहिं न बतावति।
घन गरजत तौ कहत कुसलमति, गूंजत गुहा सिंह समुझावति॥
नहिं दामिनि, द्रुम-दवा सैल चढ़ी, फिरि बयारि उलटी झर लावति।
नाहिंन मोर रटत पिक-दादुर, ग्वाल-मंडली खगन खेलावति॥

सूर-काव्य के अधिकांश भाग का विकास प्रकृति देवी के कामनीय क्रीड़ा-स्थल ब्रजभूमि के विस्तृत प्रांगण में हुआ है; जहाँ पर जमुना है और उसके निकटवर्ती वृंदावन के रमणीक वन-उपवन हैं, जहाँ पर गिरि गोवर्द्धन और उसकी सुंदर कंदराएँ हैं, जहाँ पर करील के सघन कुंज और कदंब के सुवासित वृक्ष हैं, जहाँ पर मोर-कोकिल आदि पक्षियों का मधुर कल रव गूंजा करता है। ऐसे प्राकृतिक वातावरण से सूर काव्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है। सूरदास ने अपने कथन में जिन उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों का प्रयोग किया है, उनमें व्रज का प्राकृतिक रूप छलका पड़ता है।

राधा-कृष्ण के संयोग शृंगार का विकास वृंदावन के निकटवर्ती यमुना-पुलिन के लता-कुंजों में होता है, जहाँ का प्राकृतिक वैभव युगल प्रेमियों के संयोग-सुख में स्वाभाविक वृद्धि करता है। राधा और गोपियों का वियोग शृंगार भी उसी क्षेत्र में विकसित होता है, जहाँ के प्राकृतिक दृश्य उनके विरह को तीव्रतर करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार सूर का प्रकृति निरीक्षण उनके लीलात्मक कथन का सदैव सहायक रहा है।

चरित्र-चित्रण—

सूर-काव्य का अधिकांश भाग श्रीनाथ जी के कीर्तन के लिए रचा गया था, अतः वह मूल रूप में मुक्तक काव्य जैसा है। मुक्तक काव्य में प्रबंध काव्य की तरह कथा के क्रमबद्ध कथन और पात्रों के चारित्रिक विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता है, किंतु सूर-काव्य में कृष्ण-लीला-गायन के कारण कथा का संयोजन और चरित्रों का कथन भी हुआ है।

सूरदास ने कृष्ण-लीला का क्रमबद्ध गायन किया हो, इसकी संभावना कम है; किंतु पुष्टि संप्रदाय की नित्य और नैमित्तिक सेवा-विधि तथा भागवत की कथा के अनुसार विविध अवसरों पर सहस्त्रों पदों के गायन द्वारा उनके काव्य में कृष्ण-लीला के प्रायः सभी प्रसंगों का वर्णन हो गया था, जिनका बाद में क्रमबद्ध संकलन हुआ होगा। यह संकलन सूरदास के समय में हुआ अथवा उनके पश्चात्—यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता; किंतु इस समय सूर-काव्य का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसमें कथा का क्रम और चरित्रों का विकास भी दिखलायी देता है।

भक्त कवि होने के कारण सूरदास ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही अपने काव्य की रचना की थी। फलतः उनके पात्रों के चारित्रिक विकास में भी इसी भावना का प्राधान्य है। सूर-काव्य के पात्रों में नंद-यशोदा वात्सल्य भक्ति के, गोप गण सख्य भक्ति के और राधा-गोपी मधुर भक्ति के प्रतीक हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भक्ति के ये विविध रूप पुष्टि संप्रदाय में मान्य हैं। उक्त पात्रों के चारित्रिक कथन के कारण ही सूर-काव्य इतना रोचक और उपादेय बन सका है। सूर-काव्य की विशेषताओं में इन पात्रों के चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। सूरदास के प्रधान पात्र श्रीकृष्ण, राधा-गोपी, नंद-यशोदा, बलराम तथा गोप गण हैं, जिनके चरित्रों की यहाँ पर संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

श्री कृष्ण—सूर-काव्य के नायक ही नहीं, वरन् सूरदास के आराध्य देव भी हैं, इसलिए कवि ने इनके चरित्र का गायन बड़े मनोयोग पूर्वक किया है। सूर-काव्य के समस्त पात्रों में श्री कृष्ण की प्रधानता ही नहीं है, वरन् उन पात्रों के चरित्र भी कृष्ण-चरित्र में गुथे हुए हैं। सूर-काव्य में से कृष्ण-चरित्र को निकाल देने से अन्य पात्रों के चरित्र-कथन का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

सूरदास के कृष्ण परम सुंदर, स्वस्थ और चंचल प्रकृति के नटखट बालक हैं। एक समृद्ध ग्रामीण परिवार के बालक की तरह उनका लालन-

पालन बड़े लाड़-चाव से हुआ है। वृद्धावस्था की संतान होने के कारण वे अपने माता-पिता के तो दुलारे हैं ही, साथ ही उनके श्याम सुंदर स्वरूप में कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण है कि वे ब्रज के समस्त नर-नारी, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों को भी, अपनी ओर इतना आकर्षित कर लेते हैं कि उनको देखे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता है! जब तक कृष्ण ब्रज मे रहे, वहाँ के निवासी गण उनके सहवास-सुख से परमानंदित होते हुए अपने को भूले रहे। जब वे ब्रज को छोड़ कर मथुरा और द्वारिका चले गये, तब उनकी विरह-व्यथा से व्यथित ब्रजवासी अपने जीवन को भार समझने लगे।

श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं के कथन में सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। इस संबंध की कोई बात उनसे छूटने नहीं पायी है। बालक कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा का उन्होंने अत्यंत स्वाभाविक और विशद वर्णन किया है। कृष्ण अपनी बाल-क्रीड़ाओं से नंद-यशोदा को परम आनंदित करते हैं। वे नाना भाँति के खेल-कूद और आमोद-प्रमोद द्वारा गोप-बालकों को और अपने रूप-लावण्य एवं चंचल प्रकृति से गोप-बालिकाओं एवं गोपांगनाओं को परम सुख प्रदान करते हैं। वे ब्रज-नारियों के घरों में घुस कर उनका दही-माखन चुरा कर खा जाते हैं। वे पनघट और यमुना-तट पर उनको परेशान करते हैं। वे एकांत बन में जाती हुई गोपियों को रोक कर उनसे 'दान' माँगते हैं और उनके आना-कानी करने पर उनके दधि-भाजनों को तोड़ डालते हैं। कृष्ण की इन छेड़खानियों के कारण गोपियाँ बाहरी मन से रोष भी प्रकट करती है, किंतु वास्तव में उनको इनसे सुख मिलता है और वे बार-बार इस प्रकार तंग होने में अपना अहो भाग्य मानती हैं!

कृष्ण वंशी बजाने की कला में अत्यंत निपुण हैं। वे जब वंशी बजाते हैं, तब समस्त ब्रज को आनंद-विभोर कर देते हैं। उनकी वंशी के मधुर स्वर को सुन कर ब्रज-गोपियाँ मंत्र-मुग्ध की तरह उनकी ओर खिंची चली आती हैं। वे शरद ऋतु की उजेली रात में नाना प्रकार के गायन, वादन और नृत्य द्वारा उनका मनोरंजन करते हैं। वे यशोदा के लिए अबोध बालक हैं, किंतु गोपियों के साथ प्रगल्भ तरुण नायक का सा व्यवहार करते हैं।

उन्होंने अल्पायु में ही बलशाली दैत्यों का संहार और खेल-कूद में ही कालिय-दमन जैसा भयानक कार्य कर डाला था। उन्होंने बात की बात में कंस जैसे पराक्रमी योद्धा को उसके प्रबल साथियों सहित मार डाला था।

उनके अमानुषी कृत्यों से प्रभावित होकर व्रजवासी उनको एक क्षण के लिए अवतारी पुरुष समझने लगते हैं, किंतु दूसरे ही क्षण उनके साधारण बालोचित कृत्यों से मोहित होकर उनको अपना सखा और साथी ही मानते हैं।

जब कृष्ण अक्रूर के साथ ब्रज से मथुरा जाने लगते हैं, तो उनके स्वभाव में अद्भुत परिवर्तन दिखलायी देता है। उनके बिछुड़ने से ब्रज के समस्त नर-नारी परम दुखित होकर आर्त-नाद करते हैं, किंतु कृष्ण अपने बालपन के साथियों को छोड़ने पर तनिक भी विचलित होते हुए दिखलायी नहीं देते हैं। उनका चंचल और अनुरागी स्वभाव सहसा धीर, गंभीर और अनासक्त बन जाता है। मथुरा में कंस को मारने के उपरांत वे नंद और गोपों को अत्यंत निठुर भाव से ब्रज को वापिस भेज देते हैं और आप मथुरा की राजनीति मे रम जाते हैं। ब्रज के अत्यंत निकट रहते हुए भी वे वहाँ जाने का नाम भी नहीं लेते हैं।

कृष्ण की अनुपस्थिति में ब्रज की दयनीय दशा का सूरदास ने अति करुणापूर्ण वर्णन किया है। नंद-यशोदा, गोप-गोपियाँ और राधा—सभी ब्रजवासी कृष्ण के विरह-संताप से व्याकुल हैं; किंतु कृष्ण को उनकी याद तक नहीं आती है। बहुत दिनों बाद जब उनको ब्रज की याद आयी, तब उन्होंने ब्रजवासियों के परितोष के लिए उद्धव को वहाँ पर भेज दिया। उद्धव-गोपी संवाद का कथन सूरदास ने बड़े विस्तार पूर्वक किया है। इस अवसर पर गोपियों ने जो मार्मिक वचन कहे हैं, उनसे कृष्ण के प्रति उनका निश्छल अनुराग प्रकट होता है। उद्धव गोपियों को समझाने आये थे, किंतु उनकी दशा को देख कर वे इतने प्रभावित हुए कि वापिस पहुँचने पर वे स्वयं कृष्ण से ब्रज जाने का आग्रह करने लगे। कृष्ण तब भी ब्रज नहीं गये, किंतु उस समय उन्होंने ब्रजवासियों के प्रति जो शब्द कहे हैं, उनसे उनकी सहृदयता का फिर परिचय मिलता है।

मथुरा से सुदूर द्वारिका जाते हुए भी वे ब्रजवासियों से नहीं मिले। द्वारिका में रहते हुए उन्होंने रुक्मिणी से विवाह किया और वे दाम्पत्य एवं गार्हस्थिक सुखों का उपभोग करने लगे। द्वारिका के राजाधिराज रूप का वर्णन सूरदास ने अत्यंत संक्षिप्त रीति से किया है। उनके वर्णन को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कृष्ण के इस रूप के प्रति सूरदास को कोई आकर्षण नहीं है। सुदामा के दारिद्र-भंजन प्रसंग में सूरदास का मन कुछ रमता हुआ सा ज्ञात होता है, क्यों कि इससे उनको कृष्ण की भक्त-वत्सलता के कथन करने का अवसर मिलता है।

बहुत वर्षों बाद द्वारिका में रुक्मिणी ने बातों ही बातों में कृष्ण को व्रज की याद दिलादी थी। उस समय वे पुरानी बातों को याद कर विह्वल से हो जाते हैं। वे ब्रजवासियों से मिलने का सुयोग सोचने लगते हैं। उस समय सूर्य-ग्रहण पर्व पर वे यादवों सहित कुरुक्षेत्र जाते हैं और अपना दूत भेज कर वहीं पर ब्रजवासियों को भी बुलवा लेते हैं। वर्षों बाद नंद, यशोदा, राधा और गोप-गोपियों को श्रीकृष्ण से पुनः मिलने का क्षणिक सौभाग्य प्राप्त होता है। उनको विदा करते समय श्रीकृष्ण उनसे अपने दैवी रूप के अनुकूल कथन करते हैं। सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है –

ब्रजवासिन सों कह्यौ, सबन तें ब्रज-हित मेरे।
तुम सों मैं नहिं दूर, रहत सबहिन के नियरे॥
भजै मोहि जो कोइ, भजौं मैं तिनकों भाई।
मुकुर माँहिं ज्यों रूप, आपुने सम दरसाई॥
ये कहि सुमरे सकल जन, नैन रहे जल छाय।
"सूर" स्याम को प्रेम कछु, मोपै कह्यौ न जाय॥

सूरदास द्वारा कथित कृष्ण-चरित्र की यह संक्षिप्त रूप-रेखा है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास ने श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओं का जैसा उत्कृष्ट एवं विस्तृत कथन किया है, वैसा उनके मथुरा एवं द्वारिका के चरित्रों का नहीं। वास्तव में सूर-काव्य के नायक ब्रजवल्लभ कृष्ण हैं, मथुरानाथ अथवा द्वारिकाधीश कृष्ण नहीं।

सूरदास ने श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्र का विचित्र ढंग से कथन किया है। एक ओर वे साधारण बालक के समान श्रीकृष्ण के कार्य-कलाप का कथन करते हैं; तो दूसरी ओर वे उनके अलौकिक कृत्यों का वर्णन करते हैं। एक ओर वे उनके अनुरागी और सहृदय स्वभाव का परिचय देते हैं, तो दूसरी ओर वे उनके विरक्त और निठुर रूप का कथन करते हैं।

श्रीकृष्ण के परस्पर विरुद्ध चरित्र-कथन का कारण सूरदास की सैद्धांतिक मान्यता है। श्री बल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के कारण सूरदास शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुयायी थे। इस सिद्धांत के अनुसार श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं। वे निर्गुण और निराकार होते हुए भी सगुण और साकार हैं। उनमें समस्त परस्पर विरुद्ध धर्मों का आश्रय है, इसलिए उनकी लीलाएँ अद्भुत और विचित्र हैं। सूरदास ने उनके चरित्र में दैवी और मानुषी गुणों का संमिश्रण कर उनके इसी रूप का प्रतिपादन किया है। उन्होंने स्वयं कहा है—

वेद-उपनिषद् जस कहैं, निर्गुणहिं बतावें। सोइ सगुण होय नंद के, दाँवरी बँधावे॥

राधा और गोपियाँ—सूर-काव्य के पात्रों में कृष्ण के उपरांत राधा और फिर गोपियों का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सूरदास ने अपने अधिकांश कथन की प्रेरणा भागवत से प्राप्त की थी-"सूर कहौ क्यों कहि सकै, जन्म-कर्म अवतार। कहै कछुक गुरु-कृपा नें श्रीभागवत अनुसार॥" भागवत में गोपियों का कथन बड़े विस्तार पूर्वक किया गया है, किंतु उसमें राधा के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। सूरदास से पहले "ब्रह्मवैवर्त पुराण" तथा कुछ अन्य धार्मिक ग्रंथों में राधा के लिए निश्चित स्थान बन चुका था। ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने उक्त ग्रंथों के आधार-सूत्रों में अपनी मौलिक उद्भावनाओं को जोड़ कर राधा के चरित्र को पिरोया है। सूर-काव्य में राधा के चरित्र का ऐसा आकर्षक और सरस ढाँचा प्रस्तुत किया गया कि बाद में वह कृष्ण-चरित्र का एक आवश्यक अंग माना जाने लगा। यहाँ तक कि ब्रजवल्लभ कृष्ण के चरित्र की पूर्णता राधा के बिना असंभव ज्ञात होने लगी।

सूर-काव्य की प्रधान नायिका राधा है, जो परम सुंदरी गोप-बालिका है। उसका वर्ण गौर है और उसके प्रत्येक अंग की शोभा अनुपम है। सूरदास ने अगणित पदों में राधा के रूप-लावण्य का गायन किया है। उन्होंने उसके प्रत्येक अंग का विस्तृत कथन किया है, किंतु उसके नेत्रों की छवि का वर्णन करने में उनके कथन की चरम सीमा है।

राधा का आरंभिक चित्रण एक चंचल और वाचाल किशोरी के रूप में हुआ है। बचपन के खेल-कूद में ही राधा और कृष्ण परस्पर आकर्षित हो जाते हैं। धीरे-धीरे यह आकर्षण सुदृढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। सूरदास ने युगल प्रेमियों की विविध चेष्टाओं के अगणित मनोरम शब्द-चित्र अंकित किये हैं। उनके संयोग, वियोग, मान, उपालंभ आदि का विस्तृत कथन किया गया है। सूरदास ने राधा के साथ कृष्ण का विवाह भी कराया है, अतः वह आरंभ से अंत तक स्वकीया नायिका के रूप में चित्रित की गयी है।

सूर-काव्य में गोपियों का चरित्र भी बड़ा अद्भुत है। आरंभ में वे नंद-यशोदा के नव जात शिशु के रूप में कृष्ण के प्रति आकर्षित होती हैं। कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं में उनको अपूर्व सुख मिलता है। कृष्ण कुछ बड़े होने पर उनके घरों में जाने लगते हैं और अपनी चंचल एवं नटखट प्रकृति का परिचय भी देते हैं। धीरे-धीरे उनका नटखटपन बढ़ने लगता है। वे गोपियों के सूने घरों में घुस कर उनका माखन चुरा कर खा जाते हैं। उनके पात्रों को

तोड़ डालते हैं। पनघट पर, यमुना-तट पर, यहाँ तक कि राह-बाट पर भी वे उनको परेशान करते हैं। इन परेशानियों के बीच में भी गोपियाँ अपूर्व सुख का अनुभव करती हैं, बल्कि वे जान-बूझ कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं कि उनका प्यारा कन्हैया उनको अधिकाधिक परेशान किया करे! वे यशोदा से कृष्ण की कभी-कभी शिकायत भी करती हैं, किंतु वहाँ से प्रायः उनको निरुत्तर ही लौटना पड़ता है।

अकेले कृष्ण ब्रज की सहस्रों गोपियों के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। प्रौढ़ा, युवती और किशोरी—सभी प्रकार की गोपियाँ अपने-अपने दृष्टिकोण से कृष्ण के प्रति अनुराग रखती हैं। धीरे-धीरे वह अनुराग सुदृढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। तब युवती गण श्रीकृष्ण से ऐन्द्रिय संबंध रखने की भी कामना करने लगती हैं। श्री कृष्ण के भुवन–मोहन रूप पर आसक्त होकर ब्रज की सहस्रों युवतियाँ रात-दिन उन्हीं के ध्यान में मग्न रहती हैं। वे श्री कृष्ण के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए बन-विहार, जल-क्रीड़ा और रास-विलास के अवसरों की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती रहती हैं। जब कभी ऐसे अवसर आते हैं, तब वे लोक-लाज, कुल-मर्यादा आदि को भूल कर उन्मत्त भाव से कृष्ण की ओर दौड़ पड़ती हैं। और कृष्ण बालक होते हुए भी प्रगल्भ प्रेमी नायक की भाँति उन सब के साथ केलि-क्रीड़ा करते हैं! गोपियाँ सहस्रों हैं, उनकी भावनाएँ भी पृथक्-पृथक् हैं, किंतु अकेले कृष्ण उन सब की मनो-कामनाएँ पूर्ण करते हैं! यह बात कृष्ण के देवत्व को भली भाँति सिद्ध करती है। इसके साथ ही उनकी वह प्रतिज्ञा—"मुझे जो जिस भाव से भजता है, उसको मैं उसी भाव से प्राप्त होता हूँ"—कदाचित गोपियों के संबंध में सब से अधिक चरितार्थ होती है।

जहाँ तक कृष्ण के प्रति आसक्ति और उनके साथ केलि-क्रीडा का संबंध है, वहाँ तक गोपियों और राधा में कोई अंतर नहीं है। सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य और आत्म संबंध के नाते कृष्ण पर राधा का अधिकार सबसे अधिक है। गोपियाँ स्वयं राधा के गौरव और अधिकार को मानती हैं, किंतु उनमें पारस्परिक ईर्ष्या अथवा प्रेम-प्रतियोगिता की गंध भी नहीं है। हो भी कैसे, जब सब ही यह अनुभव करती हैं कि कृष्ण उनसे ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं, और दिन-रात उनके ही साथ रहते हैं।

सहस्रों गोपियों का कथन करते हुए भी सूरदास ने रूप, रंग, आयु और परिस्थिति के अनुसार उनका कोई वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होंने ललिता,

विशाखा, चंद्रावली आदि कुछ गोपियों के अतिरिक्त औरों का नामोल्लेख भी नहीं किया है। सूरदास की समस्त गोपियाँ समान रूप से सुंदरी और कृष्ण के प्रति अनुरागिणी हैं। उनके इन गुणों में किसी प्रकार का भेद-भाव न रख कर सूरदास ने सामूहिक रूप से उनकी समस्त चेष्टाओं का कथन किया है।

जिस प्रकार राधा और गोपियों ने समान रूप से कृष्ण के संयोग-सुख का अनुभव किया, उसी प्रकार उन्होंने उनके वियोग-दुःख को भी सहा। किशोरावस्था की चंचल और वाचाल राधा विरहाग्नि में तप कर गंभीर और मूक हो गयी है। उसकी मौनाकृति में मूक वेदना के लक्षण स्पष्ट दिखलायी देते हैं। उद्धव के आगमन पर गोपियों के मध्य में राधा अवश्य होगी, किंतु सूरदास ने राधा को परोक्ष में रख कर केवल गोपियों की उक्तियों का ही कथन किया है। एक प्रकार से यह उचित भी था। गोपियाँ कृष्ण की प्रेमिका थीं और राधा उनकी पत्नी। ऐसी दशा में गोपियों की तरह राधा कृष्ण के प्रति कटूक्तियाँ कह भी कैसे सकती थी!

सूरदास ने कृष्ण-विरह से व्यथित राधा-गोपियों की जिस दयनीय दशा का वर्णन किया है, उससे कृष्ण के प्रति उनके उत्कट प्रेम का परिचय मिलता है। कृष्ण अपने बाल-जीवन के कुछ वर्षों तक उनके साथ रहे थे। इसके बाद वे उनसे पृथक् हुए, तो फिर कभी लौट कर उनके पास नहीं गये, किंतु वे विरहणी ब्रजांगनाएँ जीवन भर उनके नाम की माला जपती रहीं। जीवन के अवसान-काल में कुछ क्षण के लिए उनको कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए थे, किंतु इससे ही उन्होंने अपने को कृतार्थ मान लिया। सूरदास ने राधा और गोपियों के चरित्र-चित्रण में हर्ष और विषाद, अनुराग और विराग का अद्भुत मिश्रण किया है।

नंद-यशोदा—सूर-काव्य के नंद गोकुल के संभ्रांत व्यक्ति हैं और यशोदा उनकी धर्मपत्नी हैं। वयोवृद्ध होने के कारण वे "नंद बाबा" कहलाते हैं। वृद्धावस्था में कृष्ण-बलराम जैसे भुवन-भूषण पुत्रों की प्राप्ति के कारण उनके हर्ष का पारावार नहीं है। कृष्ण-बलराम भी अपनी बाल-क्रीड़ाओं द्वारा नंद-यशोदा को अहर्निश आनंदित करते रहते हैं।

सूरदास ने नंद-यशोदा का जैसा चित्रण किया है, उससे दम्पति के स्वभाव की उदारता, सरलता और निरभिमानता प्रकट होती है। पूतना जैसी दुष्टा नारी का सत्कार करना और निस्संकोच भाव से अपने पुत्र को उसे दे देना तथा अक्रूर के कुचक्र की छानबीन किये बिना ही उसके साथ अपने प्राण

प्यारे पुत्रों को सदा के लिए भेज देना आदि बातें यशोदा और नंद की निष्कपट सरल प्रकृति की परिचायक हैं।

सूर-काव्य में नंद स्नेही पिता और यशोदा स्नेहमयी माता के रूप में ही सर्वत्र दिखलायी देते हैं। उनके हृदय वात्सल्य रस से परिपूर्ण हैं। अपने पुत्रों के अनिष्ट की काल्पनिक आशंका से भी उनके कोमल हृदयों को भारी धक्का पहुँचता है। जब कभी कृष्ण-बलराम खेल-कूद में घर से दूर चले जाते हैं, तब वे नाना प्रकार की शंकाएँ करने लगते हैं।

कृष्ण की चंचल प्रकृत्ति और उनके नटखट स्वभाव ने ब्रज की समस्त गोपियों को परेशान कर दिया था। वे उनके दधि-माखन की चोरी ही नहीं करते थे, वरन् उनके दधि-भाजनों को भी तोड़ डालते थे। गोपियाँ नंदालय में जाकर यशोदा से शिकायत करती थीं, किंतु सरल प्रकृत्ति की स्नेहवती माता को यह विश्वास ही नहीं होता था कि उसका अबोध और भोला-भाला बालक इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कैसे कर सकता है! कई बार गोपियों ने कृष्ण के अपराध को प्रमाणित भी कर दिया, किंतु यशोदा ने गोपियों को समझा-बुझा कर टाल दिया। यशोदा की समझ में यह नहीं आता था कि उसके घर में दही-माखन का अपार भंडार होते हुए भी उसका कन्हैया दूसरों के घरों में चोरी करने क्यों जाता है!

जब कृष्ण का नटखटपन सीमा से बाहर हो गया और यशोदा उनको समझा कर हार गयी, तब सहज क्षमाशील और स्वाभाविक स्नेहवती माता सहसा कुपित होगयी। उसने रोष पूर्वक कृष्ण के दोनों हाथों में रस्सी बाँध कर उन्हें ऊखल से बाँध दिया और आप हाथ में "साँटी" लेकर उनको धमकाने लगी। बेचारे कृष्ण हिचकियाँ लेकर रोने लगे।

यशोदा के इस अभूतपूर्व रौद्र रूप को देख कर गोपियाँ पश्चात्ताप करने लगीं। उनको यह विश्वास नहीं था कि उनके साधारण उपालंभ पर यशोदा उनके प्यारे कन्हैया को इस प्रकार का कष्ट देगी। गोपियों ने विनय पूर्वक यशोदा से कृष्ण के हाथ खोल देने को कहा; किंतु यशोदा ने उनको भी फटकार दिया! जब इस घटना के फल स्वरूप यमलार्जुन के विशाल वृक्ष गिर पड़े और यशोदा ने अपने प्राणाधिक कृष्ण को बाल-बाल बचते हुए देखा तो उसका क्रोध सहसा शांत होगया। उसने दौड़ कर कृष्ण को छाती से लगा लिया और उक्त कृत्य के कारण अपने को धिक्कारने लगी। इसके बाद यशोदा ने फिर कभी कोप नहीं किया।

जब कृष्ण-बलराम अक्रूर के साथ मथुरा चले गये और नंद उनको वापिस लाने में असमर्थ हुए, तो यशोदा का कोप एक बार फिर उमड़ पड़ा। अपने पुत्रों को मथुरा छोड़ आने के कारण वह नंद को धिक्कारने लगी और उनको जली-कटी सुनाने लगी। पुत्र-वियोग के कारण बेचारे नंद स्वयं दुखी थे, किंतु जब उन्होंने पत्नी की फटकार सुनी, तो उनको भी क्रोध चढ़ आया। उन्होंने यशोदा से कहा—"तुम्हारा हृदय अतिशय कठोर है। तुमने प्यारे गोपाल को रस्सी से बाँध कर दुखित किया था। अब उनके चले जाने पर क्यों हाय-हाय मचा रही हो !" सूरदास ने नंद-यशोदा के गृह-कलह का कथन कर कृष्ण-बलराम के प्रति उनके अपार वात्सल्य की व्यंजना की है।

सूरदास ने नंद-यशोदा के वियोग वात्सल्य विषयक अनेक करुण शब्द-चित्र अंकित किये हैं। जब यशोदा ने अपने प्रतिष्ठित पद को भूल कर देवकी के घर "धाय" बन कर रहने की कामना की थी, तब उसके पुत्र-स्नेह की तीव्रता और इसके कारण उसकी अधीरता एवं उसके आत्म-त्याग का परिचय मिलता है। जब उद्धव ब्रज से मथुरा वापिस जाने लगे, तब उन्होंने यशोदा से कृष्ण के लिए संदेश देने को कहा। यशोदा ने शाब्दिक संदेश की अपेक्षा उद्धव द्वारा कृष्ण के पास उनकी मुरली भेज कर जो मूक वेदना व्यंजित की है, उसका अनुभव कर पाठक का हृदय फटने लगता है।

अनेक वर्षों के दुखद वियोग के अनंतर कुरुक्षेत्र में नंद यशोदा को अपने प्राण प्यारे पुत्रों से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। उस समय उनके पुत्र गोकुल के ग्वाला नहीं थे, वरन् द्वारिका के प्रतापी नरेश थे। दीर्घ कालीन प्रतीक्षा के उपरांत इस क्षणिक भेंट का सूरदास ने अति संक्षिप्त कथन किया है। यद्यपि सूर-काव्य में उस समय नंद-यशोदा की मौनाकृति दिखलायी देती है, तथापि उनके नेत्रों से प्रेम-धारा प्रवाहित हो रही होगी और उनके हृदयों में वात्सल्य रस का सागर उमड़ रहा होगा !

बलराम और गोप बालक बलराम रोहिणी के पुत्र और कृष्ण के बड़े भाई हैं। कृष्ण की तरह इनका भी आरंभिक लालन-पालन नंद-यशोदा द्वारा गोकुल में हुआ है। वे गौर वर्ण के हृष्ट-पुष्ट बालक हैं। शारीरिक बल में सब से बढ़ कर होने के कारण वे खेल में समस्त गोप बालकों के नेता हैं। वे व्यंग वचन और वक्रोक्तियों से कभी-कभी कृष्ण को चिढ़ाते भी हैं। उन्हीं के इशारे पर गोप-बालक भी कृष्ण को तंग करते हैं, किंतु वैसे बलराम कृष्ण से हार्दिक प्रेम रखते हैं।

खेल, गोचारण और दुष्टों के दलन में बलराम सदैव कृष्ण के साथ रहते हैं; किंतु राधा और गोपियों के साथ होने वाली कृष्ण की मधुर लीलाओं में अन्य सखाओं के साथ बलराम दिखलायी नहीं देते हैं। इन लीलाओं से बलराम को दूर रख कर कृष्ण के शील की ही रक्षा की गयी है।

ब्रज में राक्षसों का संहार तथा मथुरा में कंस और उसके साथियों का वध करते समय कृष्ण को बलराम से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इसके बाद भी जरासंध, शिशुपाल तथा अन्य दुष्ट राजाओं के साथ कृष्ण के युद्ध में बलराम सबसे आगे रहते हैं। ब्रज से एक बार जाने के बाद कृष्ण दुबारा वहाँ पर लौट कर नहीं गये, किंतु बलराम एक बार द्वारिका से भी ब्रज में आते हैं। उस समय वे समस्त ब्रजवासियों से अत्यंत प्रेम पूर्वक मिल कर उनको आश्वासन देते हैं कि कृष्ण शीघ्र उनसे मिलेंगे।

कृष्ण के खेल-कूद, गोचारण और उनकी अंतरंग लीलाओं में कुछ गोप-बालक सदैव उनके साथ रहते हैं। इन अंतरंगी सखाओं में सुबल, श्रीदामा आदि मुख्य हैं। खेल में श्रीदामा प्रायः कृष्ण का प्रतिद्वंदी रहता है। प्रातःकाल होते ही ये गोप-बालक कृष्ण-बलराम को आकर घेर लेते हैं और सायंकाल तक छाया की तरह उनके साथ लगे रहते हैं। कृष्ण-बलराम को भी अपने सखाओं के साथ खेलने, बन जाने, गोचारण करने और 'छाक' खाने में अत्यंत आनंद मिलता है। कृष्ण-बलराम के मथुरा जाने पर ये गोप-बालक भी मथुरा गये थे, किंतु नंद के साथ उनको भी खाली लौटना पड़ा था। कृष्ण के वियोग में ये गोप गण भी वर्षों तक कष्ट पाते रहे. अंत में उनको भी कुरुक्षेत्र में कृष्ण के दर्शन हुए थे।

बलराम का मुख्य शस्त्र हल है, इसलिए वे हलधर भी कहलाते हैं। कृष्ण की प्रकृति में सतोगुण और रजोगुण की प्रधानता है, किंतु बलराम की प्रकृति तमोगुण प्रधान है। सूरदास की धारणा के अनुसार कृष्ण परब्रह्म और बलराम ब्रह्म के एक अंश हैं। सूर-काव्य में इसी दृष्टिकोण से उनके चरित्र का गायन किया गया है।

अन्य चरित्र—उपर्युक्त प्रधान चरित्रों के अतिरिक्त सूर-काव्य में और भी अनेक चरित्रों का चित्रण हुआ है। इन चरित्रों में उद्धव, अक्रूर, वसुदेव, कंस, सुदामा आदि पुरुष पात्र और देवकी, रोहिणी, वृषभानु-पत्नी, रुक्मिणी, कुब्जा, चंद्रावली, ललिता आदि स्त्री पात्र विशेष उल्लेखनीय हैं। सूरदास मानव-स्वभाव और मनोविज्ञान के अपूर्व ज्ञाता थे। यही कारण है वे अपने सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण ऐसी सफलता के साथ कर सके हैं।

कवि की बहुज्ञता—

सूर-काव्य की अन्य विशेषताओं के साथ उसके कवि की बहुज्ञता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवित्व शक्ति के साथ काव्यशास्त्र का ज्ञान होने पर भी यदि कवि में विविध विद्या, कला और सांसारिक अनुभव का अभाव है, तो उसका काव्य विशेष प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता। सूरदास में जहाँ जन्म-जात कवित्व शक्ति, विलक्षण प्रतिभा और काव्यशास्त्र का अपार ज्ञान है, वहाँ उनमें विविध विद्याएँ, कलाएँ और लौकिक अनुभव भी पर्याप्त परिमाण में दिखलायी देते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य का महत्व सर्वोपरि है। सूर-काव्य के पाठक अथवा श्रोता के मन पर सूरदास के इन गुणों की ऐसी गहरी छाप लगती है कि वह उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

सूरदास के जीवन-वृतांत से ज्ञात होता है कि उनको नियमित रूप से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। उनके जन्मांध होने के कारण भी उनको अध्ययन करने में असुविधा थी। फिर सत्संग और निजी अनुभव द्वारा ही ऐसा अपार ज्ञान प्राप्त करना वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है!

हम गत पृष्ठों में बतला चुके हैं कि सूरदास काव्यशास्त्र और संगीत-शास्त्र के अपूर्व पंडित थे। काव्यशास्त्र संबंधी सभी बातों के समावेश और संगीतशास्त्रोक्त अनेक राग-रागनियों के उपयोग के कारण उनका तद्विषयक ज्ञान स्वयंसिद्ध है। उन्होंने अपने काव्य में विविध वाद्य-यंत्रों और राग-रागनियों का नामोल्लेख भी किया है*। उन्होंने अपने दृष्टकूट पदों में ऐसे अनेक शब्द रखे हैं, जो विभिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उन्होंने अपने समस्त काव्य में विविध विषयों से संबंधित विस्तृत शब्दावली का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास शब्द-कोष के बड़े धनी थे।

उनको विविध अंगों के आभूषण और नाना प्रकार के व्यंजनों से भी परिचय था‡। श्रीनाथ जी की आठों समय की झाँकियों के शृंगार और राजभोग विषयक पदों में उन्होंने आभूषणों और व्यंजनों के नाम गिनाये हैं। उनको कृषि, वाणिज्य, ज्योतिष और शकुन विद्याओं का भी यथेष्ट ज्ञान था। उनकी ज्योतिष विषयक जानकारी के संबंध में 'साहित्य-लहरी' का तिथि सूचक पद तथा 'सूरसागर' के कतिपय पद उल्लेखनीय हैं†। उन्होंने रूप-वर्णन की उत्प्रेक्षाओं में भी अपने ज्योतिष ज्ञान का इस प्रकार परिचय दिया है—

---

* इसी ग्रंथ के पृष्ठ २४८ और ३१५ देखिए।

‡ ,, ,, ,, २४६ देखिए।

† ,, ,, ,, ३ और ११ देखिए।

नील-सेत और पीत-लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देव गुरु मिलि, मनु भौम सहित समुदाई॥

जब कृष्ण गेंद खेलते हुए कालिय-दह में कूद गये, तब यशोदा और नंद को अनेक अप शकुन होने लगे थे। सूरदास के निम्न पदों में उनके तद्विषयक ज्ञान का इस प्रकार परिचय मिलता है—

(१) जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं, ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी॥
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ।
मंजारी आगैं ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ॥
व्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहूँ धौं गए कन्हाई।
बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई॥

(२) देखे नंद चले घर आवत।
पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनैं धाह सुनावत॥
फरकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई॥

सूर-काव्य का धार्मिक स्वरूप होने के कारण इसमें धर्म ग्रंथों के तत्व विशेष रूप से मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सूरदास को रामायण, महाभारत, भागवत तथा पुराणोक्त कथानकों के अतिरिक्त गीता, वेदांत, योग तथा विविध दार्शनिक सिद्धांतों का भी पर्याप्त ज्ञान था। यद्यपि सूरदास गृहस्थ नहीं थे, तथापि गार्हस्थिक रीति-रिवाजों और सामाजिक प्रथाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। श्री कृष्ण के जात-कर्म, नाम-करण, अन्नप्राशन, वर्ष गांठ, कर्ण-छेदन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों एवं विविध अवसरों पर आयोजित पूजा, व्रत, उत्सव तथा मनोरंजक प्रसंगों के सांगोपांग कथन करने से उनके तत्संबंधी ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है।

इनके अतिरिक्त सूरदास को अन्य विद्याओं और कलाओं का भी पर्याप्त ज्ञान था। सूर-काव्य में स्थान-स्थान पर ऐसे प्रसग मिलते हैं, जिनसे उनकी विलक्षण बहुज्ञता और उनके प्रकांड पांडित्य का परिचय मिलता है।

सूर-काव्य की विशेषताएँ इतनी अधिक हैं कि उनके संक्षिप्त विवरण के लिए भी यहाँ पर पर्याप्त स्थान नहीं है। सूरदास वास्तव में हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य हैं, जो पाठकों और श्रोताओं के मन-मंदिरों को चिर काल तक प्रकाशित करते रहेंगे।

❀ इति ❀

अनुक्रमणिका

★

१. पदानुक्रमणिका

[पुस्तक में आये हुए पदों की अकारादि क्रम से सूची]

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०

सं०	पदों की प्रथम पंक्तियाँ	पृष्ठ सं०

२. नामानुक्रमणिका

३. ग्रंथानुक्रमणिका

४. पदावली

(पुस्तक में आये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण अपूर्ण पदों की संकेत सहित पूर्ति)

आजु हौं एक एक करि टरि हौं।
मोहि कहा डरपावन हो प्रभु, अपने पूरे पर लरि हौं॥
† हौं तो पतित सात पीढ़ी को, जो जिय ऐसी धरि हौं।
हौं तो फिरि वैसोई ह्वै हौं, तुमहिं बिरद बिनु करि हौं॥
अब तो तुम परतीत नसाई, क्यों मानैं मेरौ हियरा।
"सूरदास" साँचो तब थपि हौं, जो हँसि दैहौ बीरा॥ १॥

प्रभु मैं सब पतितन कौ राजा।
करि नहिं सकै बराबरि मेरी, पाप करन कौं ताजा॥
चारि चुगली के चँमर ढरत हैं, काम क्रोध दुल बाजा।
निंदा के मेरैं छत्र फिरत हैं, तौऊ न उपजी लाजा॥
‡ चल्यौ सवेरौ आयौ अबेरौ, लेकर अपने साजा।
"सूरदास" प्रभु तुम्हरे मिलि है, देखत जम दल भाजा॥ २॥

* मन रे तू भूल्यौ जनम गँवावै।
बेग ही चेत सकल सिर ऊपर, काल सदा मँडरावै॥
खान पान अटक्यौ निसि बासर, जिभ्या लाड़ लड़ावै।
गृह सुख देखि फिरत है फूल्यौ, सुपने मन भटकावै॥
कै तू छाँड़ि जायगौ इनकौं, कै तोहि यहैं छुड़ावै।
ज्यौं तोता सेंमर पर बैठ्यौ, हाथ कछू नहीं आवै॥
मेरी मेरी करत बावरे, आयुष वृथा गँमावै।
हरि से हितू बिसारे वैसे, सुख विष्ठा चित भावै॥
गिरिधरलाल सकल सुखदाता, स्रुति पुरान सब गावै।
"सूरदास" वल्लभ उर अपने, चरन कमल चित लावै॥ ३॥

§ मन रे तैं आयुष वृथा गँवाई।
इंद्री वस्य परायन डोलत, उदर भरन के ताँई॥

---

† पृष्ठ ७६ के आरंभ का अधूरी पंक्ति
‡ पृष्ठ ८० के अंत में अधूरा पद
* पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद
§ पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद

सेयौ न लाल चरन गिरिधर के, बेर बेर चित लाई ।
निसि दिन फिरत विषय रस माँतौ, सुत दारा कों लड़ाई ॥
यह संसार रैन कौ सुपनौ, मात पिता पति भाई ।
बिनु ब्रजराज नहीं कोई तेरौ, वेद पुरानन गाई ॥
कहा भयौ संपति बहु बाढ़ी, पाई बहुत बड़ाई ।
दिवस चार में खेह उडैगी, यह सब सौंज पराई ॥
धन जोबन गृह देखि भुलानौ, कुबिद्धि कुबुध कमाई ।
रंचक स्वाद जीभ के कारन, तोरी स्याम सगाई ॥
जन्म पाय जग में कहा कीनों, कीनी कहा कमाई ।
जा सुख कों सुख मानि रहे हो, सो सुख है दुखदाई ॥
बहुत दिवस भटकत भये तोकों, अजहू सुधि नहीं आई ।
'कौड़ी मार, बिटौरा चूकत,' छार परी चतुराई ॥
अजहू चेत कृपाल सदा हरि, श्रीबल्लभ सुखदाई ।
"सूरदास" सरनागति हरि की, और न कछू उपाई ॥ ४ ॥

$ अजहू सावधान किन होहि ।
माया सुखहिं भुवंगन कौ विष, उतरचौ नाहिंन तोहि ॥
कृष्ण नाम सो मंत्र संजीवनि, जिन जग मरत जिवायौ ।
बार बार ह्वै स्रवन निकट, तोहि गुरु-गारुडी सुनायौ ॥
बहुत अध्यास देह अभिमानी, मो देखत इन खायौ ।
कोउ कोउ उबरे साधु सँगति मिलि, स्याम धनंतर पायौ ॥
सलिल मोह नदी क्यों तरि सकि, बिना गीत ताके गाये ।
"सूर" मिटै अज्ञान मूरछा, ज्ञान मूरि के खाये ॥ ५ ॥

‡ श्री बल्लभ दीजे मोहि बधाई ।
श्री लछमन सुत द्विज के राजा, कीजे कहा बड़ाई ॥
बहुरि कृष्ण अवतार लियौ है, सदन तुम्हारे आई ।
कोटि कोटि कलि जीव उद्धारन, प्रगटे श्री जदुराई ॥
चिरजीवो अक्काजी कौ सुत, श्री बिट्ठल सुखदाई ।
गिरिधरलाल कौ ढाढ़ी कहावे, "सूरदास" बलि जाई ॥ ६ ॥

$ पृष्ठ ८२ पर अधूरा पद
‡ पृष्ठ ८३ पर अधूरी पंक्ति

§नंद जू! मेरे मन आनंद भयौ, सुनि गोवर्धन तें आयौ।
तुम्हारे पुत्र भयौ हौं सुनिकै, अति आतुर उठि धायौ॥
बंदीजन और भिक्षुक सुनि सुनि, देस देस तें आये।
एक पहले ही आसा लागी, बहुत दिनन के छाये॥
तुम दीने कंचन मनि मुक्ता, नाना बसन अनूप।
मोहि मिले मारग में, मानों जात कहूँ के भूप॥
दीजै मोहि कृपा करि सोई, जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति सुत अपने पाँयन चलि, खेलन आवै आँगन॥
कोटि देहु तौ परयौ रहूँगौ, बिनु देखे नहि जाऊँ।
नंदराय सुनि बिनती मेरी, तबहिं बिदा भले पाऊँ॥
तुम तौ परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीनौं।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन में, तुम सरखौ को कीनौं॥
मदनमोहन मैया कहि बोलै, यह सुनि कें घर जाऊं।
हौं तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी "सूरदास" मेरौ नाँऊं॥ ७॥

* है हरि मोहू तें अति पापी।
घातक कुटिल चबाई कपटी, मोह क्रोध संतापी॥
लंपट धूत पूत दमरी कौ, विषम जाप नित जापी।
काम विवस,कामिनि ही के रस, हठ करि मनसा थापी॥
भक्ष अभक्ष अपय पीवन कौं, लोभ लालसा धापी।
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सों, कटुकै वचन अलापी॥
जेते अधम उधारे प्रभु तुम, मैं तिन की गति मापी।
सागर "सूर" विकार जल भरयौ, बधिक अजामिल बापी॥ ८॥

‡ तुम देखो सखी री आज नयन भरि, हरि जू के रथ की सोभा।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत, कीजियत हैं जिहिं लोभा॥
चारु चक्रमनि खचित मनोहर, चंचल चँमर पातका।
स्वेत छत्र जनु ससी प्राचि दिसि, उदित भयौ निसि राका॥
स्याम सरीर सुकेस पीत पट, सीस मुकुट और माला।
मनों दामिनि घन रवि तारागन, उदित एक ही काला॥

---

§ पृष्ठ ८५ और ९० * पृष्ठ ८८ ‡ पृष्ठ ९० के अंत में

उपजत छबि कर अधर संख ध्वनि, सुनियत सब्द प्रसंसा ।
मानहु अरुन कमल मंडल में, कूजत है कल हंसा ॥
आनंदित पितु भ्रात जननि सब, कृष्ण मिलन जिय भावें ।
"सूरदास" गोकुल के बासी, प्राननाथ वर पावै ।। ९ ॥

† रे मन चिंता ना कर पेट की ।
हलन चलन में कछु नाहिन ह्वै, कलम लिखी जो ठेट की ।।
जीव जंतु जेते जल थल के, तिन विधि कहा समेट की ।
समै पाय सबहिन कों पहुँचे, कहा बाप कहा बेट की ॥
जाकों जितनो लिख्यो विधाता, ताकों तितनों पहुँचै तेटकी ।
"सूरदास" ताहि क्यों नहिं सुमरे, जो न हे ऐसो चेटकी ।।१०।।

§ गुरु बिन ऐसी कौन करें ।
माला तिलक मनोहर बानों, सिर पर छत्र धरें ।।
भवसागर तें बूड़त राखे, दीपक हाथ धरें ।
"सूरस्याम" गुरु ऐसे समरथ, जिहिं तें लै उधरें ।।११।।

* कृष्ण भक्ति करि कृष्णहिं पावें ।
कृष्णहिं तें यह जगत प्रगट है, हरि में लय ह्वै जावें ।।
यह दृढ़ ज्ञान होय जासों ही, हरि लीला जग देखें ।
तो तिहिं दुख सुख निकट न आवें, ब्रह्म रूप करि लेखें ।।
अज्ञानी मैं-मेरो करिकें, ममता बस दुख पावें ।
फिरि फिरि जोनि भ्रमें चौरासी, मद मत्सर करि आवें ॥
हरि हैं तिहूँलोक के नायक, सकल भलो सो करि हैं ।
"सूरदास" यह ज्ञान होय जब, तब सुख सों नर तरि हैं ।। १२ ॥

‡ हरिजन संग छिनक जो होई ।
कोटि स्वर्ग सुख, कोटि मुक्ति सुख, वा सम लहै न कोई ।।
महद भाग्य पुन्य संचित फल, कृष्ण कृपा ह्वै जाके ।
"सूरदास" हरिजन पद महिमा, कहत भागवत ताके ।। १३ ।।

---

† पृष्ठ १२० § पृष्ठ १२१ * पृष्ठ १८३
‡ पृष्ठ २५६

अष्टछाप-परिचय

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

इस अपूर्व ग्रंथ में हिंदी के महान् कवि महात्मा सूरदास और नंददास आदि अष्टछाप के आठों भक्त कवियों का आलोचनात्मक सचित्र जीवन-वृत्तांत और उनकी दुर्लभ रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है। साथ में वल्लभ संप्रदाय का खोजपूर्ण विवरण भी है। कई वर्षों के अनुसंधान एवं गंभीर अध्ययन के उपरांत इस विद्वतापूर्ण ग्रंथ की रचना हुई है।

एक प्रतिष्ठित पत्र की सम्मति—

"इसमें अष्टछाप-कवियों की आलोचना सहित सचित्र जीवनियाँ हैं और काव्य-संग्रह भी। वल्लभ संप्रदाय के आचार्यों की सचित्र चरित-चर्चा प्रथम परिच्छेद में है। इसी में शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टिमार्ग का विस्तृत विवेचन भी है। दूसरे परिच्छेद में अष्टछाप के स्थापना-काल, महत्व और क्रम तथा वार्ता-साहित्य पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अष्टछाप के आठों कवियों की आलोचनात्मक जीवनियाँ और चुनी हुई कविताएँ हैं। चतुर्थ में अष्टछाप के गीति-काव्य और संगीत-पद्धति का समीक्षात्मक प्रदर्शन किया गया है। अंत के पंचम परिच्छेद में अष्टछाप का सिंहावलोकन है। सब के अंत में पुस्तक-गत नामों, ग्रंथों, स्थानों और पदों की अक्षरानुक्रमणिका है।

इस प्रकार यह पुस्तक घोर परिश्रम एवं अनवरत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अतीव सुंदर बन पड़ी है।....पुस्तक के प्रत्येक प्रसंग से लेखक की गहरी छानबीन का पता चलता है। इस पुस्तक से साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। ...हम लेखक के इस सत्प्रयास एवं अथक अध्यवसाय का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।"

—"हिमालय" पटना (जनवरी १९४८)

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धुरंधर विद्वानों की सम्मतियाँ—

"यह पुरानी हिंदी के साहित्य तथा मध्यकालीन भारत की धार्मिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली विशेष महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुराने हिंदी साहित्य की आलोचना में आपकी यह देन प्रथम श्रेणी की है। सद्भाव, पांडित्य और श्रम से की हुई इस गवेषणा का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके लिए मैं न केवल आपको, परंतु हिंदी-प्रेमी समाज को और हिंदी संसार को बधाई देता हूँ।"

कलकत्ता, —सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

ता० २७-१-४८ (अध्यक्ष—तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

"श्री मीतल जी की अष्टछाप-परिचय पुस्तक ब्रजभाषा के आदिम आठ महाकवियों पर गंभीर कृति है। इसमें कवियों और उनके संरक्षकों की जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए, उनकी कविताओं का भी सुंदर संग्रह किया गया है। अपने ढंग का यह एक बहुत अच्छा और गंभीर प्रयत्न है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए मीतल जी को बधाई!"

—राहुल सांकृत्यायन

ता० ३१-१-४८ (भू० पू० अध्यक्ष—हिंदी साहित्य संमेलन)

(बड़े आकार के ५०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, १८ चित्र, दुरंगी कवर, पक्कीजिल्द, मू० ५)

ब्रज-साहित्य-माला सं० २

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

(यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत, परिवर्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण).

भूमिका लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

यह अपने विषय की हिंदी में एक मात्र रचना है। इससे लेखक का गंभीर साहित्यिक ज्ञान, उसकी अध्यवसायपूर्ण शोध और संकलन की सुरुचि प्रकट है

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों की सम्मतियाँ—

"लेखक ने इसके निर्माण में काफ़ी परिश्रम और ब्रजभाषा साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है।......समस्त प्राप्त सामग्री और विचारों का समन्वय कर लेखक ने नायिका भेद के विभिन्न विषयों के संबंध में एक निश्चित और निर्भ्रांत मत स्थिर करने की चेष्टा की है। उदाहरणों के संग्रह में भी उसने कठिन परिश्रम और सुंदर साहित्यिक रुचि का परिचय दिया है।" —"सरस्वती" प्रयाग.

"विद्वान् लेखक ने रीति-कविता का संक्षिप्त इतिहास और नायिकाभेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अनेकों आचार्यों ने जो क्रम इस संबंध में उपस्थित किया है, उस पर लेखक ने गंभीरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं और अंत में एक वैज्ञानिक क्रम निश्चित करके नायिकाओं के लक्षण और उनके चुटीले उदाहरण उपस्थित किये हैं। यह संतोष की बात है कि उदाहरण अश्लील नहीं हैं और पुस्तक ब्रजभाषा में साहित्य के एक अभाव को पूरा करने में सफल हुई है।" —"हिन्दुस्तान", दिल्ली.

"There is no doubt the author has made a sincere and conscientious effort to give an exhaustive exposition of the subject. We are sure the book will prove entertaining to lovers of Hindi poetry and helpful to students interested in its systematic study."

— "LEADER", *ALLAHABAD*

"आपने पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है और निस्संदेह इससे साहित्य के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा।" —अमरनाथ झा

प्रयाग, १६-१२-४४ (वाइस चांसलर—इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

"निस्संदेह इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में आपने श्रम, शोध, निर्णय शक्ति और सहृदयता का पूर्ण उपयोग किया है।" —केशवप्रसाद मिश्र

बनारस, २७-१२-४४ (अध्यक्ष-हिंदी विभाग, हिंदू विश्व-विद्यालय)

"नायिका निरूपण पर हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक अभी तक नहीं थी। आपने समस्त सामग्री को एक सूत्र में एकत्रित कर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का उपकार किया है।"

—धीरेन्द्र वर्मा

प्रयाग, २८-११-४४ (अध्यक्ष-हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

"आपने बड़े परिश्रम से अपने विषय का प्रतिपादन किया है ......आपकी पुस्तक ने इस ओर महत्वपूर्ण सामग्री दी है।" —हजारीप्रसाद द्विवेदी

बोलपुर, ६-१०-४४ (अध्यक्ष-हिंदी भवन, शान्ति निकेतन)

"लेखक ने इस ग्रंथ के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। इसमें नायिकाभेद विषयक बहुमूल्य और दुष्प्राप्य सामग्री है। ग्रंथ उपयोगी है और लेखक वास्तव में बधाई का पात्र है।" —दीनदयालु गुप्त

लखनऊ, १०-११-४८ (अध्यक्ष-हिंदी विभाग लखनऊ विश्व-विद्यालय)